DSPR-03

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

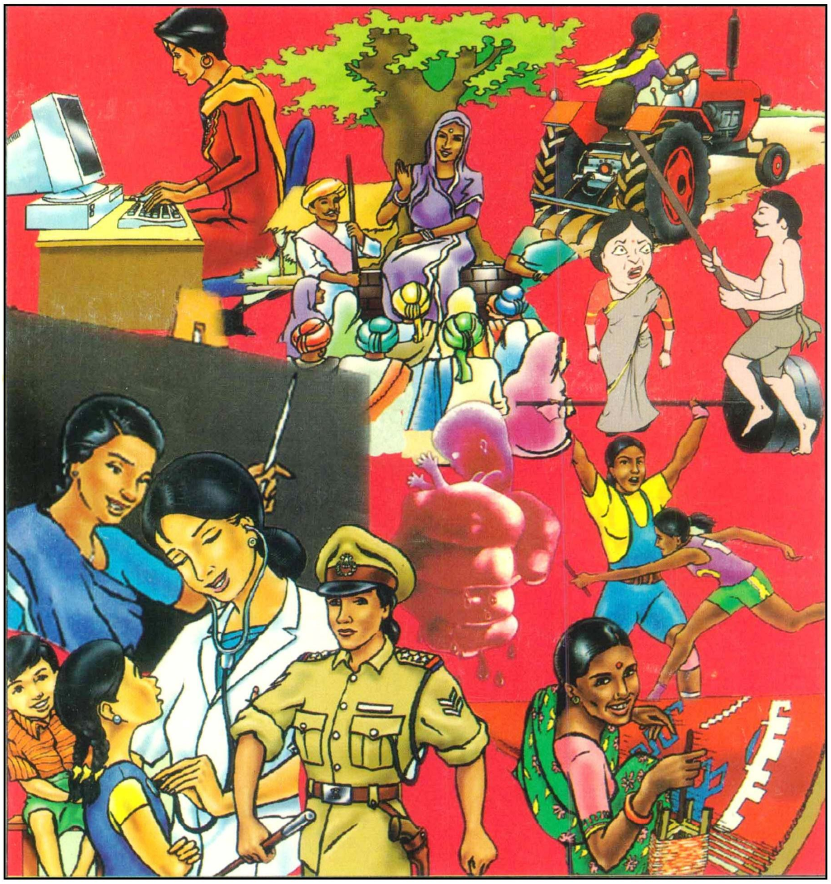

सामाजिक समस्याएँ :
राज्य, प्रशासन एवं सामाजिक परिवर्तन

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सामाजिक समस्याएँ :
राज्य, प्रशासन एवं सामाजिक परिवर्तन

पाठ्यक्रम निर्माण समिति (Course Development Committee)

अध्यक्ष

प्रो.(डॉ.) नरेश दाधीच

कुलपति

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

संयोजक

डॉ. जे.के. शर्मा

सहायक-आचार्य, अर्थशास्त्र

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सदस्य

1. **प्रो.(डॉ.) अनाम जेटली**
निदेशक,संकाय
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,
कोटा
2. **श्री पी.सी. माथुर**
सेवानिवृत्त सह-आचार्य
राजनीति विज्ञान विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
3. **प्रो.(डॉ.) बी.एम. शर्मा**
राजनीति विज्ञान विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
4. **डॉ. मधु नागला**
समाजशास्त्र विभाग
एम.डी. यूनिवर्सिटी,, रोहतक
5. **डॉ. एल. आर. गुर्जर**
सह-आचार्य राजनीति विज्ञान
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सम्पादन एवं पाठ्यक्रम लेखन

प्रो.(डॉ.) बी.एम. शर्मा
राजनीति विज्ञान विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

डॉ. (श्रीमती) बीना शर्मा
विभागाध्यक्ष हिन्दी विभाग
सावित्री कन्या महाविद्यालय, अजमेर

लेखक

डॉ. एन.एल. गुर्जर(वकील) (1,3)
S-271, जगदम्बा मार्ग, शिव मंदिर के पास
80 फीट रोड महेश नगर,जयपुर

डॉ. शंकर सुरोलिया I.P.S. (2,4)
सी-14ए देव नगर, टोंक फाटक रोड,
जयपुर

श्री सुरेन्द्र यादव (I.P.S.) (5,6)
ए.डी.सी., डी.सी.पी. ऑफीस
दरियागंज, नई-दिल्ली

श्रीमती प्रेरणा शेखावत (आर.पी.एस.)(7)
एसिस्टेंट कमाण्डेर, IInd, आर.ए.सी.
अमर निवास, कोटा

प्रो. नरेश भार्गव (8,11)
सेवानिवृत्त आचार्य, समाजशास्त्र विभाग
मो. ला. सु. विश्वविद्यालय, उदयपुर

डॉ.(श्रीमती) रीता दाधीच (9,10)
सहायक आचार्य, समाजशास्त्र विभाग
वैदिक कन्या पी.जी. महाविद्यालय, जयपुर

डॉ. रूपा मगलानी (12)
सहायक-आचार्य, राजनीति विज्ञान
राजकीय पी.जी. महाविद्यालय, कोटपूतली

पाठ्यक्रम पर्यवेक्षण एवं उत्पादन

निदेशक,(अकादमिक)
प्रो.(डॉ.) अनाम जेटली
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

निदेशक पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण
प्रो.(डॉ.) पी.के. शर्मा
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

उत्पादन: जुलाई, 2007

© सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पुस्तक का कोई भी अंश की वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा की लिखित अनुमति के बिना मिमियाग्राफी अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

निदेशक, अकादमिक द्वारा वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा के लिए मुद्रित एवं प्रकाशित।

DSPR -03

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

खण्ड I

राज्य एवं प्रशासन	**पृष्ठ संख्या**
इकाई 1	
राज्य : पारदर्शिता, संवेदनशीलता, प्रतिबद्धता, जवाबदेयता	10–24
इकाई 2	
सामाजिक समस्याओं में राज्य की नियामक भूमिका	25–43
इकाई 3	
सामाजिक समस्याओं के उन्मूलन हेतु पारित विशिष्ट कानून	44–64
इकाई 4	
सामाजिक समस्याओं के प्रति राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका	65–79
इकाई 5	
सामाजिक संघर्षण में पुलिस की भूमिका	80–90
इकाई 6	
सामाजिक समस्याएँ-I : पुलिस एवं सामाजिक व्यवस्थापन	91–100
इकाई 7	
सामाजिक समस्याएँ-II : पुलिस एवं जनसहयोग	101–115
इकाई 8	
NGO द्वारा सामाजिक समस्याओं का रेखांकन : संभावनाएं एवं सीमाएं	116–125
खण्ड II	
सामाजिक परिवर्तन	
इकाई 9	
सामाजिक परिवर्तन : अवधारणात्मक विवेचन	126–142
इकाई 10	
सामाजिक परिवर्तन : प्रकृति, दिशा एवं नीति-दशा एवं दिशा	143–159
इकाई 11	
सामाजिक परिवर्तन एवं नौकरशाही	160–168
इकाई 12	
सामाजिक समस्याओं के उपचार में मीडिया का योगदान	169–188

पाठ्यक्रम परिचय

भारत एक विकासशील देश है । विकासशील देशों की अपनी सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक आदि अनेक समस्याएं है। भारत सहित सभी विकासशील देश संक्रमण की स्थिति से गुजर रहे हैं और उपरोक्त सभी समस्याओं के निराकरण के साथ-साथ विकास की प्रक्रिया से गुजरते हुए अपना सर्वांगीण विकास करने में संलग्न है । भारत एक बहु-क्षेत्रीय, बहु-राज्यीय देश है जिसमें अनेक जातियों, धर्मावलम्बियों, भाषा-भाषियों एवं संस्कृतियों के अनुयायी निवास करते हैं । राजस्थान भारत के क्षेत्रफल की दृष्टि से सबसे बड़ा राज्य है जिसमें ऐतिहासिक दृष्टि से देशी राजा-महाराजाओं, सामंतों आदि का शासन रहा है । ब्रिटिश शासन के प्रत्यक्ष सम्पर्क के अभाव में राजस्थान देश के अन्य राज्यों की अपेक्षा सामाजिक, शैक्षणिक, आर्थिक एवं राजनीतिक दृष्टि से पिछड़ा रहा है । राजस्थान की सामाजिक समस्याएं अन्य राज्यों की सामाजिक समस्याओं की तुलना में संख्या की दृष्टि से अधिक, प्राकृति की दृष्टि से अनोखी तथा शैक्षणिक एवं आर्थिक दृष्टि से गम्भीर रही है । स्वतंत्रता से विचार कर उनके निराकरण के लिए सार्थक प्रयास करने होंगे ।

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा ने राजस्थान की प्रमुख सामाजिक समस्याओं को चिन्हित कर उनकी पृष्ठभूमि, कारक एवं उनके निवारण में शासन एवं प्रशासन की भूमिका को रेखांकित किया है। इन सामाजिक समस्याओं के निवारण में पुलिस प्रशासन एवं मीडिया की भूमिका को भी इंगित करने का प्रयासरत किया गया है। चूंकि समाज एक गतिशील संस्था है और उसमें लगातार सामाजिक परिवर्तन स्वाभाविक है अत: विद्यार्थियों को सामाजिक समस्याओं का ज्ञान की साथ-साथ सामाजिक परिवर्तन, उनके विभिन्न कारकों, दशाओं एवं सिद्धान्तों का ज्ञान भी कराया जाना प्रासंगिक होगा । अतः प्रस्तुत पाठ्यक्रम में राजस्थान की प्रमुख समस्याओं के समाधान में राज्य, सरकार एवं प्रशासन की भूमिका का विश्लेषण किया गया है ।

इस पाठ्यक्रम को 12 इकाइयों में विभक्त किया गया है । प्रथम इकाई में विद्यार्थियों को राज्य एवं प्रशासन तथा उसके कार्यों तथा कार्य प्रक्रिया से अवगत कराने का प्रयास किया गया है । राज्य का अर्थ, परिभाषा, राज्य के आवश्यक तत्व एवं प्रशासन की भूमिका का विश्लेषण किया गया है । इस इकाई में विद्यार्थी को राज्य, सरकार तथा प्रशासक के सैद्धान्तिक पक्ष का अध्ययन करना आवश्यक है अतः इसको दृष्टिगत रखते हुए प्रथम इकाई में यह अध्ययन प्रस्तुत किया गया है ।

तत्पश्चात् राज्य की प्रमुख तत्वों के रूप में सरकार तथा सरकार का अर्थ, परिभाषा तथा राज्य एवं सरकार के बीच सम्बन्ध बताने का प्रयास किया गया है । वस्तुतः राज्य एक अमूर्त संस्था है उस अमूर्त संस्था को मूर्त स्वरूप सरकार एवं प्रशासन द्वारा दिया जाता है । सरकार राज्य का आवश्यक तत्व है जो राज्य के उद्देश्यों को अपने विभिन्न अंगो एवं प्रशासन के माध्यम से प्राप्त करने का प्रयास करती है । इसी अध्याय में विद्यार्थी को सरकार की विभिन्न अंगो यथा-व्यवस्थापिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका के गठन, कार्यों एवं भूमिका से अवगत कराने का प्रयास किया गया है । साथ ही वर्तमान समय में राजनीति विज्ञान की दुनिया में मात्र सरकार का ज्ञान ही पर्याप्त नहीं है । आज शासन के साथ-साथ एमएम सुशासन की बात करने लगे है अतः शासन का सुशासन कैसे बनाया जाये इसका ज्ञान भी विद्यार्थियों को होना चाहिए। अतः इस अध्याय के अंत में सुशासन, सुशासन के अर्थ,

विशेषताओं एवं सुशासन के संचालन के विभिन्न निर्धारक सिद्धान्तों का भी संक्षेप में विश्लेषण किया गया है ।

इसके पश्चात् सामाजिक समस्याओं के निराकरण में राज्य की नियामकीय भूमिका का विश्लेषण किया गया है । इसके अन्तर्गत सामाजिक समस्याओं के स्वरूप एवं प्राकृत का विश्लेषण करते हुए भारतीय समाज की बहुलवादी प्रकृति जनित समस्याओं, परम्पराओं, रूढ़ियों, रिवाजों, तथा प्रथाओं जनित समस्याओं आदि का उल्लेख करते हुए सामाजिक समस्याओं की सामयिक परिवेश का विश्लेषण किया गया है साथ ही अशिक्षा, अज्ञान, गरीबी, पिछड़ापन आदि को सामाजिक समस्याओं के निराकरण में प्रमुख अवरोध मानते हुए उनका विश्लेषण किया गया है । इसके अतिरिक्त सामाजिक समस्याओं की नियामकीय भूमिका का अवधारणात्मक अध्ययन और राज्य की नियामकीय भूमिका के आधार, स्वरूप, विभिन्न कारकों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है ।

इसके पश्चात् सामाजिक समस्याओं के उन्मूलन हेतु सरकार द्वारा समय-समय पर पारित विशिष्ट कानूनों, नियमों एवं उपनियमों की व्याख्या की गई है । राजस्थान सहित सम्पूर्ण देश की विभिन्न सामाजिक समस्याओं में प्रमुखतः परिवार में घरेलू हिंसा, हिन्दू विधवा पून: विवाह, बाल-विवाह, अनैतिक व्यापार, दहेज-प्रथा, भ्रूण हत्या आदि ऐसी अनेक सामाजिक समस्याएँ है जिनके निवारणार्थ घरेलू हिंसा से महिलाओं को अपनी सुरक्षा करने के लिए घरेलू हिंसा महिला सुरक्षा कानून का निर्माण किया गया । हिन्दू विधवा पुनः विवाह कानून, बाल विवाह अवरोध कानून, अनैतिक व्यापार निवारण कानून, दहेज प्रतिषेद्ध कानून, गर्भ का चिकित्सकीय समापन कानून, पूर्व-गर्भ धरण एवं पूर्व-प्रसव उपचार तकनीकी (लिंग चयन का प्रतिषेद्ध) कानून आदि का विद्यार्थियों को ज्ञान कराने के लिए इनका संक्षेप में विश्लेषण किया गया है ।

तत्पश्चात् सामाजिक समस्याओं के निवारण हेतु विभिन्न कानूनों की सहायता से इन समस्याओं के निवारण में राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका का विश्लेषण किया गया है । राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका का अवधारणात्मक एवं सैद्धान्तिक अध्ययन करते हुए प्रवर्तनकारी भूमिका में सुधार हेतु विकल्पों की व्याख्या करते हुए राज्य के साथ-साथ स्वैच्छिक एवं सामाजिक संगठनों की भूमिका को रेखांकित करते हुए वर्तमान में कानूनों की अपर्याप्तता तथा उनके स्थान पर नये कानूनों, नई प्रवर्तनकारी इकाईयों की स्थापना का उल्लेख करते हुए इन समस्याओं के निराकरण में सामाजिक, राजनीतिक एवं प्रशासकीय नेतृत्व की भूमिका का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

अगली दो इकाईयों में सामाजिक समस्याओं के समाधान में पुलिस की भूमिका का विश्लेषण करते हुए सामाजिक व्यवस्थापन पर बल दिया गया है । इस अध्याय में प्रमुखतः इस बात पर विचार किया गया है कि चूंकि समाज एक गत्यात्मक संस्था है और गत्यात्मक समाज में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तन स्वाभाविक है । इन परिवर्तनों से सामाजिक रूपों में परिवर्तन आता है और इन्ही परिवर्तनों से समाज में भांति-भांति के अपराध बढ़ते है और अपराधों कि प्रकृति में भी परिवर्तन आता है । वर्तमान समय में आधुनिकीकरण, औद्योगीकरण, नगरीकरण, वैश्वीकरण, निजीकरण आदि के समाज पर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों तरह के प्रभाव पड़ते है। नकारात्मक प्रभावों से अपराधों कि संख्या में वृद्धि होती है । अपराधों को रोकने में पुलिस कि महत्ती भूमिका होती है। चूंकि सामाजिक अपराधों की प्रकृति अन्य अपराधों से थोड़ी भिन्न होती है अतः पुलिस को भी इसके निराकरण के लिए पृथक भूमिका निभानी पड़ती है । पुलिस के साथ-साथ सामाजिक अपराधों के निराकरण के लिए

सामाजिक व्यवस्थापन अत्यंत आवश्यक है । विकासशील समाजों में सामाजिक परिवर्तन जनित अपराधों के लिए सामाजिक व्यवस्थापन समय की पुरजोर मांग है और इन सामाजिक व्यवस्थापनों का तद्नुरूप क्रियान्वयन आवश्यक है ।

अगली इकाई में सामाजिक समस्याओं में पुलिस एवं जनसहयोग का उल्लेख करते हुए पुलिस-जनता संबंधों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । पुलिस सामाजिक समस्याओं का समाधान प्रभावी तरीके से तभी कर सकती है जब उसे भरपूर जनसहयोग एवं जनसमर्थन प्राप्त हो । अतः इस अध्याय में पुलिस एवं जनता के पारस्परिक संबंधों, पुलिस द्वारा मानवाधिकार सरंक्षण, पुलिस एवं जन अपेक्षाएं तथा पुलिस द्वारा जन अपेक्षाओं पर खरे उतरने एवं अन्त में जनता-पुलिस संबंधों में सुधार हेतु विभिन्न प्रयासों का विश्लेषण किया गया है । एवं

तत्पश्चात् सामाजिक समस्याओं के निराकरण में गैर-सरकारी संगठनों (स्वैच्छिक संगठनों) का विश्लेषण किया गया है । इस इकाई में गैर-सरकारी संगठनों से तात्पर्य, उनकी विशेषताएं, भूमिका एवं कार्य प्रणाली का अवधारणात्मक विवेचन करते हुए राजस्थान में सामाजिक समस्याओं के निराकरण से जुड़े विभिन्न गैर-सरकारी संगठनों का उल्लेख किया गया है । उनके द्वारा इस दिशा में निभाई जा रही भूमिका, उनकी सीमाओं एवं समस्याओं की व्याख्या करते हुए उनकी भूमिका को और अधिक प्रभावी बनाने के लिए किंचित सुझावों को रेखांकित किया गया है। सामाजिक समस्याओं के निराकरण में राज्य सरकार तथा प्रशासन की महत्ती भूमिका होती है लेकिन उनका केवल इन्ही संस्थाओं द्वारा निराकरण संभव नहीं है, गैर-सरकारी संगठनों द्वारा इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी जा सकती है, अतः इसका अध्ययन भी विद्यार्थियों को उपलब्ध करवाया जाना चाहिए ।

इसके पश्चात् तीन इकाइयों में सामाजिक परिवर्तन का अवधारणात्मक विवेचन, सामाजिक परिवर्तन की प्रकृति, दिशा एवं नीति और सामाजिक परिवर्तन में नौकरशाही की भूमिका आदि को रेखांकित किया गया है । सामाजिक परिवर्तन का अवधारणात्मक परिवर्तन प्रस्तुत करते हुए सामाजिक परिवर्तन से जुड़ी विभिन्न अवधारणाओं सामाजिक परिवर्तन के कारकों एवं सामाजिक के प्रतिमानों का उल्लेख किया गया है ।

इसके पश्चात् सामाजिक परिवर्तन की प्रकृति एवं दिशा अर्थात् नगरीकरण, औद्योगीकरण, आधुनिकीकरण, संस्कृतिकरण, लोकीकरण, सार्वभौमिकरण और स्थानीयकरण आदि विभिन्न प्रतिक्रियाओं का उल्लेख करते हुए राजस्थान के संदर्भ में सामाजिक परिवर्तन से जुड़ी नीतियों का विश्लेषण किया गया है और इसके पश्चात् सामाजिक परिवर्तन में नौकरशाही की भूमिका का अध्ययन किया गया है । इस इकाई में नौकरशाही के अर्थ, नौकरशाही के आदर्श स्वरूप, राजस्थान में नौकरशाही के ऐतिहासिक स्वरूप एवं नौकरशाही के चरित्र एवं प्रकृति का उल्लेख करते हुए राजस्थान में सामाजिक परिवर्तन एवं विकास में नौकरशाही की भूमिका को रेखांकित किया गया है ।

और अन्त में सामाजिक समस्याओं के उपचार में मीडिया की भूमिका का उल्लेख किया गया है । वर्तमान में प्रत्येक समाज में मीडिया की अहम भूमिका होती है । मीडिया किसी भी समस्या के समाधान में अहम भूमिका निभा सकता है अतः मीडिया इस प्रकार की भाषा, मूल्यों, मान्यताओं एवं संस्कृति विकसित करने में सहायता करे जिससे जन सामान्य जन समस्याओं से अवगत होकर उनके निराकरण में सकारात्मक भूमिका निभा सके । मीडिया सामाजिक समस्याओं के प्रति संवेदनशील रहते

हुए समाज में जागरूकता एवं चेतना का संचार करते हुए सामाजिक अंकेक्षण में महत्तीभूमिका निभाते हुए सामाजिक समस्याओं का निराकरण कर सकता है ।

इकाई-1

राज्य : पारदर्शिता, संवेदनशीलता, प्रतिबद्धता, जवाबदेयता

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 राज्य का अर्थ एवं परिभाषा

1.3 राज्य के आवश्यक तत्व

- 1.3.1 जनसंख्या
- 1.3.2 निश्चित क्षेत्र
- 1.3.3 सम्प्रभुता
- 1.3.4 सरकार

1.4 राज्य का स्वरूप

- 1.4.1 लोक-कल्याणकारी राज्य
- 1.4.2 अहस्तक्षेपवादी राज्य
- 1.4.3 सर्वाधिकारवादी राज्य
- 1.4.4 उदारवादी राज्य
- 1.4.5 समाजवादी राज्य
- 1.4.6 प्रजातांत्रिक राज्य
- 1.4.7 अधिनायकवादी राज्य
- 1.4.8 धर्मनिरपेक्ष राज्य
- 1.4.9 धर्माधारित राज्य

1.5 सरकार का अर्थ, परिभाषा तथा राज्य एवं सरकार में अंतर

1.6 सरकार के अंग

- 1.6.1 शासन के प्रकार
- 1.6.2 राज्य एवं सरकार में अन्तर

1.7 सुशासन संचालन के निर्धारक सिद्धान्त

- 1.7.1 पारदर्शिता का सिद्धान्त
- 1.7.2 संवेदनशीलता का सिद्धान्त
- 1.7.3 प्रतिबद्धता का सिद्धान्त
- 1.7.4 जवाबदेहिता का सिद्धान्त
- 1.7.5 खुलापन का सिद्धान्त
- 1.7.8 जन सहभागिता का सिद्धान्त
- 1.7.7 उत्तरदायित्व का सिद्धान्त

1.7.8 शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त
1.7.9 प्राकृतिक न्याय का सिद्धान्त
1.6 सारांश
1.9 बोध प्रश्न
1.10 शब्दावली
1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

0.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप

- राज्य का अभिप्राय एवं परिभाषा समझ सकेगे,
- राज्य के आवश्यक तत्वों एवं सरूप को समझ सकेंगे,
- सरकार क्या होती है? सरकार एवं राज्य के भेद तथा सरकार के अंगों से ज्ञात हो सकेंगे,
- राज्य के शासन एवं प्रशासन में सूचना के अधिकार के औचित्य के बारे में समुचित जानकारी दे सकेगे
- राज्य के सुशासन को संचालित करने वाले निर्धारित सिद्धान्तों के बारे में स्पष्टतः अवगत हो सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

राज्य उस समुदाय को कहा जाता है जिसके पास जनसंख्या, भूमि, सरकार और प्रभुसत्ता होती है । राज्य सभ्य जीवन की प्रथम जरूरत है । सुन्दर और नैतिक जीवन की सर्वोतम अभिव्यक्ति राज्य है । समाज में राज्य ही केवल सर्वोतम सत्ता है । राज्य समाज की शक्ति का प्रतीक है और सामाजिक जीवन की पहली आवश्यकता है । राज्य के सुप्रबंध आधार पर ही किसी भी देश की जनता का सुख विकास सुविधा एवं उन्नति निर्भर करती है । राज्य एक विचार है जो हमें प्रत्यक्षतः दिखाई नहीं देता है, इसका निर्माण केवल सरकार में सत्तासी व्यक्ति ही करते हैं । सतारूढ़ दल के लोग हमें सरकार चलाते हुए नजर आते हैं । सरकार स्थायी एवं अस्थायी अर्थात कार्यपालिका एवं व्यवस्थापिका के सदस्य ही संचालित करते हैं । लोकतांत्रिक देशों में राज्य को एक कल्याणकारी शासन की भूमिका का निर्वहन करना होता है । राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रत्येक राज्य के निर्माण होने पर उसे स्वतंत्र राज्य के रूप में मान्यता दी जाती है । सरकार की संकल्पना में जहाँ राज्य के रूप में मान्यता दी जाती है । सरकार की संकल्पना में जहां राज्य को कल्याणकारी क्रियाकलापों में भाग लेना वाँछनीय है वही सरकार को अपने सामूहिक, संविदात्मक एवं व्यक्तिगत कार्यों के प्रति दायित्वों को नहीं भुलाया जाना चाहिए मान्यता मिलने के बाद ही कोई राज्य राष्ट्र को प्राप्त करता है ।

मान्यता तथ्यत: एवं विधितः दो प्रकार की होती है । भारतीय संविधान के अनुच्छेद-2 में संसद को राज्य बनाने के सम्बन्ध में निम्न प्रकार की शक्तियां दी गई हैं-

1. नये राज्यों का निर्माण करने
2. किसी राज्य-क्षेत्र को बढ़ाना
3. किसी प्रान्त के क्षेत्र को घटाना
4. किसी प्रदेश की सीमा में परिवर्तन करना
5. किसी राज्य के नाम को बदलना

6. किसी राज्य के भाग को मिलाना एवं हटाना ।

वर्तमान में हमारे देश में 28 राज्य एवं 7 संघ राज्य क्षेत्र मौजूद हैं । भारत में केन्द्रीय सरकार, राज्यों की सरकारें तथा केन्द्र शासित प्रदेशों की सरकारें पाई जाती हैं । हमें राज्य एवं सरकार को सुसंचालित कराने के लिए वर्तमान में सूचनाधिकार के लिए प्रतिपादित सिद्धान्तों को समझने की चेष्टा करनी होगी । भारत में संसदात्मक प्रणाली पर आधारित सरकार चलाई जाती है । सरकार चलाने के लिए सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त को अमल में लिया जाता है । सरकार के मंत्रियों का सदन के प्रति सामूहिक उत्तरदायित्व बताया गया है । सरकार में विधानपालिका कार्यपालिका एवं न्यायपालिका तीन अंग शामिल किए गए है । सरकार एवं जनता के लिए चौथा स्तम्भ खबरपालिका को बताया गया है । हमें सरकार के विभिन्न स्वरूपों की सम्पूर्ण जानकारी हासिल करना आवश्यक है ताकि कुशल शासन को उचित गति दी जा सके ।

1.2 राज्य का अर्थ एवं परिभाषा

राज्य का अर्थ: राज्य को अग्रेंजी में स्टेट (State) कहा जाता है । यूनानी दार्शनिक इसे 'पालिस' कहते है पालिस शब्द से नगर समुदाय का परिचय मिलता है । संघ के एककों को राज्य कहा जाता है । राजनीति शास्त्र में राज्य उस समुदाय को कहा जाता है जिसके पास जनसंख्या, भूमि, सरकार तथा प्रभुसत्ता है । जब हम राजस्थान और हरियाणा को राज्य कहते हैं तो राजनीति विज्ञान की धारणा के रूप में यहाँ राज्य कहें तो सही है, परन्तु इनकी घटक इकाइयां राज्य नहीं कहला सकती हैं । भारत और अमेरिका के घटक राज्यों के पास जनसंख्या, भूमि और सरकार तो मौजूद है, प्रभुसत्ता नहीं होने के कारण इन्हें अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में राज्य की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है ।

राज्य की परिभाषाएं :- राज्य की परिभाषा निम्न आधारों पर दी जा सकती हैं- 1 शब्द व्युत्पत्ति के आधार पर (2) तलों के आधार पर (3) कानूनी दृष्टिकोण के आधार पर (4) उद्देश्य तथा कार्य के आधार पर (5) शक्ति की धारणा के आधार पर (6) बहुसमुदाय के आधार पर (7) उत्पत्ति के आधार (8) संविधान के आधार पर । अब हम इन विभक्त परिभाषाओं को स्पष्ट करेंगे ।

1. शब्द-उत्पति के आधार पर राज्य की परिभाषा - राज्य शब्द का अंग्रेजी रूपान्तरण 'स्टेट' है। स्टेट शब्द लेटिन भाषा के स्टेट्स शब्द से निकला है । स्टेट्स का शाब्दिक अर्थ किसी व्यक्ति का सामाजिक स्तर होता है । सिरों ने इसे सम्पूर्ण समाज के स्तर को बताया था । बार्कर ने 16 वी शताब्दी में इंग्लैण्ड में राज्य शब्द का प्रयोग किया था ।

2. तत्वों के आधार पर :- राज्य मनुष्यों के उस समूह अथवा समुदाय को कहते हैं जो साधारणत: किसी प्रदेश पर बसा हुआ हो और जिसमें किसी एक श्रेणी अथवा बहुसंख्यक की इच्छा अन्य सब की तुलना में क्रिया में परिणित होती हो। हालैण्ड ने सिर्फ भूमि एवं जनसंख्या को ही राज्य में शामिल किया है इसमें सरकार एथ सम्प्रभुता को नहीं परिभाषित किया गया है ।

गार्नर के मतानुसार राज्य न्यूनाधिक बहुसंख्यक व्यक्तियों का ऐसा समुदाय है जो स्थायी रूप से बाहरी नियन्त्रण से स्वतंत्र अथवा लगभग स्वतंत्र हो और जिसकी एक संगठित सरकार हो । जिसके आदेशों का पालन नागरिकों का विशाल समुदाय स्वभावत: करता हो । इसमें राज्य में भूमि को नहीं बताया गया है ।

3. कानूनी दृष्टिकोण के आधार पर:- विल्सन के अनुसार राज्य एक निश्चित प्रदेश के अन्तर्गत नियम या विधि द्वारा संगठित लोगों का नाम है । इसमें सरकार एवं सम्प्रभुता को अक्त नहीं किया

गया है । विलोबी के कथनुसार राज्य एक ऐसा कानूनी व्यक्ति या स्वरूप है जिसे कानून के निर्माण का अधिकार प्राप्त है । यहां सम्प्रभुता तो बताई गई है परन्तु भूमि, सरकार एवं जनसंख्या को नहीं बताया गया है ।

4. उद्देश्य तथा कार्य के आधार पर - हर्बर्ट स्पेंसर के अनुसार राज्य दुर्गुणों की सन्तान है और उसे त्यागकर मनुष्य, उस समाज में प्रवेश करेगा जहां स्वतंत्रता ही स्वतंत्रता है । बांसा के शब्दों में राज्य एक नैतिक विचार का मूर्त रूप है। प्लेटो के अनुसार राज्य व्यक्ति का विराट रूप है । कार्ल मार्क्स के शब्दों में राज्य केवल एक ऐसी मशीन है जिसके द्वारा एक वर्ग दूसरे वर्ग का शोषण करता है। एंजिल्स के विचार में राज्य बुजुर्ग वर्ग की एक समिति मात्र है।

5. शक्ति की धारणा के आधार पर :- मेकियावेली के शब्दों में चाहे राजतंत्र हो या गणतंत्र समस्त शक्तियाँ जिनका आधार जनता होती है, राज्य की संज्ञा पाती हैं ।

वेटिल के शब्दों में राज्य मानव, समाज या राजनीतिक संख्या का वह रूप है जो अपनी शक्तियों के मिश्रण द्वारा सर्वसाधारण के हित की कामना करता है ।

ट्राटस्की के मतानुसार राज्य एक शक्ति है और हमें उस की उपासना करनी चाहिए ।

6. बहु समुदाय के आधार पर- बौदां के अनुसार राज्य कुटुम्बों तथा उसके सामूहिक अधिकार की वस्तुओं का एक ऐसा समुदाय है जो सर्वश्रेष्ठ शक्ति तथा तर्क बुद्धि से संचालित होता है । लॉस्की के अनुसार राज्य एक ऐसा प्रादेशिक समाज है जो शासन और प्रजा में विभक्त होता है । जिसमें प्रजा,व्यक्ति अथवा व्यक्ति समुदाय के रूप में होता है और शासन सर्वोपरि बल-प्रयोग पर आधारित अपनी शक्ति द्वारा प्रजा के साथ अपने सम्बन्ध निर्धारित करता है ।

7. उत्पति के आधार पर:- सिलेल ऑपन हीम ने शक्ति को राज्य के जीवन का प्रमुख तत्व माना है । कुछ विद्वानों ने राज्य की उत्पति का कारण ईश्वर को माना है । राज्य को ईश्वर की रचना ही कह सकते हैं । हॉब्स, लीक एवं रूसों ने राज्य की उत्पति सामाजिक समझौते से मानी है । पितृ-प्रधान एवं मातृ प्रधान सिद्धान्तों में राज्य को कुटुम्ब का ही एक रूप माना है । राज्य की सर्वोत्तम परिभाषा गार्नर ने दी है उसकी परिभाषा में राज्य के सभी तल मौजूद हैं । कुछ लेखक राज्य को कानूनी संरचना मानते हैं तो कुछ लोग उसे आवश्यक बुराई मानते हैं । कुछ विचारक इसे एक शक्ति सम्पन्न संस्था बतलाते हैं और कुछ चिन्तक उसे एक लोक-कल्याणकारी संस्था मानते हैं ।

8. संविधान के आधार पर:- हमारे संविधान के अनुच्छेद-1 के तीसरे खण्ड में भारत के राज्य क्षेत्र को परिभाषित किया गया है तथा अनुच्छेद- 12 के अन्तर्गत राज्य-शब्द की विस्तृत व्याख्या की गई है । संविधान की प्रारूप समिति द्वारा अनुच्छेद-7 में राज्य के बारे में विवेचना की गई है । जो इस प्रकार इस भाग में जब तक कोई अन्यथा अपेक्षित न हो राज्य के अन्तर्गत भारत की सरकार और संसद, तथा राज्य में से राज्य की सरकार और विधानमंडल तथा भारत के राज्य क्षेत्र के भीतर या भारत सरकार के नियंत्रण के अधीन सभी स्थानीय और अन्य प्राधिकारी हैं । उक्त संविधानिक परिभाषा के अनुसार राज्य के अन्तर्गत हम निम्नलिखित को शामिल कर सकते हैं ।

1. संसद और राज्य विधान मण्डल
2. भारत सरकार तथा राज्य की सरकारें
3. भारत राज्य क्षेत्र के भीतर सभी स्थानीय तथा अन्य अधिकारी तथा
4. भारत सरकार के नियन्त्रण एवं प्रशासन के अधीन सभी स्थानीय तथा अन्य अधिकारी ।

यहाँ स्थानीय प्राधिकारी से तात्पर्य सभी स्वायतशाषी विभागों /संस्थानों से है । इसमें ग्राम पंचायत, नगर पालिका, नगर निगम, छावनी मंडल, विश्वविद्यालय, निगम, समवाय, परिषद चाहे सरकार की हों या अर्द्ध सरकारी, सभी तरह के स्थानीय प्राधिकारी आते हैं ।

अन्य प्राधिकारी शब्द की परिभाषा भारतीय संविधान अथवा सामान्य खण्ड कानून में नहीं दी गई है । इसलिए इस बात पर बहुत विचार-विमर्श रहा कि कौन-कौन से प्राधिकारी अन्य प्राधिकारी के अन्तर्गत आते हैं । प्रारंभ में राजनीति विचारकों, संविधान नेताओं, न्याय शास्त्रियों एवं न्यायालयों द्वारा अपने दिए गए फैसलों में भिन्न-भिन्न मत व्यक्त किए गए थे लेकिन अंतत: - उच्चतम न्यायालय ने भी कुछ मामलों में यह निर्णय किया कि अन्य प्राधिकारी शब्द में वे भी संविधानिक तथा वैधानिक अधिकारी शामिल है जिन्हें विधि द्वारा शक्तियां प्रदान की गई हैं । इसमें राज्य के अभिकरण उपक्रम भी आते हैं । सभी सरकारी कम्पनियाँ जो राज्य के अभिकरण के रूप में हैं अनुच्छेद- 12 के अन्तर्गत राज्य कहलाती हैं । जैसे-सहकारी समिति या परियोजना विकास-निगम, सहायता प्राप्त महाविद्यालय, विद्यालय, भूमि विकास बैंक, मैसूर कागज कारखाना, राजस्थान राज्य- पथ परिवहन निगम, माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, विद्युत वितरण निगम लिमिटेड, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, भारतीय विधिक परिषद चिकित्सा परिषद आदि को अन्य अधिकारी में शामिल किया गया है । विधान पालिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका सरकार के अभिन्न अंग होने के कारण इन्हें राज्य में ही बताया गया है। न्यायपालिका को हमारे संविधान में स्वतंत्र दर्जा दिया गया है ।

1.3 राज्य आवश्यक तत्व

राज्य के लिए किन-किन लक्षणों या विशेषताओं का होना जरूरी है । आइए अब हम राज्य के निम्न चार आवश्यक तत्वों के बारे में बिन्दुवार प्रकाश डालते हैं ।

1.3.1 जनसंख्या :- राज्य मनुष्यों की एक संस्था है । मनुष्यों के बिना कोई मानव समुदाय नहीं बन सकता है । जनसंख्या का होना राज्य की बुनियादी आवश्यकता है । मनुष्यों के अभाव में राज्य की कल्पना नहीं की जा सकती है । राज्य की न्यूनतम और अधिकतम जनसंख्या के बारे में कोई निश्चित संख्या व्यक्त नहीं की गई है । राज्य के निर्माण के लिए एक प्रदेश में बहु संख्यक परिवारों का होना आवश्यक है । प्लेटो ने 5040 तथा रूसों ने राज्य के लिए दस हजार जनसंख्या बतलाई थी । किसी राज्य की जनसंख्या के लिए यह आवश्यक नहीं हैं कि जनसंख्या किसी एक ही जाति, धर्म, सम्प्रदाय, भाषा तथा संस्कृति से सम्बन्धित हो बल्कि एक ही राज्य की प्रजा या नागरिक होने के संबंध में उसकी निष्ठा का एक ही भाव केन्द्रीय होना आवश्यक बताया है ।

1.3.2 निश्चित भू भाग :- राज्य का दूसरा आवश्यक तत्व भूमि है बिना निश्चित भू भाग के राज्य की कल्पना नहीं की जा सकती है । जनता उस समय तक राज्य का रूप धारण नहीं कर सकती जब तक की उसका कोई निश्चित प्रदेश न हो । राज्य के क्षेत्रफल के बारे में कोई निश्चित नहीं बताया गया है अर्थात भू-भाग छोटा बडा हो सकता है । राज्य की सीमाएं निश्चित होनी चाहिए । राज्य हेतु भूमि का महल भौतिक एवं अध्यात्मिक दृष्टिकोण से भी है । निश्चित भू-भाग पर बिना लोगों में एकता, बन्धुता एवं राष्ट्र प्रेम की भावनाएं नहीं पनप सकती हैं । प्रदेश एवं उसकी जनसंख्या में उचित अनुपात होना चाहिए । विशाल प्रदेश पर प्राकृतिक संसाधन प्रचुर मात्रा में रहने की संभावना होती है तथा दुश्मन भी शीघ्रता से कब्जा नहीं कर सकता है । इस प्रकार राज्य का वैयक्तिक आधार जनता होती है । इसी

तरह उसका भौतिक आधार भू-भाग होता है । राज्य के लिए भू-भाग का एक रूप होना आवश्यक नहीं माना

1.3.3 सरकार :- शासन के बिना राज्य का निर्माण पूर्ण नहीं होता है । किसी निश्चित भू भाग पर रहने बाले लोगों को तब तक राज्य नहीं कहा जा सकता जब तक कि बही कोई सरकार न हो वास्तव में राज्य राजनैतिक रूप से संगठित एक समाज है । बिना सरकार के राज्य नहीं हो सकता, परन्तु बिना राज्य के सरकार का अस्तित्व संभव है सरकार राज्य का संगठनात्मक सरूप होता है । इसके बिना राज्य एक संकल्पना अथवा विचार बनकर रह जाएगा । सरकार राज्य का बाहरी रूप है, सरकार के रूपों में एक तंत्र, कुलीन तंत्र, राज्य-तंत्र और लोकतंत्र मुख्य हैं । एक राज्य में एक ही सुसंगठित सरकार का रहना बढ़िया रहता है । वह सरकार सर्वोतम है जो भली प्रकार शासन करे । अनुशासन एवं आज्ञापालन राज्य के लिए निहायत जरूरी है । सरकार की अनुपस्थिति में राज्य लोक उद्देश्यों एवं लोकहित में अभिवृद्धि नहीं कर सकता है । सरकार के बगैर कानून-व्यवस्था चौपट होने पर अराजकता की स्थिति उत्पन्न होकर राज्य बिखर जाएगा । सरकार के माध्यम से ही राज्य के विचार संकल्प बनते हैं और उनकी अभिव्यक्ति होती है । सरकार के निर्माण में चाहे केन्द्रीय हो या स्थानीय इसमें विधानपालिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका तीनों प्रमुख अंग होते हैं । सरकार के द्वारा ही राज्य में शांति ब अवस्था की स्थापना होती है एवं समाज में संगठन उत्पन्न होता है । राज्य की चाहे शासन प्रणाली कैसी भी चल रही हो परन्तु सरकार स्थित होनी चाहिए । सरकार ही राज्य की सेवाओं को जनता जनार्दन तक पहुँचाती है। वर्तमान में लोक कल्याणकारी राज्य के विकास में अभिवृद्धि हुई है । आधुनिक युग में सरकार जनता के लिए आवास, स्वास्थ्य, शिक्षा, परिवहन, रोजगार, मनोरंजन, सूचना संचार, ऊर्जा सहकारी, उचित करारोपण के व्यापक, प्रबन्धन करने में लगी है । जनता की सुख सुविधाओं एवं शांति विकास व्यवस्था करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है ।

1.3.4 सम्प्रभुता :- राज्य के अस्तित्व को बनाए रखने के लिए संप्रभुता का होना अनिवार्य है । राज्य के शासन को संचालित करने में सर्वोच्च सत्ता का होना जरूरी है । संप्रभुता का अर्थ है, सर्वोच्च शक्ति। प्रभुसत्ता को राज्य का प्राण कहा जा सकता है । प्रभुसत्ता दो प्रकार की होती है । (1) आन्तरिक प्रभुसत्ता तथा (2) बाह्य प्रभुसत्ता। आन्तरिक प्रभुसत्ता से अभिप्रेत है कि राज्य अपनी सीमा के अन्तर्गत सर्वोच्च है और एकता के अन्तर्गत रहने वाले सभी व्यक्तियों या समुदायों पर उसके कानून लागू होते हैं । देश की आन्तरिक सुरक्षा का जिम्मा इसी में आता है । बाह्य संप्रभुसत्ता से अभिप्राय है कि राज्य बाहरी नियन्त्रण से मुक्त है । वह अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में पूर्णत: स्वतंत्र है, वह अपनी विदेश नीति स्वयं निर्धारित कर सकता है । अन्य राज्यों के साथ स्वेच्छा से सम्बन्ध स्थापित कर सकता है, तथा किसी अन्य राज्य का उस पर कोई दवाब नहीं हो सकता । प्रत्येक सरकार अपने राज्य में सर्वोच्च होनी चाहिए । संविधान में सरकार को सुचारू रूप से चलाने के लिए शक्तियों का विभाजन किया गया है । यदि राज्य अपने आन्तरिक विद्रोह एवं बाह्य आक्रमण के करण अपनी संप्रभुसत्ता खो देता है तो राज्य का अस्तित्व खतरे में हो कर सरकार की सुस्थिरता समाप्त हो जाती है । प्रभुसत्ता के कारण ही राज्य की अन्य राज्यों में अपनी पहचान सुस्थापित होती है । प्रभुसत्ता के बिना राज्य का शासन नहीं चलाया जा सकता है ।

1.4 राज्य का स्वरूप

इस इकाई के माध्यम से आपको प्रमुख रूप से यह बताने का प्रयास किया जाएगा कि राज्य के विविध रूप वर्तमान में कितनी तरह के पाए जाते हैं । आइए, हम यहीं राज्य शासन के सरूप को निम्नवत बता सकते हैं ।

1.4.1 अहस्तक्षेपवादी राज्य

ऐसा राज्य जो अपने शासन के अन्तर्गत बिना किसी न्यायोचिततता के कोई हस्तक्षेप नहीं करता हो तो इसे अहस्तक्षेपवादी राज्य कह सकते हैं । इसे हस्तक्षेप न करने की नीति भी कहा गया है ।

1.4.2 लोक-कल्याणकारी राज्य

यह वह राज्य है जो राज्य द्वारा किए जाने बाले साधारण कार्यो के अतिरिक्त लोक कल्याणकारी गतिविधियां सम्पन्न करता है । इसमें जनता की मलाई के लिए संचालित की जा रही सभी योजनाएं, परियोजनाएं, विकासपरक, संस्था, सामाजिक न्याय एवं सुरक्षा आदि कार्य गिनाए जा सकते हैं । इसके अलावा बेरोजगारी निवारण के प्रयास, बीमा योजनाएं, वृद्धावस्था पेंशन, सामुदायिक भवन, आवास निर्माण आदि सभी कार्य आते हैं ।

लोक- कल्याणकारी राज्य की सफलता के लिए निम्नलिखित कार्यो को पूरा करना आवश्यक माना गया है ।

1. अनिवार्य कार्यो के अन्तर्गत आंतरिक शांति एवं सुरक्षा बनाए रखना, प्रतिरक्षा की अवस्था करना, न्याय का समुचित प्रबन्ध करना, राजस्व एकत्रित करना आदि आते हैं ।
2. ऐच्छिक कार्यो के अन्तर्गत जैसे समाज-सुधार, श्रम का नियमन, कृषि, उद्योग एवं व्यापार का नियमन, असहाय एवं पीड़ितों की सहायता, शिक्षा, नैतिक उन्नति के साधनों का विकास, लोक सांख्य, आर्थिक सुरक्षा तथा परिवार नियोजन सम्बन्धी प्रमुख कार्य शामिल किए जा सकते हैं ।

1.4.3 सर्वाधिकारवादी राज्य

इस प्रकार के राज्य के अन्तर्गत व्यक्ति के जीवन पर पूर्ण रूप से अधिकार राज्य का होता है । उदाहरण के लिए तानाशाही राज्य इसी श्रेणी के राज्य होते हैं ।

1.4.4 उदारवादी राज्य

इस प्रकार के राज्य के अन्तर्गत राज्य का शासन संचालन करते समय खुली स्पर्धा के अन्तर्गत कार्य किए जाते हैं । राज्य उदार या व्यापक दृष्टिकोण को ध्यान में रखता है ।

1.4.5 समाजवादी राज्य

इस प्रकार के राज्य के अन्तर्गत साम्यवाद को ध्यान में रखा जाता है । राज्य का सभी साधनों पर कारगर नियंत्रण रखा जाता है । सार्वजनिक सम्पत्ति सभी नागरिकों की मानी जाती है। राज्य का सभी को काम देने या भरण पोषण का दायित्व होता है । इसमें व्यक्तियों को आर्थिक स्वतंत्रता होती है। समस्त सम्पत्ति सरकार की होती है ।

1.4.6 प्रजातांत्रिक राज्य

प्रभुसत्ता का वास जब वास्तविक रूप से सम्पूर्ण जनता में होता है तो इसे प्रजातंत्र, जनतंत्र या लोकतंत्र कहा जाता है। अब्राहिम लिंकन अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति के अनुसार 'प्रजातंत्र शासन जनता का जनता के द्वारा और जनता के लिए होता है । जनतंत्र शासन जनता के शासन का घोतक है । जनतंत्र शासन में सरकार जनता के प्रति उत्तरदायी होती है जैसे भारत ।

1.4.7 अधिनायकवादी राज्य

इसे तानाशाही शासन के नाम से भी जानते हैं । अधिनायकवादी से आशय यह है कि राज्य का अध्यक्ष जब बल पूर्वक गैर कानूनी ढंग से सता पर एकाधिकार कर लेता है और अनियंत्रित शक्तियों का प्रयोग करता है तो उसे अधिनायक तंत्र कहते हैं । 1 तानाशाही राज्य निरंकुश होता है । 2. इसमें नेता की पूजा की जाती है । 3. यह उदारवाद, प्रजातंत्र तथा व्यक्तिवाद का विरोधी होता है । 4. यह हिंसक एवं शक्तिशाली साधनों में विश्वास करता है । 5. इसमें प्रेस एवं अभिव्यक्ति के साधनों पर नियंत्रण होता है । 6. ऐसे शासन में विरोधी दल का अस्तित्व नहीं होता है । 7. यह साम्राज्यवाद में आस्था रखता है । 8. ऐसे राज्य में या तो धर्म के लिए कोई स्थान नहीं होता है या फिर धार्मिक कट्टरता पाई जाती है ।

1.4.8 धर्म निरपेक्ष राज्य

ऐसे राज्य धर्म सहिष्णु होते हैं तथा सभी धर्मावलम्बियों को पूर्ण स्वतंत्रता होती है, राज्य का अपना पृथक से कोई धर्म नहीं होता है । धर्म के आधार पर राज्य के द्वारा कोई भेदभाव नहीं किया जाता है । राज्य धर्म के मामलों में तटस्थ रहता है अर्थात सभी वर्मा को समान आदर दिया जाता है । सर्व धर्म समानता को ध्यान में रखते हैं । जैसे भारत में धर्म-निरपेक्षता पाई जाती है ।

1.4.9 धर्म आधारित राज्य

कुछ राज्यों में एक धर्म, राज्य धर्म होता है, उसी धर्म को मानने बालों को सभी अधिकार एवं स्वतंत्रताएं प्राप्त होती हैं। ऐसे राज्यों में दूसरे धर्म के अनुयायियों को कोई स्वतंत्रता नहीं होती है । जैसे पाकिस्तान, इराक, इरान, आदि देश धार्मिक कट्टरपंथी है ।

1.5 सरकार का अर्थ, परिभाषा तथा राज्य एवं सरकार अंतर

सरकार एक ऐसी निराकार संस्था होती है जिसके द्वारा स्वयं कार्य नहीं किया जा सकता है। राज्य एक विचार है जिसे हम देख नही सकते हैं । राज्य अपनी सम्प्रभुता शक्ति का प्रयोग सरकार के माध्यम से ही करता है । सरकार से हमारा तात्पर्य उन सभी व्यक्तियों, संस्थाओं और साधनों से होता है जिनके द्वारा राज्य की अभिव्यक्ति होती है तथा उसे कार्यरूप प्रदान किया जाता है ।

सरकार की परिभाषा :- गार्नर ने कहा था कि राज्य की इच्छा की पूर्ति जिस संगठन या एजेन्सी के द्वारा होती है उसे सरकार कहते है ।

सरकार को मुख्यत: स्थाई एवं अस्थाई सरकार में बाँट सकते हैं । कार्यपालिका के अधिकारी एवं कर्मचारी सरकार के प्रशासन को चलाने में सहायता करते हैं । ये स्थायी रूप से प्रशासन के रहते हैं । जबकि विधानपालिका के सदस्य अर्थात मंत्रीगण अस्थायी प्रकृति में सत्ता संभालते हैं ।

1.6 सरकार के अंग

सरकार के प्रमुख रूप से तीन अंग होते हैं:-

1. व्यवस्थापिका का प्रमुख कार्य कानून का निर्माण करना, संविधान संशोधन का कार्य, विमर्शात्मक कार्य, वित्त एवं प्रशासन पर नियन्त्रण, न्याय सबकी कार्य, निर्वाचन सम्बन्धी कार्य, जन-भावनाओं की अभिव्यक्ति तथा समितियों एवं आयोगों की नियुक्ति करना आदि कार्य हैं ।
2. कार्यपालिका - प्रशासन सम्बन्धी कार्य, वैदेशिक संबंधों का संचालन, सैनिक कार्य, विधि-निर्माण सम्बन्धी कार्य, वित्तीय कार्य, न्याय सम्बन्धी कार्य ।
3. न्यायपालिका के कार्य:- अभियोगों का निर्माण, कानूनों की व्याख्या, औचित्य के आधार पर कानून निर्माण, घोषणात्मक निर्णय प्रदान करना, संविधान रक्षण का कार्य तथा, परामर्श सम्बन्धी कार्य करने होते है ।

1.6.1 शासन के प्रकार

1. संघ सरकार

इसे केन्द्रीय शासन के नाम से भी पहचाना जाता है । भारत में संघीय शासन को भारत सरकार के नाम से जानते हैं। संविधान की सातवीं अनुसूची की प्रथम सूची के अन्तर्गत संघ विषयों को बताया गया है । संविधान की प्रथम अनुसूची में कुल 97 विषयों मदों को दिया गया है । संघीय सरकार के अन्तर्गत संसद, सर्वोच्च न्यायालय एवं केन्द्रीय शासन सचिवालय तीन सरकार के प्रमुख भाग शामिल होते हैं । भारत केन्द्र एवं राज्यों की सता में संसदात्मक शासन प्रणाली प्रभावी है ।

2. राज्य सरकार

इसे राज्य या प्रान्तीय या प्रदेश शासन के नाम से भी सम्बोधित कर सकते हैं । संविधान की सातवीं अनुसूची की द्वितीय सूची राज्य सूची से सम्बन्धित है, राज्य सूची के अन्तर्गत कुल 66 विषय मदों को बताया गया है । राज्य-सरकार के अन्तर्गत राज्य विधान मंडल (विधानसभा तथा विद्यमान परिषद), उच्च न्यायालय तथा राज्य का सचिवालय सरकार के प्रमुख अंग होते हैं । इसी प्रकार संविधान की तृतीय सूची में समवर्ती सूची सम्मिलित है । इस समवर्ती सूची में कुल 47 विषय शामिल किए गए हैं । समवर्ती सूची पर केन्द्र एवं राज्य दोनों को ही शक्ति प्राप्त है । भारत में वर्तमान में द्वितीय अनुसूची के अनुसार 22 राज्य स्थित हैं ।

3. संघ शासित राज्य

संविधान की प्रथम अनुसूची के अनुसार वर्तमान में भारत में 7 केन्द्र शासित राज्य शामिल किए गए हैं । जो निम्नलिखित हैं। 1. अण्डमान और निकोबार द्वीप समूह 2. लक्षद्वीप 3. दादरा एवं नागर हवेली 4. दमन और 5. पाण्डिचेरी 8. चण्डीगढ़ एवं 7. दिल्ली

1.8.2 राज्य एवं सरकार में अंतर:-

1. राज्य पूर्ण होता है जबकि सरकार उसका एक अंग है ।
2. राज्य स्थायी है जबकि सरकार अस्थायी होती है ।
3. राज्य अमूर्त है जबकि सरकार मूर्त रूप में होती है ।
4. राज्य का स्वरूप सदैव है जबकि सरकार के विभिन्न रूप हैं ।
5. राज्य में समाज के सभी व्यक्ति सदस्य होते हैं जबकि सरकार की सदस्यता सीमित होती है ।

6. राज्य स्वाभाविक और प्राकृतिक है जबकि सरकार कृत्रिम होती है ।
7. राज्य का विरोध संभव नहीं होता है जबकि सरकार का विरोध संभव है ।
8. राज्य हेतु निश्चित भू-भाग आवश्यक होता है जबकि सरकार हेतु आवश्यक नहीं है ।

बोध प्रश्न

1. भारत मे शासन के विभिन्न प्रकारों को बताइए।
2. राज्य के स्वरूप पर प्रकाश डालिए ।
3. राज्य एवं सरकार मे निहित भेद को उजागर कीजिए ।

1.7 सुशासन संचालन के निर्धारक सिद्धान्त

सरकारी गोपनीयता कानून के अनुसार सरकार अपने काम काज को रहस्य में रखेगी । परन्तु विभिन्न देशों ने अपने संविधान एवं संबंधियों के अन्तर्गत सरकार की कार्य पद्धति के बारे में जनता को जानकारी हासिल करने का अधिकार दे दिया है । कौन सी सूचनाएं प्रकट नहीं की जायेंगी यह भी व्यवस्था की गई है । लोगों को इस प्रकार शासन के काम-काज के बारे में जानने का हक मिला है । इस इकाई में आप राज्य शासन के सुसंचालन के लिए विभिन्न प्रमुख सिद्धान्तों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे । सूचना अधिकार के संदर्भ में निम्न उपयोगी सिद्धान्त गिनाए जा सकते हैं ।

1.7.1 पारदर्शिता का सिद्धान्त

जिस प्रकार शीशे के दोनों तरफ पारदर्शिता होती है अर्थात बाहर भीतर आर-पार हम शीशे में कुछ भी देख सकते हैं उसी प्रकार शासन के काम-काज में पारदर्शिता लाने की सख्त आवश्यकता महसूस की गई है । पारदर्शिता एवं सूचना को परस्पर अनुपूरक कह सकते हैं । पारदर्शिता का यह सिद्धान्त हमें यह समझाता है कि किस प्रकार एक वस्तु को किसी पारदर्शी शीशे में रखा जाता है तो बह रखी गई वस्तु खुले रूप में आर-पार दिखाई देती है । अर्थात सरकार के शासन की नीतियों, योजनाओं परियोजनाओं, संयोजनाओं एवं दस्तावेजों को आम व्यक्ति भी अवलोकित कर सके -ऐसी अवस्था शासन द्वारा कतिपय अपवादों को छोड़कर अनिवार्य रूप से बताई गई है । मध्य प्रदेश के पूर्व मुख्य मंत्री दिग्विजय सिंह ने मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन में यह कहा था कि सरकार के मंत्रियों को गोपनीयता की शपथ के बजाए पारदर्शिता की शपथ अब दिलवाई जानी चाहिएं । लोकसभा अध्यक्ष सोमनाथ चटर्जी ने जयपुर के एक सम्मेलन में कहा था कि खबरपालिका को संसद /विधानसभाओं में चल रही कार्यवाही के बारे में जानने एवं देखने का अधिकार बनता है । सरकार का कर्तव्य है कि अपने शासन के काम काज में पारदर्शिता लाने का पूर्ण प्रयास जारी रखे।

1.7.2 संवेदनशीलता का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के अनुसार शासन एवं प्रशासन को सतर्कशील एवं संवेदी होना चाहिए । किसी भी जन-समस्या का समुचित निवारण करने के लिए तुरन्त चौकस होकर उस समस्या के समाधान के कारगर उपाय करना श्रेष्ठकर रहता है । आज के सूचना एवं संचार क्रान्ति के युग में जनसंचार के माध्यमों ने प्रशासन को अवगत करवाकर अतिसंवेदनशील बनने में भरपूर सहायता की है । संवेदनशील होने के बारे में आवश्यक प्रबंध प्रशासनिक विधि में किया गया है । इस तरह से यदि शासक अपनी सरकार को संचालित कराने में इस सिद्धान्त का उपयोग कर लेता है तो निःसंदेह शासन की कई ज्वलंत

समस्याओं का निराकरण तत्काल प्रभाव से हो जाता है । संवेदनशीलता एक पारदर्शिता एवं जवाबदेही शासन का मुख्य लक्षण होती है । सूचना के अधिकार में संवेदनशील होना एक बुनियादी जरूरत होती है । डॉ. रमाकान्त जोशी बनाम राजस्थान राज्य के मामले में राजस्थान उच्च न्यायालय ने अपने निर्णय में यह सुस्थापित किया था कि सरकारी अधिकारियों की संवेदनशीलता नागरिकों के प्रति प्रखर होनी चाहिए ।

1.7.3 प्रतिबद्धता का सिद्धान्त

यह सिद्धान्त भी शासन एवं प्रशासन चलाने के लिए अति उपयोगी एवं महत्वपूर्ण कहा जा सकता है । यदि जनता किसी भी कार्य के लिए आबद्ध रहती है तो ऐसी परिस्थिति में राज्य शासन को भी उसके प्रति प्रतिबद्ध रहना चाहिए । सरकारी अधिकारियों को यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि किसी कार्य को करने के लिए या किसी जनसमस्या के निवारण के लिए उनके दिए गए वचनानुसार जनता के प्रति आबद्ध रहना चाहिए । तब जाकर कुशल एवं अच्छे प्रशासन में उतरोत्तर वृद्धि हो सकेगी । किसी कार्य के प्रति जनता एवं प्रशासनिक अधिकारीगण को असावधानी या लापरवाबाही नहीं बरतनी चाहिए ।

1.7.4 जवाबदेहिता का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त को हिसाब-देहिता के नाम से भी जानते हैं यदि किसी नागरिक ने कोई जानकारी प्राप्त करनी चाही है तो ऐसी अवस्था में राज्य का यह कर्तव्य बनता है कि वह उस अपेक्षित सूचना का प्रयुत्तर करे । संसद द्वारा सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 पारित करने का कारण अब लोक जावाबदेहिता को संरक्षित किया गया है तथा प्रशासनिक क्षेत्रों में भी इसकी समुचित पालना कराया जाना सुनिश्चित होने लगा है । आज सूचना प्रौद्योगिकी क्रांति के युग मे राज्य को सुशासन के लिए जवाबदेही होना एक अपरिहार्य आवश्यकता बन गयी है । सरकार को अपना राज चलाते समय अपने नागरिकों के प्रति पूर्णतया जवाबदार बनना एक अनिवार्य आवश्यकता हो गई है । शासन को किसी व्यक्ति द्वारा पूछे गये सवाल का प्रत्युत्तर देना चाहिए । तब जाकर कल्याणकारी राज्य की जन-अवधारणा पूरी हो सकती है । शासन के किसी भी प्रशासक को अपने कार्य के प्रति किंकर्तव्यविमूढ़ नहीं होना चाहिए ।

1.7.5 खुलापन का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त को मुक्तता या प्रकटता के नाम से भी जानते हैं । सूचनाधिकार के सिद्धान्त के अन्तर्गत शासन को अपने कामकाज में खुलापन का रखना बहुत ही आवश्यक है । सरकार को अपने राजकार्य में विज्ञापनों एवं जनसंपर्क की तरह खुला रहना, स्वस्थ्य लोकतंत्र के निर्माण के लिए श्रेष्ठकर रहेगा । सरकारी कार्य, लेखा-जोखा, हिसाब, नीति, योजना, परियोजना, संयोजना एवं दस्तावेज सभी प्रकट करने की दशा रखना जरूरी है । आज सूचना तकनीक के युग में सारी दुनिया सिमट कर एक हो गई है । भारतीय साक्ष्य कानून की धारा-73 के अनुसार किसी दस्तावेज की प्रमाणित प्रतिलिपि लेने का अधिकारी शासन द्वारा देने का दायित्व आबद्ध किया गया है । सूचनाधिकार के अन्तर्गत प्रकटता के सिद्धान्त को संरक्षित किया गया है । स्वीडन सरकार ने तो अपने सभी दस्तावेजों को खुले जनता के अवलोकनार्थ रखा है । शासन में मुक्तता भ्रष्टाचार का समूल रूप से उन्मूलन कर देती है । शासन

में जितना ज्यादा खुलापन लाया जायेगा सरकार उतनी ही जनसूचना को प्रोत्साहन देने का कार्य करती है । खुलेपन के चलते आशंका को शासन के काम-काज से हटाया जा सकता है ।

1.7.6 जन-सहभागिता का सिद्धान्त

जनसहभागिता को सूचनाधिकार का एक अभिन्न अंग माना गया है । जन सहभागिता के कारण ही सरकारें जब कार्य निष्पादित कर पाती है । सरकारी राजकाज में जनता की भागीदारी निर्धारित किया जाना अति आवश्यक है । यदि कोई भी सरकार अपना बजट (आय-व्यय) आने से पूर्व सम्बन्धित सलाहकारों की राय लेती है तो इस जन-सहभागिता के समय सरकार के पास अच्छी से अच्छी सलाह आना कुशल प्रशासन का प्रतीक कहा जा सकता है ।

1.7.7 उत्तरदायित्व का सिद्धान्त

कुशल सुशासन के लिए उत्तरदायी होना एक अपरिहार्य आवश्यकता बन गई है । शासन के मुखिया को राज-काज की नीति निर्धारण व आयोजना के बारे में सतर्क रहना चाहिए । भारतीय संविधान के अनुच्छेद-78 में यह स्पष्टतः व्यवस्था की गई है कि देश के प्रधानमंत्री को अपनी सरकार के कामकाज के बारे में जानकारी देने हेतु कर्तव्य सौंपा गया है । इसी प्रकार संविधान के अनुच्छेद 167 में राज्यपाल को जानकारी देने आदि के सम्बन्ध में मुख्यमंत्री का कर्तत्य बताया गया है । सरकार को सुव्यवस्थित रूप से चलाने के लिए लोक प्राधिकारियों एवं कर्मचारियों पर उनको सौंपे गए कार्य की जिम्मेदारी के प्रति उत्तरदायित्व बनाया जाए ताकि सरकार की जनता के प्रति निभाए जाने बाले उत्तरदायित्वों की परिपालना सुनिश्चित हो सकेगी । राष्ट्रपति एवं राज्य के राज्यपालों को सहायता एवं सलाह देने के लिए मंत्री-परिषद का दायित्व निर्धारित किया गया है । संसदीय शासन प्रणाली में मंत्री-परिषद का सदन के प्रति शासन को संचालित करने का सामूहिक उत्तरदायित्व निश्चित किया गया है ।

1.7.8 शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त

केन्द्र एवं राज्यों की सरकार के शासकीय कार्यो को हम मुख्य रूप से तीन क्षेत्रों में बाँट सकते है।

1. विधायिनी
2. कार्यपालिकीय क्षेत्र एवं
3. न्यायिक क्षेत्र

इस सिद्धान्त के मतानुसार इन तीनों अंगों क्रमश: व्यवस्थापिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका की शक्तियों एवं कार्यो को शक रखा जाना चाहिए तथा इनके कार्यो का संचालन सरकार के उक्त तीनों क्षेत्रों द्वारा पृथक रूप से किया जाना चाहिए । यह लोकतांत्रिक व्यवस्था की गई है कि विधायिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका परस्पर एक दूसरे के कार्यो एवं शक्तियों में हस्तक्षेप नहीं कर सकती हैं । इसी प्रकार कार्यपालिका, विधायिनी एवं न्यायपालिका के कार्य-क्षेत्र में कोई दखल नहीं कर सकती है न्यायपालिका विधायिनी तथा कार्यपालिकीय शक्तियों में कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकती है । सन् 1748 में मोन्टेस्क्यू ने 'शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त' को सर्वप्रथम व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक रूप से अपनी पुस्तक विधियों की भावना में प्रतिपादित किया था । केशवानन्द भारती बनाम केरल राज्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि संविधान की सर्वोच्चता तथा शक्ति- पृथक्करण

भारतीय संविधान के आधारभूत सिद्धान्त हैं । अत: तीनों अंगों के पृथक-पृथक कार्यो का कोई दूसरा अंग कार्यभार नहीं ले सकता है । इसे संविधान के मूलभूत ढाँचे के अन्तर्गत माना जाता है ।

1.7.9 प्राकृतिक न्याय का सिद्धान्त

इसे नैसर्गिक न्याय के नियम भी कहते हैं । राज्य की शासन एवं प्रशासनिक व्यवस्था के अन्तर्गत किसी व्यक्ति को उसके विरूद्ध की जा रही जाँच या कार्रवाई में पहले उसको सुना जाना चाहिए अर्थात् जवाब या स्पष्टीकरण लेना चाहिए। प्राकृतिक न्याय के तीन प्रमुख नियम होते हैं ।

1. पक्षपात के विरूद्ध नियम
2. सुनवाई का नियम
3. कोई भी व्यक्ति स्वयं के मामले में न्यायाधीश नहीं बन सकता है ।

पक्षपात के नियम के अनुसार किसी भी व्यक्ति के मामले में सुनवाई करने बाले अधिकारी की दुर्भावना से प्रेरित होकर उसके विरूद्ध कोई अन्यायोचित कारवाई नहीं करनी चाहिए कारवाई नैसर्गिक न्याय का यह मूलभूत सिद्धान्त है कि किसी व्यक्ति को अपनी बात बताने का अवसर दिए बिना उसे दण्डित करना ऋजुता के अनुकूल नहीं होता है । इसी प्रकार कोई भी व्यक्ति अपने पक्ष में कोई निर्णय नहीं दे सकता है । नैसर्गिक न्याय लोकनीति की भाँति लोक विधि की एक शाखा है और नागरिकों को न्याय दिलवाने का एक प्रबल अस्त्र के रूप में होता है । इसमें दो पक्षकारों में किसी बात को लेकर विवाद होना आवश्यक बताया गया है । नैसर्गिक न्याय का एक मानवतावादी सिद्धान्त है जिसका उद्देश्य विधिजगत में निष्पक्षता, उचितता एवं युक्तिसंगत्ता को स्थापित करना है । नैसर्गिक न्याय के नियम के अपवाद अर्थात उक्त नियम किन आधारों या कारणों पर लागू नहीं किया जा सकता है ।

1. जहाँ संवैधानिक प्रतिपादनाऐं उनको अनापेक्षित कर देती है ।
2. जनहित के मामलों में यह नियम लागू नहीं किया जा सकता है ।
3. शैक्षणिक मूल्यांकन सम्बन्धी मामलों में यह नियम लागू नहीं होता है ।
4. जहाँ प्रशासनिक कार्य विधायी कार्य के रूप में बताए जाते हैं वहाँ यह नियम लागू नहीं होता है।
5. आपातकालीन स्थिति के दौरान इस नियम को पालित नहीं किया जा सकता है ।
6. अनुशासनात्मक कार्यवाहियों में यह नियम लाग नहीं किया जा सकता है ।
7. अव्यावहारिक परिस्थितियों में भी यह नियम लागू नहीं होता है । जैसे-परीक्षा में सामूहिक नकल के आधार पर विश्वविद्यालय द्वारा परीक्षा को रद्द करना इसमें आता है ।

बोध प्रश्न-2

1. राज्य के सुसंचालित करने वाले निर्धारित विभिन्न सिद्धांतों की विवेचन कीजिए।
2. राज्य की पारदर्शिता एवं जवाबदेहिता के सिद्धांत को समझाइए।
3. शक्ति- पृथक्करण की सिद्धांत को आप अपने शब्दों में समझाइए
4. प्राकृतिक न्याय के विभिन्न नियमों पर प्रकाश डालते हुए इसके कोई अपवाद हो तो उनको स्पष्ट समझाइए ।
5. सरकार एवं राज्य मे निहित भेद को स्पष्ट कीजिए ।

1.8 सारांश

राज्य उस समुदाय को कहा जाता है जिसके पास जनसंख्या, भूमि, सरकार और प्रभुसत्ता होती है । राज्य समाज की शक्ति का प्रतीक है और सामाजिक जीवन की पहली आवश्यकता है । बिना सरकार के राज्य नहीं हो सकता, सरकार राज्य का संगठनात्मक स्वरूप होता है । सरकार राज्य का बाहरी अक्ष है, सरकार के रूपों में एक तंत्र, कुलीन तंत्र, राज्य तंत्र और लोक तंत्र मुख्य हैं । एक राज्य में एक ही सुसंगठित सरकार का रहना बढिया रहता है । सरकार एक ऐसी निराकार संस्था होती है जिसके द्वारा स्वयं कार्य नहीं किया जा सकता है । सरकार के तीन अंग व्यवस्थापिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका होते हैं । शासन के तीन प्रकार होते हैं- संघ सरकार, राज्य सरकार और संघ शासित राज्य । शासन को सुसंचालित करने बाले विभिन्न नौ महत्वपूर्ण एवं अपरिहार्य सिद्धान्त निम्न है । पारदर्शिता, संवेदनशीलता, प्रतिबद्धता, जवाबदेहिता, खुलापन, जनसहभागिता, उत्तरदायित्व, शक्ति-पृथक्करण एवं प्राकृतिक या नैसर्गिक न्याय आदि ।

1.9 बोध प्रश्न

1. राज्य के अर्थ, परिभाषा एवं मान्यता के प्रकार बतलाइये।
2. राज्य के आवश्यक तत्व एवं मान्यता विषयक सिद्धांतों पर अपने विचार लिखिए।
3. राज्य के विविध दायित्व एवं इसके सिद्धांतों पर प्रकाश डालिए ।
4. राज्य - शासन विभिन्न प्रकार एवं स्वरूप को स्पष्ट बतलाइए ।
5. प्रजातांत्रिक शासन - प्रणाली मे राज्य सरकार को संचालित करने के लिए सहायक विभिन्न सिद्धांतों को स्पष्ट समझाइए।

1.10 शब्दावली

राज्य - उस भौगोलिक निश्चित भू-भाग से है जहाँ जनसंख्या निवास करती है तथा किसी के बाहरी और आन्तरिक नियंत्रण के बिना स्वतंत्र रूप से सरकार चलती है ।

मान्यता - किसी देश/राष्ट्र/राज्य को अन्तर्राष्ट्रीय जगत में राज्य के रूप में स्वीकार करने से है ।

दायित्व - राज्य द्वारा अपने विभिन्न कार्यों की जिम्मेदारी निभाने से है ।

शासन या सरकार- राज्य का वह उपकरण जो संप्रभुता का प्रयोग करके समाज को राजनीतिक रूप से संगठित कर राज्य में परिवर्तित करता है ।

अपकृत्य/दुष्कृत्य- से आशय व्यवहार अपकार से है ।

केन्द्र शासित - केन्द्र राज्य के अधीन राज्य से है ।

पारदर्शिता- आर-पार शीशे की तरह दिखाई देने से है ।

संवेदनशीलता - शासन द्वारा नागरिकों के प्रति सजग एवं सावधान रहने से है । जन-सहभागिता-सरकार के शासन चलाने में जनता की भागीदारी से है ।

शक्ति-पृथक्करण - केन्द्र या राज्य सरकार के तीनों अंगों विधानपालिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका को बांटे गए पृथक-पृथक कार्यों एवं शक्तियों से है ।

प्राकृतिक न्याय - एक ऐसा न्याय जो व्यक्ति को कुदरती रूप से मिला है ।

उदारवादी - जो अपनी आर्थिक योजनाओं एवं नीतियों संचालित करने में स्वतंत्र है ।

प्रजातांत्रिक - जनता का, जनता द्वारा जनता के शासन से है ।

अधिनायकवादी - तानाशाही राज्य शासन से अभिप्राय है ।

धर्मनिरपेक्ष - राज्य जो सभी धर्मों को समान महत्व देता है तथा किसी धर्म के प्रति आस्था नहीं दिखाता है ।

अभिव्यक्ति - स्पष्ट रूप से व्यक्त करना

विवाक्षित - अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्त करना

1.11 संदर्भ ग्रंथ

1. भारत का संविधान- पी.एम.बक्शी, यूनीवर्सल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
2. भारत का संविधान- जे.एन.पाण्डे
3. प्रशासनिक विधि- डा. जी.एस.शर्मा, यूनिवर्सिटी बुक हाउस प्रा.लि. जयपुर
4. विधि शास्त्र- प्रो. एन.बी.परांजपे, सेंट्रल एजेन्सी, इलाहाबाद
5. सूचना का अधिकार: अपेक्षाएं एवं समस्याएं- प्रो. रमेश जैन एवं डा. एन. एल. गुर्जर समलाइसम पब्लिशर्स जयपुर
6. राजनीतिक विज्ञान- डा.वी.एल. एवं कुलदीप फडिया, साहित्य भवन, पब्लिकेशन
7. राजनीति विज्ञान के मूल आधार- डा. पुखराज जैन 2006, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा ।

इकाई-2

सामाजिक समस्याओं में राज्य की नियामक भूमिका

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 सामाजिक समस्याएं: स्वरूप एवं प्रकृति

2.3 सामाजिक समस्याओं का सामयिक परिवेश

2.3.1 बहुलवादी समाज की समस्याएं

2.3.2 परंपराएं, रूढ़ियां, रिवाज एवं सामाजिक समस्याएं

2.3.3 यथास्थिति परक दृष्टिकोण एवं बदलाव की कशमकश

2.3.4 सामाजिक समस्याओं का अन्योन्याश्रित स्वरूप

2.4 सामाजिक समस्याओं के निराकरण में अवरोध

2.4.1 अशिक्षा

2.4.2 अज्ञान

2.4.3 गरीबी

2.4.4 पिछड़ापन

2.5 सामाजिक समस्याओं के निराकरण की व्यूह-रचना

2.5.1 आम नागरिक का दायित्व

2.5.2 स्वैच्छिक संगठनों की भूमिका

2.5.3 समाज का दायित्व

2.5.4 राज्य की भूमिका

2.6 सामाजिक समस्याओं के निराकरण में राज्य का हस्तक्षेप

2.6.1 अपेक्षा एवं संभावना

2.6.2 व्यक्ति की स्वतंत्रता बनाम राज्य का हस्तक्षेप

2.6.3 सामाजिक स्वायत्तता बनाम राज्य का नियंत्रण

2.6.4 सामाजिक संस्थाओं एवं संगठनों की भूमिका बनाम राज्य का दायित्व

2.6.5 व्यक्ति समाज एवं राज्य की भूमिका सहयोग एवं समन्वय के प्रसंग

2.7 सामाजिक समस्याएं एवं राज्य की नियामक भूमिका

2.7.1 नियामक भूमिका: अर्थ एवं अवधारणा

2.7.2 नियामक भूमिका: स्वरूप एवं प्रकृति

2.7.3 सहयोग, समन्वय एवं पारस्परिकता के संदर्भ

2.8 राज्य की नियामक भूमिका के आधार

2.8.1 नीति निर्धारण
2.8.2 संवैधानिक आधार
2.8.3 कानून एवं अधिनियम
2.8.4 संगठनात्मक एवं प्रकार्यात्मक स्वरूप
2.8.5 नेतृत्व, नियंत्रण एवं पर्यवेक्षण
2.9 सारांश
2.10 शब्दावली
2.11 बोध-प्रश्न

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आय :-

1) सामाजिक समस्याओं में राज्य की नियामक भूमिका को समग्र रूप को समझ पायेंगे ।
2) सामाजिक समस्याओं के स्वरूप एवं प्रकृति को राज्य की नियामक भूमिका के संदर्भ में विश्लेषित कर सकेंगे।
3) सामाजिक समस्याओं के निराकरण एवं राज्य की नियामक भूमिका के निर्वाह में उपस्थित होने वाले अवरोधों का अध्ययन करके विवेचना कर सकेंगे ।
4) सामाजिक समस्याओं के निराकरण में राज्य की नियामक भूमिका की व्यूह रचना की समीक्षा कर सकेंगे ।
5) सामाजिक समस्याओं के निराकरण एवं उनके समाधान के संबंध में राज्य के हस्तक्षेप तथा उसकी प्रकृति की मीमांसा कर पायेंगे ।
6) सामाजिक समस्याओं के संदर्भ में राज्य की नियामक भूमिका के विभिन्न आधारों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

समस्या- विहीन समाज की कल्पना करना संभव नहीं है सभी समाज किसी न किसी समस्या से ग्रस्त रहते हैं । इन समस्याओं की जड़ में अनेक कारण मौजूद रहते हैं । ये कारण राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, प्राकृतिक, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी से संबंधित या अन्य किसी स्थानीय स्थिति की वजह से जन्म लेते हैं । प्रकारान्तर से सभी प्रकार की समस्याओं को सामाजिक समस्या के रूप में पहचाना जाता है क्योंकि किसी विशेष समस्या के जन्म, आविर्भाव एवं प्रचलन के पीछे चाहे जो भी कारण जिम्मेदार रहे हों, अंततोगत्वा समग्र समाज को किसी न किसी रूप में समस्या विशेष के कारण से प्रतिकूल रूप से प्रभावित होना पड़ता है ।

किसी भी समाज में प्रचलित समस्या का निराकरण एवं उसका उपयुक्त समाधान करना जरूरी होता है, क्योंकि समाज में निरंतर कोई न कोई सामाजिक समस्या यदि बिना उसका उचित निराकरण किये मौजूद रहती है तो वह समाज की प्रगति को अवरूद्ध कर उसे गंभीर पिछड़ेपन की स्थिति से ग्रस्त कर सकती है । अत: यह जरूरी है कि प्रत्येक सामाजिक समस्या का समीक्षात्मक अध्ययन किया जाए एवं उसके निराकरण के गंभीर उपाय किये जाएं । सामाजिक समस्याओं के निराकरण एवं उनके सामयिक समाधान के लिए कई प्रकार की इकाइयां सक्रिय रहकर अपनी-अपनी भूमिका का निर्वाह करती रहती

हैं । इन सब इकाइयों मे सबसे महत्वपूर्ण इकाई को राज्य कहा जाता है । सामाजिक समस्याओं के निराकरण में राज्य अपनी भूमिका का निर्वाह अनेक प्रकार से करता है । दो महत्वपूर्ण तरीके जिनके माध्यम से सामाजिक समस्याओं के निराकरण में राज्य अपनी महत्ती भूमिका का निर्वाह करता है वे हैं नियामक भूमिका एवं प्रवर्तनकारी भूमिका । इस अध्याय के माध्यम से हम सामाजिक समस्याओं में राज्य की नियामक भूमिका को समझने का प्रयास करेंगे ।

2.2 सामाजिक समस्याएं : स्वरूप एवं प्रकृति

किसी भी समाज में उपलब्ध समस्याओं को दो वर्गो में विभाजित किया जा सकता है । पहले वर्ग की समस्याओं को व्यक्तिगत तथा दूसरे वर्ग की समस्याओं को सामाजिक रूप में पहचाना जाता है । व्यक्तिगत समस्याएं व्यक्ति विशेष से या समाज के किसी छोटे वर्ग या समूह से संबंध रखती हैं जबकि सामाजिक समस्याएं जन-साधारण को सामान्य रूप से प्रभावित करती हैं । व्यक्तिगत समस्याओं के समाधान के लिए किये जाने वाले उपाय व्यक्ति या समूह केन्द्रित होते हैं जबकि सामाजिक समस्याओं के निराकरण के लिए सारे समाज को एक इकाई माना जाता है । सामाजिक समस्याओं के निराकरण के लिए व्यापक एवं बहुस्तरीय कार्य योजनाएं अमल में लायी जाती हैं क्योंकि सामाजिक समस्या को सामाजिक आदर्श का विचलन माना गया है जो सामूहिक, समन्वित एवं सर्वग्राही प्रयत्नों से ही ठीक हो सकता है । यह विचलन सामाजिक आचारशास्त्र के मानदण्डों की अवहेलना करता है तथा सारा समाज इस प्रकार के विचलन को निर्धारित सामाजिक मूल्यों के प्रतिकूल मानता है । यही वजह है कि सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए संगठित प्रयासों की आवश्यकता होती है ।

सामाजिक समस्याओं का स्वरूप निरंतर बदलता रहता है । किसी समय विशेष में जो व्यवहार सामाजिक रीति-रिवाजों, प्रथाओं के अनुकूल रहा है, वह धीरे- धीरे एक रूढ़ि का स्वरूप ग्रहण कर कालांतर में सामाजिक विचलन को जन्म देकर सामाजिक समस्या का आविर्भाव कर सकता है । अत: समस्त वे स्थितियां जो सामाजिक समस्या का स्वरूप ग्रहण कर सकती हैं । उन पर नजर रखी जाकर सही समय पर उनका समाधान करना जरूरी होता है, वरना ऐसी सभी स्थितियां गंभीर सामाजिक समस्या का स्वरूप ग्रहण कर सकती हैं । यही वजह है कि सभी प्रगतिशील राज्य अपनी नियामक भूमिका के अंतर्गत ऐसी व्यवस्थाओं का निर्माण करते है जो इस प्रकार के सम्भावित विचलन पर नजर रखें और स्थिति विशेष को सामाजिक समस्या का स्वरूप ग्रहण करने से रोकें और यदि कोई स्थिति सामाजिक समस्या का स्वरूप ग्रहण कर चुकी है तो उसका प्रभावी समाधान करें ।

प्रसिद्ध समाजशास्त्री वेनवर्ग के अनुसार सामाजिक समस्याएं दे स्थितियां होती हैं जो त्रुटिपूर्ण सामाजिक प्रक्रियाओं से उत्पन्न होती हैं । समाज के कई सदस्य इनको इतना आपत्तिजनक और अवांछनीय मानते हैं कि उन्हें इनका सामना करने के लिए सुधारक नीतियां, कार्यक्रम और सेवाओं की आवश्यकता प्रतीत होती है । वेनवर्ग ने सामाजिक समस्याओं की छ: विशेषताऐं बतलाई हैं वें विशेषताएं निम्नांकित हैं:-

(क) सामाजिक समस्याऐं वें हैं जिन्हें समाज के अधिकांश सदस्य आपत्तिजनक मानते हैं ।

(ख) सामाजिक समस्याऐं बदलती रहती हैं ।

(ग) सामाजिक समस्याओं के संदर्भ में जनसंचार माध्यमों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है ।

(घ) सामाजिक समस्याऐं समाज के मूल्यों और स्थापित संस्थाओं के संदर्भ में देखी एवं समझी जाती हैं ।

(ङ) सामाजिक समस्याओं का विश्लेषण सामूहिक प्रतिक्रियाओं और सामाजिक संबंधों पर पड़ने बाले प्रभावों को ध्यान में रखकर किया जाता है ।

(च) सामाजिक समस्याओं का स्वरूप सामयिक होता है ।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि सामाजिक समस्याएं आदर्श स्थिति का विचलन है । इनकी उत्पत्ति का कोई समान आधार होता है तथा उनकी मूल प्रकृति सामाजिक होती है । सामाजिक समस्याएं एक दूसरे से आपस में जुड़ी हुई होती हैं और इनके परिणाम सामाजिक होते हैं तथा इनके निराकरण के लिए समग्र, व्यापक एवं प्रभावी उपाय करने के साथ-साथ इन्हें समझने के लिए सामूहिक उपागमों की आवश्यकता होती है ।

2.3 सामाजिक समस्याओं का सामयिक परिवेश

सभी सामाजिक समस्याएं वर्तमान से संबंधित होती हैं, अत: उनका स्वरूप सामयिक होता है । इन समस्याओं का अपना एक इतिहास एवं इतिवृत्त होता है तथा इनके अस्तित्व के पीछे कई कारण मौजूद रहते हैं । इन समस्याओं का समाधान करना प्रत्येक राज्य का बुनियादी दायित्व होता है । राज्य को इन समस्याओं की समग्र समीक्षा करनी होती है सामाजिक परंपराओं एवं प्रथाओं से उत्पन्न समस्याओं के बारे में सामाजिक स्तर पर विशिष्ट वर्गों में व्याप्त स्वीकारोक्ति के स्तर को भी समझना होता हैं । अधिकांश सामाजिक समस्याओं के संबंध में यह माना जाता है कि अपने मौलिक स्वरूप में इनको समाज की प्रथाओं एवं परंपराओं का समर्थन मिलता रहा है परन्तु बदलती सामाजिक परिस्थितियों की वजह से सामयिक संदर्भों में यह स्थितियां अब गंभीर सामाजिक समस्या का स्वरूप ग्रहण कर समाज की प्रगति को अवरूद्ध करने लगी हैं । अत: समसामयिक सामाजिक एवं राजनीतिक परिवेश के संदर्भ में इन समस्याओं को प्रचलित जनाकांक्षाओं के आधार पर परखा जाकर सार्वजनिक हित में इनका निराकरण एवं उपयुक्त समाधान किया जाना जरूरी समझा जाता है ।

2.3.1 बहुलवादी समाज की समस्याएं

भारत एक बहुलवादी समाज है । इस समाज की संरचना मूल रूप से वर्ण-व्यवस्था पर आधारित है । कालांतर में वर्ण-व्यवस्था पर आधारित यह सामाजिक संरचना विभिन्न जातियों में विभक्त हो गई । आज का भारतीय समाज बहुजातिय समाज है जहाँ विविध धर्म के अनुयायी रहते हैं जिनकी अलग-अलग तरह की परंपराएं, प्रथाएं एवं रीति-रिवाज अस्तित्व में है । सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं भौगोलिक विभिन्नताओं ने भारतीय समाज को एक बहुलवादी समाज के रूप में पहचान प्रदान कर दी है । राजस्थान प्रदेश भी इस सच्चाई से अछूता नही हैं । यहां पर भी बहुलवादी समाज की प्रकृति एवं स्वरूप की वजह से जातियता आधारित तनाव एवं संघर्ष जनित सामाजिक समस्याओं ने अपनी उपस्थिति दर्ज करा दी है । इसी क्रम में धर्म पर आधारित मतभेदों एवं बुराइयों की वजह से विभिन्न सामाजिक वर्ग समूहों में अनास्था, अविश्वास एवं तनाव की स्थितियों के कारण सांप्रदायिकता की विकट समस्या का भी राज्य को सामना करना होता है । सम-सामयिक सामाजिक समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में, राजस्थान की एक राज्य के रूप मे सजग रहने की महत्ती आवश्यकता बलवती होती जा रही है।

2.3.2 परंपराएं, रूढ़ियां, रिवाज एवं सामाजिक समस्याऐं

प्रगतिशील एवं खुले समाजों की तुलना में भारत जैसे परंपरावादी एवं बंद समाजों को अधिक एवं विकट सामाजिक समस्याओं का सामना करना होता है । परंपरावादी समाज मूल रूप से सामाजिक

रिवाजों को बहुत अधिक महत्व देते हैं । कालांतर में ये रिवाज जड़ रूढ़ियों में परिवर्तित हो जाते हैं । ये रूढ़ियां समाज की गति को अवरूद्ध कर देती हैं तथा व्यापक रूप से समाज के सभी वर्ग को अपने आगोश में लेकर विविध प्रकार की सामाजिक समस्याओं को जन्म देती हैं । बाल-विवाह, दहेज प्रथा, मृत्यु भोज, नाता प्रथा, पर्दा प्रथा जैसी अनेक सामाजिक समस्याएं हैं जो समाज की विभिन्न परंपराओं, रिवाजों एवं रूढ़ियों के आधार पर अस्तित्व में आई थीं, परन्तु वर्तमान समय की परिवर्तित परिस्थितियाँ एवं सामाजिक, नैतिक तथा कानूनी संदर्भों में गंभीर समस्याओं का स्वरूप ग्रहण कर चुकी हैं । समाज की प्रगति एवं विकास के लिए इन सामाजिक समस्याओं का निराकरण एवं प्रभावी समाधान किए जाने की मांग चहुँओर से उठने लगी है । परिवर्तित सामाजिक मूल्यों एवं मानदण्डों के अनुसरण में तथा सामाजिक परिवर्तन की अहम् स्थितियों की वजह से इन समस्याओं के निराकरण के लिए राज्य अधिक सजग होने लगे हैं तथा अपनी नियामक भूमिका की नई सिरे से समीक्षा करने लगे हैं ।

2.3.3 यथास्थिति परक दृष्टिकोण एवं बदलाव की कशमकश

समाज में स्थायित्व एवं बदलाव की आवश्यक स्थितियों के बीच संतुलन स्थापित करने के लिए यथास्थिति (status-quo) एवं गत्यात्मकता (dynamism) को सामाजिक-क्रिया के लिए आवश्यक माना जाता है । चूंकि यह दोनो तत्व एक दूसरे के प्रतिगामी होते हैं अत: इनकी वजह से कई दफा सामाजिक संघर्ष की स्थितियां भी जन्म ले लेती हैं । यथास्थिति परक वर्ग यह मानते हैं कि स्थितियां जैसी हैं वे उन्हीं स्वरूपों में बनी रहनी चाहिए जबकि परिवर्तन चाहने वाले वर्ग उनमें तत्काल बदलाव की मांग करते हैं । फलस्वरूप इस प्रकार की प्रतिकूल परिस्थितियों की वजह से सामाजिक संघर्ष एवं वर्ग आधारित तनावों की वजह से अनेक प्रकार की सामाजिक समस्याऐं जन्म ले लेती हैं । आरक्षण जैसी समस्या का आविर्भाव भारतीय समाज में उपर्युक्त प्रतिकूल विचार धाराओं में संघर्ष की वजह से हुआ है । निजीकरण, उदारवाद एवं भूमण्डलीकरण की विचारधाराओं को लेकर मतवैभिन्य एवं संघर्ष के फलस्वरूप जो सामाजिक समस्याएं जन्म लेती हैं उनके पीछे भी यथास्थिति परक दृष्टिकोण एवं बदलाव की कशमकश मौजूद रहती है । राज्य को इन दोनों ही विचारधाराओं के बीच संतुलन स्थापित कर सामाजिक विकास को गति देनी होती है । अपनी नियामक भूमिका के निर्धारण में राज्य को इन दोनों विचार धाराओं के महत्वपूर्ण बिन्दुओं एवं मुद्दों की समीक्षा करनी होती है । एक संतुलित नीति के माध्यम से अपनी नियामक भूमिका का निर्धारण पूरी संजीदगी एवं परिपक्वता के साथ करना होता है । इस प्रकार की संतुलित नीति के माध्यम से संचालित विविध कार्यक्रमों के आधार पर राज्य स्थिरता एवं बदलाव के अतिरेक की स्थितियों के बीच अपने अस्तित्व को बनाए रखकर ही सामाजिक समस्याओं के संदर्भ में अपनी वांछित नियामक भूमिका का निर्वाह कर सकता है ।

2.3.4 सामाजिक समस्याओं के अन्योन्याश्रित स्वरूप

सामाजिक समस्याओं की प्रकृति बहुआयामी होती है । किसी भी समस्या के कई तरह के पहलू एवं पक्ष होते हैं । सामाजिक समस्या से संबंधित ये तमाम पहलू एक दूसरे से प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से जुड़े हुए होते है । इसके साथ ही समाज में प्रचलित विविध प्रकार की समस्याएं भी प्रकारान्तर से एक दूसरे से जुड़ी हुई होती हैं । सामाजिकसमस्याओं के इन विविध पक्षों की वजह से यह कहा जा सकता है कि सामाजिक समस्याऐं विशिष्ट एवं व्यापक संदर्भों में अन्योन्याश्रित होती हैं । इन तमाम कारणों की वजह से सामाजिक समस्याओं की प्रकृति आमतौर पर काफी जटिल होती है तथा उनके

स्वरूप एवं प्रकृति को समझने के लिए काफी गहराई से सोचने की आवश्यकता होती है । उदाहरण के लिए किसी भी पिछड़े हुए समाज में गरीबी की समस्या को अज्ञान एवं अशिक्षा की समस्याओं से जोड़ कर समझा जा सकता है । इस प्रकार के समाज में व्याप्त अज्ञान एवं अशिक्षा के कारण अनेक प्रकार की कुरीतियां एवं कुप्रथाएं प्रचलन में आ जाती हैं जो सामाजिक सोच को जड़ बना देती हैं । परिणाम स्वरूप एक ऐसे कुचक्र की स्थापना हो जाती है जिसकी वजह से संबंधित समाज अज्ञान, अशिक्षा, गरीबी एवं पिछड़ेपन से ग्रस्त होता रहता है और ये सब स्थितियाँ एक दूसरे से जुड़ कर इन सब स्थितियों को और अधिक गंभीर बना देती हैं । इन विकट परिस्थितियों का सामना करने के लिए राज्य को अपनी नियामक भूमिका के निर्धारण के लिए एक समग्र एवं व्यापक सोच के माध्यम से ऐसी बहुआयामी कार्य योजनाओं को अंजाम देना होता है जो विशिष्ट समस्या के समाधान के साथ-साथ उससे जुड़ी हुई अन्य प्रतिकूल स्थितियों के निराकरण में भी कारगर सिद्ध हो सकें ।

2.4 सामाजिक समस्याओं के निराकरण में अवरोध

किसी भी समाज में प्रचलित सामाजिक समस्या एक लंबी अवधि की यात्रा सम्पन्न कर अपने वर्तमान स्वरूप में समाज विशेष में अपनी उपस्थिति दर्ज करवाती है । वर्तमान समय में उपस्थित किसी भी सामाजिक समस्या का जन्म यकायक नहीं होता है तथा न ही समाज में अपने मौलिक सरूप में इतनी गंभीर समस्या के रूप में उसका आविर्भाव हुआ था । आमतौर पर जो समस्याऐं सामाजिक परंपरा एवं प्रथा के रूप में प्रचलन में आती हैं, कालांतर में उनका मौलिक स्वरूप शनैः-शनैः विकृत होने लगता है और उस विकृत स्वरूप के साथ समाज के विभिन्न वर्गों के निहित साथ जुड़ जाते हैं । कुछ विशिष्ट वर्ग अपने इन संकीर्ण स्वार्थों की वजह से इन सामाजिक समस्याओं एवं कुरीतियों का पोषण करते रहते हैं । परन्तु व्यापक संदर्भों में समाज को इन समस्याओं की वजह से काफी नुकसान पहुँचता है । इन समस्याओं के निराकरण की मांग चहुँओर से उठने लगतीहै परन्तु समाज के निहित स्वार्थी तत्व एवं उस समाज में व्याप्त अनेक प्रकार की स्थितियां इन समस्याओं के निराकरण में अवरोध पैदा करती रहती हैं । इन अवरोधों को निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत समझा जा सकता है ।

2.4.1 अशिक्षा

किसी भी समाज में व्याप्त अशिक्षा की स्थितियां न सिर्फ सामाजिक समस्याओं को जन्म देती हैं बल्कि अशिक्षित समाज इन समस्याओं के निराकरण के प्रति असंवेदनशील भी बने रहते है । अशिक्षा की वजह से समाज के विभिन्न वर्गों का सोच एवं चिंतन रूढ़िवादिता से ग्रस्त होता रहता है । अपने परंपरावादी एवं जड़ चिंतन की वजह से ऐसा समाज न तो सामाजिक समस्याओं के प्रति सजग रहता है तथा न ही उनके निराकरण के प्रति सक्रियता एवं पहल का प्रदर्शन कर पाता हैं । परिणामस्वरूप अशिक्षित समाज निरंतर पिछड़ेपन की दयनीय स्थितियों में बने रहते हैं । सामाजिक समस्याओं का फैलाव एवं प्रसार इन समाजों में निरंतर बढ़ता रहता है एवं वें समस्याएं भी कालांतर में विकट से विकटतर बनती रहती हैं । इस प्रकार समाज में व्याप्त अशिक्षा की स्थिति सामाजिक समस्याओं को एक तरफ जहाँ जन्म दे सकती है वही दूसरी ओर उनके निराकरण के लिए किये जा रहे प्रयासों के लिए गम्भीर अवरोध भी उपस्थित कर सकती है । अशिक्षा से उत्पन्न हुई अनेक प्रकार की सामाजिक समस्याएं अशिक्षित समाज में अपनी गहरी जड़े स्वभाविक तौर पर जमा लेती हैं । समाज

में व्याप्त अशिक्षा की वजह से इन समस्याओं के निराकरण के लिए जिस तरह की पहल एवं सक्रियता की आवश्यकता होती है उसका अर्विभाव भी समाज में नहीं हो पाता है ।

2.4.2 अज्ञान

समाज में अशिक्षा की वजह से जिस गंभीर समस्या का जन्म होता है उसे अज्ञान की स्थिति कहा जाता है । अशिक्षा एवं अज्ञान एक ही सिक्के के दो पहलू हैं । अशिक्षित समाज सामाजिक अज्ञान की ओर स्वाभाविक तौर से अग्रसर हो सकते हैं । अज्ञान को अंधकार की संज्ञा दी गई है क्योंकि जिस तरह से अंधकार की वजह से वस्तुऐं साफ दिखाई नहीं देती, उसी तरह अज्ञान की वजह से समाज में व्याप्त कुरीतियां अंधविश्वास एवं अनेक प्रकार की सामाजिक समस्याओं को समझने की आमजन की अंतदृष्टि भी कमजोर बन जाती है । सामाजिक समस्याएं सर्वसाधारण को प्रतिकूल रूप से प्रभावित कर समाज को जड़ता प्रदान करती रहती हैं, और अज्ञान की वजह से जनसाधारण इन के प्रति सजग नहीं रह पाता है । इस प्रकार अज्ञान सामाजिक समस्याओं के निराकरण में एक गंभीर अवरोध का काम करता है । सामाजिक समस्याओं के निराकरण की व्यूह रचना में अपनी नियामक भूमिका का निर्धारण करते समय राज्य इस ओर सजग रहते हैं कि वे इस तरह की अवस्थाएं और स्थितियां समाज में बनाए जिससे कि अशिक्षा एवं अज्ञान जनित अवरोधों का प्रभावी निराकरण हो सके ।

2.4.3 गरीबी

अशिक्षा एवं अज्ञान की तरह गरीबी की स्थितियां भी सामाजिक समस्याओं के निराकरण में गंभीर अवरोध उत्पन्न करती हैं । गरीबी की वजह से समाज न तो गतिशील बन पाते हैं और न ही वे विकास एवं प्रगति के मार्ग पर अग्रसर हो पाते हैं ।गरीब समाज शोषण की स्थितियों से भी ग्रस्त रहते है । अशिक्षा एवं अज्ञान की वजह से गरीबी की स्थितियां भी बदतर बनती हैं । परिणामस्वरूप समाज इस तरह सामाजिक समस्याओं के मकड़जाल में फँस जाता है । गरीबी से ग्रस्त समाज इस तरह एक तरफ जहाँ स्वाभाविक तौर पर सामाजिक समस्याओं से घिरे रहते हैं वहीं दूसरी ओर उनके निराकरण की प्रभावी स्थितियां भी इन समाजों में नहीं बन पाती हैं । सामाजिक समस्याओं के निराकरण के लिए राज्य अपनी नियामक भूमिका के अन्तर्गत समाज को गरीबी की तकलीफदेह स्थितियों से मुक्त करने का प्रयास करते हैं । फलत: गरीबी उन्मूलन के लिए राज्य विभिन्न प्रकार के कार्यक्रमों का आयोजन करते हैं । ये कार्यक्रम प्रकारान्तर से सामाजिक समस्याओं को निराकरण में राज्य की नियामक भूमिका को मजबूत आधार प्रदान करते हैं ।

2.4.4 पिछड़ापन

अशिक्षा, अज्ञान एवं गरीबी की वजह से समाज सर्वग्राही पिछड़ेपन की स्थितियों से ग्रस्त हो जाते हैं । इस पिछड़ेपन के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक स्वरूप हो सकते हैं । सामाजिक पिछड़ेपन की वजह से समाज अंधविश्वास जनित रूढ़ियों, के प्रथाओं एवं कुरीतियों से ग्रस्त हो जाते हैं । इसी प्रकार आर्थिक पिछड़ेपन की वजह से समाज में बेकारी एवं बेरोजगारी की स्थितियां बन जाती हैं । समाज में उपलब्ध प्राकृतिक एवं भौतिक संसाधनों का प्रभावी उपयोग नहीं हो पाने की वजह से आर्थिक पिछड़ेपन की ये स्थितियां और भी गंभीर रूप ग्रहण कर लेती हैं । राजनीतिक पिछड़ेपन की वजह से सामाजिक प्रगति एवं राष्ट्रीय विकास की स्थितियाँ जड़ बनी रहती हें । पिछड़ेपन की इन तमाम स्थितियों का परिणाम यह होता है कि समाज में अनेक प्रकार की समस्याएँ जन्म लेती हैं तथा

सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक जड़ता की वजह से इन समस्याओं के निराकरण के प्रति समुचित सोच विकसित नही हो पाता है और न ही इनके निराकरण की दिशा में कोई प्रभावी एवं ठोस प्रयास अमल में लाये जाते हैं । राजनीतिक नेतृत्व से जिस सकारात्मक एवं प्रभावी भूमिका की अपेक्षा की जाती है उसका निर्वाह भी नहीं हो पाता है । इस प्रकार सामाजिक पिछड़ापन सामाजिक समस्याओं को एक तरफ जहाँ जन्म देता है वहीं दूसरी ओर इन समस्याओं के निराकरण में भी गंभीर अवरोध उत्पन्न करता है । अत: राज्य की नियामक भूमिका सामाजिक समस्याओं के निराकरण में प्रभावी बनें इसके लिए जरूरी है कि समाज में व्याप्त अशिक्षा, अज्ञान, गरीबी एवं समग्र पिछड़ेपन की स्थितियों का निराकरण किया जाए । ऐसा होने पर ही सामाजिक एवं राजनीतिक जड़ता की स्थितियाँ समाप्त हो सकती हैं और सामाजिक समस्याओं के निराकरण के संदर्भ में राज्य की नियामक भूमिका प्रभावी बन सकती है ।

2.5 सामाजिक समस्याओं के निराकरण की व्यूह-रचना

सामाजिक समस्याओं के संबंध में अब तक किये गए उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो चुका है कि सभी समाज किसी न किसी सामाजिक समस्या से ग्रस्त रहते हैं । इन समस्याओं की प्रकृति जटिल होती है तथा इनके आविर्भाव एवं प्रचलन के पछे कई कारण मौजूद रहते हैं । सामाजिक समस्याएं किसी भी समाज में अचानक प्रकट नही होती हैं। जो स्थितियां आज किसी समाज में गंभीर समस्या का स्वरूप ग्रहण किये हुए हैं वे अपने मूल रूप में तथा अपने आविर्भाव के समय समस्या के स्वरूप में प्रकट न होकर एक सामाजिक रीति एवं प्रथा के रूप में प्रचलन में आई थी और समय के अंतराल में विभिन्न प्रभावों की वजह से थे एक सामाजिक समस्या का सरूप ग्रहण कर चुकी हैं । सम-सामयिक संदर्भों में अधिकांश सामाजिक समस्याएं इतना गंभीर एवं जटिल सरूप ग्रहण कर लेती हैं कि उनसे सहज को निजात मिल पाना संभव नहीं होता है । इनसे निपटने के लिए प्रभावी एवं ठोस कार्ययोजनाओं के साथ एक प्रभावी एवं कारगर व्यूह-रचना को भी अंजाम देना होता है । इस व्यूह रचना के कई पक्ष एवं पहलू हैं । कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं की समीक्षा किया जाना समीचीन प्रतीत होता है ।

2.5.1 आम नागरिक का दायित्व

मोटे तौर पर व्यक्तियों के समूह को समाज कहा जाता है । इसका अर्थ यह हुआ कि एक-एक व्यक्ति मिलकर सामूहिक रूप से समाज का निर्माण करते हैं । समाज की यह लघुतम इकाई जिसे नागरिक कहा जाता है कि भूमिका समाज के गुणात्मक स्वरूप को निर्धारित करने में बहुत ही महत्वपूर्ण होती है । सामाजिक समस्याओं के निराकरण में भी किसी भी समाज के आम नागरिक की भूमिका को महत्वपूर्ण माना गया है । यदि नागरिक अच्छे होंगे तो समाज अच्छा होगा। अच्छे समाज की पहचान यह है कि बह सामाजिक समस्याओं से ग्रस्त नहीं होता है । परन्तु यह एक अतिआदर्श एवं काल्पनिक स्थिति है कि किसी भी समाज के सभी सदस्य आदर्श हों और बही किसी भी समस्या का प्रचलन नहीं हो। सत और अ की स्थितियां समाज में नैसर्गिक तौर पर मौजूद रहती हैं । सामाजिक संतुलन की स्थिति में सत स्थितियाँ असत स्थितियों पर नियंत्रण बनाये रखकर उनको सीमा में रखती हैं । यदि इस स्थिति में विकार उत्पन्न होता है तो समाज में सामाजिक असंतुलन की स्थिति जन्म ले लेती है जो प्रकारान्तर से सामाजिक समस्याओं को जन्म देने के लिए उत्तरदायी बनती है । सामाजिक समस्याओं के निराकरण के लिये बनायी जाने वाली व्यूह रचना की प्रथम कडी यह है कि संबंधित समाज

के आम नागरिक शिक्षित, संवेदनशील एवं जागरूक ही तथा अपने निर्धारित दायित्वों का निर्वाह पूरी जिम्मेदारी के साथ करें । ऐसा होने पर सामाजिक समस्याएं कठिनाई से जन्म लेगी तथा अपने आविर्भाव के अल्पकाल में ही उनका प्रभावी शमन सम्भव हो सकेगा ।

2.5.2 स्वैच्छिक संगठनों की भूमिका

आज विश्व के सभी समाजों के स्वैच्छिक एवं गैर-सरकारी संगठन अपनी उपस्थिति दर्ज करवा रहे हैं । ये संगठन एक समान विचारधारा वाले सजग व्यक्तियों का समूह होते हैं जो निर्धारित लक्ष्यों की दिशा में काम करते हैं । समाज की विविध गतिविधियों में ये संगठन सक्रिय भागीदारी निभाते हैं । एक सजग प्रहरी के रूप में नागरिकों को जागरूक बनाने एवं उनमें दायित्वबोध को विकसित करने का काम ये संगठन करते हैं । प्रत्येक समाज में ऐसे स्वैच्छिक संगठन मौजूद रहते हैं जो सामाजिक समस्याओं से सारोकार रखते हैं । सामाजिक समस्याओं का अध्ययन करने, उनकी प्रकृति को समझने, उनके बने रहने के कारणों की समीक्षा करने तथा समाज को इन समस्याओं से मुक्ति दिलाने की कार्ययोजना का निर्धारण स्वैच्छिक संगठन करते हैं । स्वैच्छिक संगठनों की भूमिका एवं प्रभाव को सामाजिक एवं सरकारी स्तर पर शिव के सभी समाजों में स्वीकारोक्ति मिली हुई है । अत: सामाजिक समस्याओं के निराकरण के लिए यह जरूरी है कि इस प्रकार के स्वैच्छिक संगठनों को और अधिक कारगर, सक्रिय एवं प्रभावी बनाया जाये । राज्य को अपनी नियामक भूमिका का निर्धारण करते समय इस पक्ष की ओर विशेष ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है ।

2.5.3 समाज का दायित्व

नियामक एवं नियंत्रक इकाई के रूप में समाज मानव-अस्तित्व के साथ अनादिकाल से जुड़े हुए हैं । एक मूर्तएवं अमूर्त इकाई के रूप में समाज व्यक्तियों के लिए मूलों एवं मानदण्डों का निर्धारण करते हैं । ये मूल्य एवं मानदण्ड सामाजिक संचालन की अवस्थाओं का आधार बनते हैं । व्यक्ति एवं समाज दोनों ही समस्याओं से ग्रस्त होते रहते हैं । व्यक्तिगत समस्याएं सीमित आकार एवं प्रकृति की होती हैं तथा उनका निराकरण करना भी सहज एवं आसान होता है । इनकी तुलना में सामाजिक समस्याएं जटिल एवं दुरूह होती हैं तथा बडे पैमाने पर समाज को प्रभावित करती हैं । इन समस्याओं के निराकरण में सामाजिक दायित्वबोध की अहम भूमिका होती है । सामाजिक दायित्व बोध वह समग्र चेतना है जो समाज में प्रचलित आदर्शों, नियमों, मूल्यों एवं मानदण्डों के आधार पर किसी भी समाज में उपस्थित रहकर सभी नागरिकों को व्यक्तिगत एवं सामूहिक स्तरों पर प्रभावित करती रहती है । सामाजिक समस्याओं के निराकरण में समाज के दायित्व को सामाजिक बोध की इन्हीं स्थितियों के संदर्भ में समझा जा सकता है । समाज में अनेक वर्ग समूह होते हैं जो समाज को गति एवं दिशा प्रदान करते हैं। यह वर्ग समूह सकारात्मक दृष्टि से सामाजिक विषयों की समीक्षा कर समाज में प्रचलित समस्याओं के खिलाफ जनमत का निर्माण करते हैं एवं उनके उन्मूलन की दिशा में प्रभावी कार्रवाई कर सामाजिक समस्याओं के निराकरण के संदर्भ में समाज के दायित्व की व्यूह-रचना को साकार बनाते हैं ।

2.5.4 राज्य की भूमिका

सामाजिक समस्याओं के निराकरण में राज्य की भूमिका को अत्यधिक महत्वपूर्ण माना गया है । राज्य एक सक्षम, शक्तिशाली एवं स्वयंभू इकाई होता है । इसके दायित्व एवं जिम्मेदारियों के

पैमाने एवं फलक भी काफी व्यापक एवं बडे होते हैं । राज्य का एक अहम् अंग सरकार को माना गया है । सरकार अपनी विधायिनी, कार्यकारी एवं न्यायिक शक्तियों की वजह से किसी भी समस्या का कारगर समाधान करने में सक्षम होती है । सामाजिक समस्याओं के निराकरण की व्यूह-रचना में आम नागरिक के दायित्व, स्वैच्छिक संगठनों की भूमिका एवं समाज के दायित्व का निर्धारण करने एवं उनके स्वरूप को दिशा प्रदान करने में भी सरकार सक्षम होती है । राज्य अपनी भूमिका का निर्वाह सरकार के माध्यम यम से ही करता है । सामाजिक समस्याओं के निराकरण में राज्य की भूमिका की जब भी समीक्षा की जाती है प्रकारान्तर से वह समीक्षा सरकार की भूमिका की ही होती है । सामाजिक समस्याओं के निराकरण मे राज्य की भूमिका की प्रकृति क्या हो? तथा किस सीमा तक राज्य समाज की इन गतिविधियों में हस्तक्षेप करें? ये कुछ ऐसे विचारणीय मुद्दे हैं जिन पर चर्चा किया जाना जरूरी प्रतीत होता है । सामाजिक समस्याओं के निराकरण की समग्र व्यूह-रचना में राज्य कितनी भागीदारी निभाये तथा इस व्यूह--रचना की प्रकृति एवं स्वरूप को निर्धारित करने में राज्य की क्या जिम्मेदारी हो तथा राज्य किस सीमा तक व्यूह- रचना को अपने नियंत्रण में रखें ये मुद्दे राज्य की नियामक भूमिका के निर्धारण को आधार प्रदान करते है । अत: यह जरूरी है कि सामाजिक समस्याओं के निराकरण में राज्य के हस्तक्षेप एवं भूमिका पर विशद चर्चा की जाये ।

2.6 सामाजिक समस्याओं के निराकरण में राज्य का हस्तक्षेप

आम नागरिक की जिंदगी में राज्य का कितना हस्तक्षेप हो, इसको लेकर राजनीतिक विचारक अलग-अलग मत रखते हैं । कुछ विचारक आम आदमी की जिंदगी की विविध गतिविधियों के निर्धारण में राज्य की सक्रियता को हस्तक्षेप मानते हैं, वहीं दूसरे वर्ग के विचारक मानते हैं कि राज्य चूंकि एक सयंभू इकाई होता है तथा व्यक्ति और समाज की प्रत्येक गतिविधि को निर्धारित करने का उसको हक हासिल होता है, अत: राज्य की ऐसी भूमिका को हस्तक्षेप नहीं माना जा सकता । सामाजिक समस्याओं के निराकरण में राज्य की नियामक भूमिका कैसी और किस सीमा तक हो (इसकी संतुलित एवं समग्र समीक्षा किया जाना आवश्यक है । इस विषय का बिषत

विस्तृत विवेचन निम्नांकित शीर्षकों के अंतर्गत किया जाना उचित प्रतीत होता है ।

2.6.1 अपेक्षा एवं संभावना

राज्य के स्वरूप, प्रकृति, कार्यक्षेत्र एवं भूमिका के बारे में राजनीतिक विचारकों ने अलग-अलग तरह के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है । व्यक्तिगत स्वतंत्रता एवं सामाजिक स्वायत्तता को सर्वोपरि मानने बाले विचारक राज्य के कार्यक्षेत्र एवं भूमिका को सीमित रखने के पक्षधर हैं, वही राज्य की संप्रभुता एवं वैधानिक तथा न्यायिक शक्तियों की विपुलता के पक्षधर यह मानते हैं, कि राज्य का कार्यक्षेत्र पर्याप्त रूप से व्यापक है एवं बह आम नागरिक के अस्तित्व एवं सामाजिक स्वरूपों के निर्धारण में असीमित भूमिका रखता है । सामाजिक समस्याओं के निराकरण में राज्य किस तरह की भूमिका का निर्वाह करें इस बारे में भी विभिन्न मत एवं विचार प्रचलन में है । इस संदर्भ में एक विसंगति यह है कि आम जन की राज्य पर निर्भरता उत्तरोत्तर बढ़ी है, वहीं राज्य यदि व्यक्तिगत एवं सामाजिक व्यवहार को नियंत्रित करने की कोशिश करता है तो विभिन्न क्षेत्रों से यह आपत्ति उठाई जाती है कि राज्य की इस प्रकार की कार्रवाई सार्वजनिक जीवन में हस्तक्षेप करती है । विविध प्रकार की समस्याओं के निराकरण में चाहे वे सामाजिक प्रकृति की हो या अन्य प्रकार की आम नागरिक की यह अपेक्षा रहती

है कि इनका प्रभावी व तत्काल निराकरण राज्य द्वारा किया जाए । एक तरफ जब तक स्थिति सुविधाजनक हो तब तक इस प्रकार की अपेक्षाएं राज्य से रखी जाती हैं परन्तु दूसरी तरफ जब इन समस्याओं के निराकरण के लिए राज्य द्वारा संचालित गतिविधियां असुविधा पैदा करती हैं तो यह कहा जाता है कि राज्य जनजीवन में हस्तक्षेप कर रहा है । इस प्रकार एक विरोधाभास की स्थिति समाज में बनी रहती है जिसकी वजह से सामाजिक समस्याओं का प्रभावी एवं सामयिक निराकरण संभव नही हो पाता है । सामाजिक समस्याओं के निराकरण में राज्य से अपेक्षा के बारे में व्याप्त इस प्रकार की विरोधाभासी स्थितियों का निराकरण किये जाने से ही राज्य अपनी नियामक भूमिका का निर्वाह प्रभावी तौर पर कर सकता है । सामाजिक समस्याओं का निराकरण राज्य के द्वारा किया जाना किस सीमा तक संभव है, यह भी एक विचारणीय प्रश्न है । राज्य आमतौर पर सामाजिक समस्याओं के निराकरण के लिए कानूनों का निर्माण कर देते हैं । इस प्रकार के कानूनों के पीछे सामाजिक स्वीकारोक्ति नहीं होती है जिसकी वजह से इन कानूनों की अवहेलना होती रहती है । बाल-विवाह, बालश्रम, दहेजप्रथा, मृत्युभोज जैसी अनेक ऐसी सामाजिक समस्याएं हैं जिनके निराकरण के लिए कानून बने हुए होने के बावजूद वें समस्याएं समाज में मौजूद हैं । इस प्रकार राज्य यदि अपनी नियामक भूमिका को कानून निर्माण तक सीमित रखेगा तो सामाजिक समस्याओं का उन्मूलन किया जाना संदिग्ध बना रहेगा । राज्य से की जा रही अपेक्षाओं, नागरिक एवं सामाजिक-दायित्वों तथा सार्वजनिक सहभागिता एवं आमजन की सजगता के बीच संतुलन बने रहने से ही सामाजिक समस्याओं के निराकरण के संबंध में राज्य की नियामक भूमिका अर्थपूर्ण एवं सार्थक बन सकती है ।

2.6.2 व्यक्ति की स्वतंत्रता बनाम राज्य का हस्तक्षेप

राज्य व्यक्ति के जीवन में कैसी व क्या भूमिका निभाये? इसके बारे में अनेक मत प्रचलन में है । कुछ विचारक राज्य को सामाजिक एवं व्यक्तिगत जीवन के लिए आवश्यक शर्त मानते हैं, वहीं दूसरी श्रेणी के विचारक इसे आवश्यक बुराई तथा कुछ विचारक तो इसे अनावश्यक बुराई की संज्ञा भी देते हैं । व्यक्तिवादी, अराजकतावादी एवं सिण्डिक्लिस्ट विचारक यह मानते हैं कि राज्य व्यक्ति की स्वतंत्रता एवं उसके अस्तित्व में अनावश्यक हस्तक्षेप उपस्थित करता है । राज्य के प्रतिबंधों की वजह से आजाद जन्मे व्यक्ति कालांतर में कई प्रकार के बंधनों में जकड़ दिये जाते हैं । इस विचारधारा के लोग यह मानते हैं कि व्यक्तिगत एवं सामाजिक समस्याओं का निराकरण व्यक्ति एवं समाज स्वयं करने में सक्षम है,अत: राज्य का हस्तक्षेप इस क्षेत्र में अवांछनीय है । समग्र रूप से देखा जाए तो यह एक अतिवादी विचारधारा है क्योंकि बिना नियंत्रण, मूल्यों एवं मानदण्डों के व्यक्ति स्वछंद, स्वेच्छाचारी एवं अराजकता की विकट स्थितियां उत्पन्न कर सकता है । प्रत्येक व्यक्ति में आत्म-अनुशासन इस स्तर का नहीं होता कि बह स्वस्थ एवं संतुलित जीवन जीयें और दूसरों को भी ऐसा ही जीवन जीने दे । मानव इतिहास इस बात का साक्षी है कि अनियंत्रित व्यक्ति अपने एवं समाज के लिए अनेक प्रकार की समस्याओं का निर्माण कर लेता है । इस पृष्ठभूमि में यह संगत प्रतीत होता है कि व्यक्ति पर नियंत्रण बने रहे जिससे वह निर्धारित मूल्यों एवं मानदण्डों के अनुरूप आचरण करें । राज्य सामाजिक समस्याओं के निराकरण में अपनी निर्धारित भूमिका का निर्वाह करे इसके लिए आमजन में इन समस्याओं के प्रति सजगता पैदा कर उनकी भागीदारी को सुनिश्चित किये जाने की आवश्यकता है ।

2.6.3 सामाजिक स्वायत्तता बनाम राज्य का नियंत्रण

समाज का निर्माण मनुष्य मात्र की आपस में मिलजुल कर सहयोग से रहने की सहज प्रवृति की वजह से हुआ है । आदर्श समाज अपनी समस्त स्थितियों का निर्धारण, निराकरण एवं संचालन स्वयं करने में सक्षम होता हैं । इस प्रकार के समाज की गतिविधियों में राज्य के दखल को एक अनावश्यक हस्तक्षेप माना जाता है । समाज का निर्माण राज्य से पहले हो गया था । राज्य समाज ही वजह से अस्तित्व में आते हैं तथा समाज की राज्य का निर्माण करते हैं । इस प्रकार कालावधि की दृष्टि से समाज राज्य से अधिक पुरातन अस्तित्व रखता है । समाज ने चूंकि राज्य को उत्पन्न किया है, अत: वह समाज को संचालित करने में अतिरेक की स्थितियां बनाए तो उसे हस्तक्षेप माना जाता है । इस विचारधारा के प्रतिकूल दूसरी विचार धारा यह है कि चूंकि समाज अपनी समस्त गतिविधियों को समुचित तरीके से संचालित करने में असुरक्षित महसूस करने लगा था अत: उसने अपनी आवश्यकता एवं सुविधा के लिए राज्य का निर्माण किया । अत: यदि राज्य समाज की गतिविधियों को संचालित करता है तो इसे हस्तक्षेप नहीं माना जाना चाहिए । सामाजिक समस्याओं के उक्त में यह कहा जा सकता है कि ये समस्याएं चूकि समाज से ही उत्पन्न होती है अत: समाज ही उनका निराकरण करने में सक्षम है । इस विचारधारा के प्रतिकूल विभिन्न समाजों में व्याप्त सम सामयिक सामाजिक समस्याओं के स्वरूप एवं प्रवृति का अध्ययन यह संदेश देता है कि आम तौर पर समाज सामाजिक समस्याओं का निराकरण करने में असक्षम रहते हैं और बे इनके समाधान के लिए राज की ओर से पहल किये जाने की अपेक्षा रखते है । स्थितियों में यह माना जा सकता है कि सामाजिक समस्याओं के निराकरण में एक सीमा के बाद राज्य की भूमिका को हस्तक्षेप नहीं माना जाना चाहिए।

2.6.4 सामाजिक संस्थाओं, स्वैच्छिक संगठनों, गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका

बेनाम राज्य का दायित्व- सामाजिक संस्थाएं एवं गैर-सरकारी संगठनों की अवधारणा मूलत: नागरिक समाज की अवधारणा से जुडी हुई है । गैरसरकारी संगठन निजी, आलंभकारी एवं पेशेवर संगठन होते हैं। इनका लोक -कल्याण के लक्ष्यों से जुडा एक स्पष्ट सार्वजनिक चरित्र होता है । अपने लक्ष्यों की प्राप्ति में दे राज्य के प्रयासों के अच्छे पूरक साबित होते हैं । जनता की प्रत्यक्ष भागीदारी के ये सबसे नजदीकी रूप होते हैं । अपनी विश्वसनीयता, पहुँच एवं स्वायत्तता के कारण ये समाज में अपनी एक विशिष्ट पहचान रखते हैं । ये संगठन विभिन्न प्रकार की सामाजिक समस्याओं से अपने को जोड़ कर रखते हैं तथा जनसहभागिता के माध्यम से इन समस्याओं के निराकरण के लिए प्रयासरत रहते हैं । इन संगठनों एवं राज्य के बीच मतभेद की स्थितियां पैदा होने की संभावना रहती है । राज्य चूंकि एक संप्रभुता संपन्न इकाई होता है अत: वह इन संगठनों की कार्यप्रणाली पर निगरानी रखने एवं उनपर नियंत्रण रखने की कार्ययोजना बनाता है । गैर-सरकारी संगठन राज्य की इस प्रकार की गतिविधियों को हस्तक्षेप मानकर उसका विरोध करते हैं । सामाजिक संगठन जन-जागृति पैदा करने तथा जनमानस में सामाजिक समस्याओं के प्रति समुचित चेतना उत्पन्न करने की क्षमता रखते हैं अत: राज्य उन्हें अपनी नियामक भूमिका के पूरक की स्थिति प्रदान कर सकें तो अनेक प्रकार की सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए वांछित जनसहयोग को प्राप्त करने में ये संगठन सफल हो सकते हैं ।

2.6.5 व्यक्ति, समाज एवं राज्य की भूमिका सहयोग एवं समन्वय के प्रसंग-

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि सामाजिक समस्याओं के निराकरण में व्यक्ति, समाज एवं स्वैच्छिक संगठन महत्वपूर्ण भूमिकाओं का निर्वाह कर सकते हैं । ये सभी इकाईयां चूंकि राज्य का अभिन्न अंग होती हैं अत: राज्य को अपनी नियामक भूमिका के निर्धारण में एक संतुलित सोच के साथ प्रत्येक इकाई की भूमिका एवं उसकी भागीदारी को सुनिश्चित करना चाहिए । ये इकाइयां आपस में एक दूसरे के साथ किस तरह समन्वय एवं सहयोग स्थापित करें इसके भी मानदण्ड तय किये जाने चाहिए । प्रत्येक इकाई की भूमिका का स्पष्ट निरूपण तथा उस भूमिका के निर्वाह के विविध पक्षों एवं पहलुओं को भी साफ तौर पर निर्धारित किया जाना चाहिए । राज्य को अपनी नियामक भूमिका के सरूप को निर्धारित करने से पूर्व इन इकाइयों की भूमिका के विशिष्ट स्वरूपों के साथ ही इनके पारस्परिक संबंधों एवं अन्त: क्रियाओं को भी तय करना चाहिए । राज्य को ऐसी स्थितियों का निर्माण करना चाहिए जिनमें ये इकाइयां स्वतंत्र एवं प्रभावी तौर पर अपनी-अपनी भूमिका का कुशलतापूर्वक निर्वाह करें ताकि ये इकाइयां सामाजिक समस्याओं के निराकरण के लिए कारगर माध्यम बन कर राज्य की नियामक भूमिका को कारगर बनाने में सकारात्मक भागीदारी का निर्वाह कर सकें । सामाजिक समस्याओं के निराकरण के संबंध में की जा रही विभिन्न गतिविधियों के कुशल निर्वाह के लिए राज्य को भी इन इकाइयों के साथ पूर्ण सहयोग करना चाहिए।

2.7 सामाजिक समस्याएं एवं राज्य की नियामक भूमिका

राज्य एक संपूर्ण प्रभुता संपन्न इकाई होता है तथा अपनी विविध भूमिकाओं के निर्वाह की वजह से उसका प्रभाव समाज में पर्याप्त रूप से व्यापक एवं सर्वग्राही होता है । राज्य पर आमजन एवं समाज की निर्भरता उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है तथा राज्य भी अपने परंपरावादी स्वरूपों से हटकर लोक कल्याणकारी स्वरूप ग्रहण करने लगे हैं । व्यक्ति के विकास के साथ ही. सामाजिक प्रगति के विभिन्न आयामों की देखरेख अब राज्य करने लगे हैं । समाज का शायद ही कोई ऐसा पक्ष हो जो राज्य के प्रभाव से मुक्त हो । समाज की समग्र प्रगति, विकास एवं समृद्धि का उत्तरदायित्व राज्य का माना जाता है । इस दिशा में राज्य द्वारा किये जा रहे प्रयासों के मार्ग में जो भी अवरोध उपस्थित होते हैं, उनका निराकरण भी राज्य को ही करना होता है । यदि समाज किसी भी समस्या से ग्रस्त है तो राज्य उसकी अनदेखी नहीं कर सकता। भारत जैसे राष्ट्र और राजस्थान जैसे राज्य में जहां विविध प्रकार की सामाजिक समस्याएं अस्तित्व में हैं, उनके निराकरण की दिशा में राज्य को अपनी सक्रिय भूमिका का निर्वाह करना होता है । सामाजिक समस्याओं के संदर्भ में राज्य की नियामक भूमिका की क्या अवधारणा है? तथा इसके क्या अर्थ हैं? इसे समग्रता से समझना जरूरी है । इसके साथ ही राज्य की इस नियामक भूमिका का स्वरूप और प्रकृति क्या हो ? इसकी विवेचना किया जाना भी आवश्यक प्रतीत होता है । अत: प्रस्तुत विषय के इन महत्वपूर्ण पक्षों की समीक्षा निम्नानुसार की जा रही है ।

2.7.1 नियामक भूमिका -अर्थ एवं अवधारणा

राज्य की नियामक भूमिका का तात्पर्य यह है कि राज्य विशिष्ट एवं प्रासंगिक स्थितियों के संबंध में कुछ मूल्यों, मानदण्डों, आदर्शो एवं नियमों का निर्धारण करें एवं निर्धारित की गई स्थितियों के अनुरूप व्यक्तिगत एवं सामाजिक व्यवहार अस्तित्व में आए, इसे सुनिश्चित करे । राज्य की नियामक भूमिका की अवधारणा का प्रमुख बिन्दु यह है कि राज्य समाज के लिए एक नीति निर्देशक एवं पथ

प्रदर्शक का कार्य करेगा । नियामक भूमिका के प्रमुख तब के रूप में क्या होना चाहिए एवं क्या नहीं होना चाहिए ? की स्थितियां निरूपित की जाती हैं । एक पथ-प्रदर्शक एवं मार्गदर्शक के रूप में राज्य को विभिन्न प्रकार की स्थितियों की समीक्षा करनी होती है तथा समग्र सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक स्थितियों के बीच ऐसे मूल्यों एवं मानदण्डों का निर्धारण करना होता है जो समाज को सही दिशा में संचालित करने में सक्षम बन सके । यदि इस प्रकार की आदर्श स्थितियों का निरूपण नही किया जाए तो समाज में असमंजस, ऊहापोह एवं भ्रम की स्थितियां उत्पन्न हो सकती हैं, जो विभिन्न प्रकार के तनावों एवं संघर्षों को पैदा कर समाज में अराजकता फैलाकर सामाजिक असंतुलन पैदा कर सकती हैं । नियामक भूमिका के सफल निर्वाह के लिए निर्धारित किये गए मानदण्डों एवं मूल्यों को स्वयं राज्य को अपनाकर ऐसा आदर्श स्थापित करना होता है जिसे देखकर समाज में उस आदर्श को अपनाने की प्रेरणा का प्रचार-प्रसार हो । इसके साथ ही यदि निर्धारित आदर्श स्थिति से विचलन के उदाहरण सामने आते हैं तो उनके खिलाफ प्रभावी कार्रवाई अमल में लाने से नियामक भूमिका की सार्थकता सिद्ध होती है ।

2.7.2 नियामक भूमिका- स्वरूप एवं प्रकृति

सामाजिक समस्याओं के संबंध में राज्य की नियामक भूमिका का स्वरूप एवं प्रकृति क्या हो इसे समझने से प्रस्तुत विषय की समझ ठोस एवं मजबूत बन सकती है । अत: राज्य की इस नियामक भूमिका के स्वरूप एवं प्रकृति की समीक्षा निम्न बिन्दुओं के आधार पर की जा रही है-

1) नियामक भूमिका समग्र सर्वग्राही एवं व्यापक हो ।
2) नियामक भूमिका के विविध पक्ष एवं आयाम हों ।
3) नियामक भूमिका के लिए प्रत्यक्ष एवं परोक्ष जन-स्वीकारोक्ति एवं जनसमर्थन उपलब्ध हो ।

सामाजिक समस्याओं के निराकरण के लिए राज्य की नियामक भूमिका का स्वरूप व्यापक, वृहद् एवं बड़ा होना चाहिए। सीमित एवं संकुचित आधार पर बनी नियामक भूमिका प्रासंगिक समस्याओं का निराकरण करने में सक्षम नहीं हो सकेगी। इसके साथ ही इस भूमिका को संबंधित समस्याओं के व्यापक एवं विस्तृत अध्ययन के आधार पर बहुआयामी बनाए जाने की आवश्यकता है । यदि यह भूमिका सभी पक्षों को ग्रहण नही करेगी तो एकांगी एवं एकपक्षीय बनी रहने की स्थिति में इसकी सफलता पर प्रश्न चिन्ह लग जाएगा । प्रासंगिक नियामक भूमिका का निर्धारण करने के लिए सामाजिक एवं सार्वजनिक विचारधारा एवं जनमत को भी ध्यान में रखना जरूरी है । यदि जनमत की एवं जनचेतना की उपेक्षा की जाएगी तो निर्धारित नियामक भूमिका को सार्वजनिक एवं सर्वसाधारण का सहयोग नही मिल पाने कि स्थिति में यह भूमिका निष्क्रिय बनकर असफलता की ओर अग्रसर हो जाएगी ।

राज्य की नियामक भूमिका की प्रकृति को निम्न बिन्दुओं के आधार पर समझा जा सकता है ।

1) यह भूमिका जन सहयोग को सुनिश्चित करेगी ।
2) जनजागरण के लिए विभिन्न कार्ययोजनाएं बनाई जाएं ।
3) इस भूमिका के सलाहकारी एवं सहयोगात्मक स्वरूपों का निर्धारण हो ।
4) इस भूमिका के सलाहकारी एवं सहयोगात्मक स्वरूपों का निर्धारण हो ।
5) सामाजिक इकाइयों, संस्थाओं एवं गैर-सरकारी संगठनों का सहयोग लिया जाए ।
6) प्रासंगिक नियामक भूमिका को प्रभावी बनाने के लिए नियमों एवं अधिनियमों का निर्माण ।
7) प्रासंगिक नियमों एवं अधिनियमों का प्रभावी क्रियान्वयन सुनिश्चित किया जाए ।

8) अवहेलना करने वाले व्यक्तियों के खिलाफ दण्डात्मक कार्रवाई की जाए ।

सामाजिक समस्याओं के निराकरण के लिए राज्य की नियामक भूमिका की प्रकृति एक तरफ जहाँ जनसहयोग एवं जनसहभागिता से संचालित होती है, बही राज्य समय-समय पर समस्याओं के निराकरण के लिए अपनी सलाहकारी भूमिका का भी निर्वाह करता है । राज्य को जनसमस्याओं के निराकरण के लिए विधायिनी एवं दण्डात्मक प्रयासों के निर्धारण से पूर्व जनचेतना की एक ठोस पृष्ठभूमि बनानी होती है । इसके लिए उसे विभिन्न प्रकार के सामाजिक संगठनों, संस्थाओं, स्वैच्छिक संगठनों एवं गैर-सरकारी संगठनों से सहयोग लेने की अपेक्षा रखी जाती है । गंभीर अवहेलना की स्थितियों से निपटने के लिए कानूनी प्रावधान भी करने जरूरी होते हैं जिससे कि उन निहित तत्वों के खिलाफ प्रभावी कार्रवाई अमल में लाई जा सके जो सामाजिक समस्याओं को अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए एक माध्यम बनाकर समाज में जड़ता एवं पिछड़ापन पैदा करते हैं ।

2.7.3 सहयोग, समन्वय एवं पारस्परिकता के संदर्भ

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सामाजिक समस्याओं के सत्य में राज्य की नियामक भूमिका का स्वरूप एवं प्रकृति एकपक्षीय एवं एकांगी नहीं है । यह भूमिका सर्वग्राही समग्र एवं व्यापक स्वरूपों को सन्निहित किये हुए है । जबतक विविध वर्गों एवं इकाइयों में पारस्परिक सहयोग एवं समन्वय की स्थिति नहीं होगी उनमें लक्ष्यों के प्रति पारस्परिकता का भाव भी जन्म नही ले सकेगा । ऐसी स्थिति में सामाजिक समस्याओं से लड़ने के लिए राज्य जिस नियामक भूमिका का निर्वाह करना चाहता है बह सफल नही हो पाएगी । सहयोग एवं समन्वय के संदर्भों में विविध इकाईयों के लिए स्पष्ट एवं अर्थपूर्ण कार्ययोजनाओं का निर्माण किये जाने की महती आवश्यकता है ।

2.8 राज्य की नियामक भूमिका के आधार

सामाजिक समस्याओं में राज्य की नियामक भूमिका के निर्धारण एवं उसके स्वरूप एवं प्रकृति को स्पष्ट करने के लिए अनेक प्रकार की गतिविधियों का आयोजन किया जाता है । ये गतिविधियां नियामक भूमिका के निर्धारण की पूर्व पीठिकाओं का काम करती हैं । एक लंबी एवं व्यापक प्रक्रिया से गुजर कर जो नियामक भूमिका अस्तित्व में आती है वही अंततोगत्वा निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने में कामयाब हो सकती है । बिना समग्र सोच एवं विचार-विमर्श के यदि नियामक भूमिका का निर्धारण किया जाएगा तो उनका स्वरूप तदर्थ एवं प्रभाव भी अस्थायी बनने की संभावना बलवती रहेगी । सामाजिक समस्याओं के निराकरण के लिए राज्य की नियामक भूमिका को निर्धारित करने के कुछ महत्वपूर्ण आधार निम्नांकित हैं ।

2.8.1 नीति-निर्धारण

सामाजिक समस्याओं के संबंध में अपनायी जाने वाली नियामक भूमिका के संबंध में प्रत्येक राज्य को एक नीति का निर्धारण करना होता है । ऐसी किसी भी नीति के निर्धारण से पूर्व राज्य अपनी संबंधित इकाइयों से समस्या विशेष का व्यापक अध्ययन एवं समीक्षा करवाता है । इस अध्ययन के माध्यम से राज्य को पुख्ता एवं स्पष्ट आंकडें एवं सूचनाएं प्राप्त होती हैं, जिनके आधार पर आगे की कार्रवाई एवं कार्य योजनाओं का निर्धारण किया जाता है । इस प्रकार के अध्ययन सामाजिक समस्या के वर्तमान स्वरूपों, उनके इतिहास एवं समाज में उनके प्रचलन में बने रहने के कारणों की समीक्षा करते हैं । इन प्रयासों के अंतर्गत जमीनी सच्चाईयों एवं आदर्श स्वरूपों के रेखांकित किया जाता है तथा

वांछित आदर्श स्वरूपों की स्थापना की व्यूह-रचना का विवरण भी इस प्रकार के अध्ययनों की विषय सामग्री होता है । सामाजिक समस्याओं के विविध पक्षों की समीक्षा से जुड़े इन अध्ययनों के आधार पर राज्य यह निश्चित करता है कि इन समस्याओं के निर्धारण के लिए किस तरह की नीति का निर्धारण किया जाकर उसे किस प्रकार से क्रियान्वित किया जाए । इस संबंध में यह भी तय किया जाता है कि क्या होना चाहिए ? और क्या नहीं? तथा कौन सी गतिविधियां सकारात्मक हैं? एवं कौन सी नकारात्मक। जो संबंधित सामाजिक समस्याओं के निराकरण में सहयोगी होंगी या अवरोध पैदा करेंगी । संबंधित नीति के सैद्धान्तिक, व्यवहारिक एवं आदर्शात्मक स्वरूपों की समीक्षा के पश्चात प्रस्तावित नीति की घोषणा की जाती है तथा इस नीति की अनुपालना एवं अनुसरण में किस- किस तरह की क्या-क्या कार्ययोजनाएं एवं कार्यक्रम अपनाए जाएंगे इसके बारे में भी निर्णय लिया जाकर संबंधित नीति को निरंतरता प्रदान करने के प्रयास किये जाते हैं ।

2.8.2 संवैधानिक आधार

किसी भी राष्ट्र एवं राज्य का संविधान संबंधित राज्य के लिए नीति निर्देशन एवं पथ प्रदर्शन का एक महत्वपूर्ण आधार होता है । संविधान में समाज के विभिन्न क्षेत्रों के लिए आदर्श स्थितियों के निरूपण के प्रावधानों का समादेश किया जाता है । किसी भी समाज का समग्र स्वरूप एवं उसकी नीति तथा आदर्शों का समावेश भी संविधान में किया जाता है । इसी क्रम में प्रत्येक संविधान अपने से जुडे समाज को समस्याओं से मुक्त कर आदर्श स्थिति प्रदान करने की प्रेरणा देता है तथा इस संबंध में वह सभी लोगों का पथ प्रदर्शन भी करता है । सामाजिक समस्याओं के निराकरण के लिए संविधान में विशेष एवं सामान्य रूप से इस प्रकार के दिशा- निर्देशों का समावेश किया जाता है जिनकी अनुपालना से संबंधित समाज सामाजिक समस्याओं का निराकरण सफलता पूर्वक कर सकते हैं । भारतीय संविधान भी अपने विविध प्रावधानों के माध्यम से एक आदर्श समाज की कल्पना कर भारतीय समाज को सामाजिक समस्याओं से मुक्त करवाने की प्रेरणा से अनुप्रेरित है । इस संदर्भ में भारतीय संविधान की प्रस्तावना (प्रियम्बल), मौलिक अधिकर, मूल-कर्तव्य एवं आरक्षण जैसे अनेक ऐसे प्रावधान हैं, जो भारतीय समाज को एक आदर्श स्थिति प्रदान करने एवं उसे सामाजिक समस्याओं से मुक्त करने की क्षमता रखते हैं । भारतीय संविधान की प्रस्तावना भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न समाजवादी पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के उद्देश्य से नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्रदान कर सभी नागरिकों में व्यक्तिगत गरिमा और राष्ट्र की एकता एवं अखंडता को सुनिश्चित करने वाली बंधुता को बढाने के सद्उद्देश्य से भारतीय संविधान अनुप्राणित एवं अनुप्रेरित है । भारतीय संविधान की यह प्रस्तावना ऐसी आदर्श स्थिति की कल्पना करती है जहाँ किसी प्रकार की कोई सामाजिक समस्या अस्तित्व में नही रहें । भारतीय संविधान की प्रस्तावना में उल्लेखित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए मौलिक अधिकारों एवं मौलिक कर्तव्यों का सटीक निर्धारण भारतीय संविधान में किया गया है । मानवीय गरिमा, सामाजिक समता व्यक्तिगत स्वतंत्रता तथा राष्ट्र की प्रगति एवं समृद्धि के लिए लोकप्रिय व्यवस्थापिका कुशल कार्यपालिका तथा स्वतंत्र न्याय पालिका का प्रावधान भारतीय संविधान में किया गया है । सामाजिक समस्याओं के निराकरण के इन प्रावधानों का पूरा ध्यान रखे जाने से यह भूमिका कुशल कारगर एवं सक्षम बन सकती है ।

2.8.3 कानून एवं अधिनियम

लंबी अवधि तक प्रचलन में रहने बाली सामाजिक समस्याएं आमतौर पर आपराधिक सरूप प्राप्त कर लेती हैं जिनके निराकरण के लिए कानून एवं अधिनियमों का निर्माण किया जाना जरूरी हो जाता है। इस प्रकार की समस्याओं के निराकरण के लिए विधानसभाओं एवं संसद में विचार विमर्श किया जाकर एक स्पष्ट नीति के निर्धारण के पश्चात संबन्धित समस्या से निपटने के लिए अधिनियम बनाने की वैधानिक प्रक्रिया अपनायी जाकर कानूनों का निर्माण किया जाता है। आमतौर पर यह देखा गया है कि सामाजिक समस्याओं के निराकरण के लिए कानून बनाने में तत्परता अपनायी जाती है। वस्तुत: समाज में संबंधित समस्या की स्वीकारोक्ति इतनी गहरी होती है कि कानून विशेष के प्रावधानों का खुला उल्लंघन समाज में होता रहता है। अत: यह आवश्यक है कि कानून निर्माण से पूर्व समाज के विभिन्न वर्गो में संबंधित सामाजिक समस्या की वजह से होने वाले नुकसान के बारे में जागरूकता का प्रवाह किया जाए। इस प्रकार की जागरूकता से समाज में एक नई चेतना का आविर्भाव होगा एवं समाज अपने स्तर पर उस समस्या के निराकरण में पहल का प्रदर्शन करेगा। जब समाज में संबंधित समस्या के प्रति वांछनीय जागरूकता पनप जाएगी तो इस बरे में बनाए गए कानून भी प्रभावी रूप से लाग हो सकेंगें।

2.8.4 संगठनात्मक एवं प्रकार्यत्मक स्वरूप

किसी भी सामाजिक समस्या को दो स्तरों पर निपटना जरूरी होता है। पहले स्तर के अंतर्गत समाज में समस्या विशेष के बारे में जनसहभागिता के माध्यम से जागरूकता विकसित की जाती है। दूसरे चरण के अंतर्गत अवहेलना करने वाले व्यक्तियों के खिलाफ कानूनी कार्रवाई अमल में लायी जाती है। इन दोनों ही स्तरो से संबंधित कार्यवाहियों के संगठनात्मक एवं प्रकार्यात्मक स्वरूपों का निर्धारण किया जाना जरूरी होता है। इस संदर्भ में किस प्रकार के संगठन किस-किस तरह के क्या-क्या कार्य संपन्न करेंगे तथा अपने दायित्वों के निर्वाह के लिए किस प्रकार की प्रक्रियाओं को अपनायेंगे जैसे मुद्दों को स्पष्ट करना जरूरी होता है। विविध संगठनों के निर्माण एवं उन्हें प्रदत्त कार्यो एवं दायित्वों के निरूपण से एक तरफ जहां जनजागरण की स्थितियां मजबूत बनती हैं बहीं दूसरी ओर कानून क्रियान्वयन भी सटीक बनकर आपराधिक गतिविधियों पर प्रभावी नियंत्रण बनाने में कामयाब रहता है। 2

2.8.5 नेतृत्व, नियंत्रण एवं पर्यवेक्षण

सामाजिक समस्याओं के निराकरण में सामाजिक राजनीतिक एवं प्रशासनिक नेतृत्व की भूमिका को अहम माना जाता है। जागरूक एवं प्रगतिशील चिंतन बाले व्यक्ति सामाजिक नेतृत्व प्रदान करने में सक्षम होते हैं। यदि सामाजिक नेतृत्व सक्षम एवं मजबूत होता है तो सामाजिक समस्याओं के बारे में एक सही सोच का विकास समाज में होना संभव होता है। ऐसा नेतृत्व एक तरफ जहाँ जनजागरण को सही दिशा प्रदान करता है यही राज्य के स्तर पर की जाने वाली कार्रवाई को भी रेखांकित करता है। इतिहास गवाह है कि सामाजिक सुधारकों ने अपने स्तर पर सक्रिय एवं सकारात्मक पहल के माध्यम से समाज में व्याप्त कुरीतियों, कुप्रथाओं, अंध विश्वासों एवं सामाजिक समस्याओं के बारे में वांछित जागरूकता पैदा कर समाज को इन बुराइयों से मुक्त करने में सफलता प्राप्त की है। आधुनिक युग में सामाजिक समस्याओं के निराकरण में राजनैतिक नेतृत्व की भूमिका को महत्वपूर्ण माना जाता है। जनप्रतिनिधि समाज से जुड़ी विविध समस्याओं के निराकरण के लिए राज्य एवं सरकार का ध्यान

आकर्षित करते हैं तथा समाज इन समस्याओं से मुक्त हो सके इसके लिए एक प्रभावी वातावरण का निर्माण करते हैं । इसी प्रकार सामाजिक समस्याओं के निराकरण के लिए बने नियमों, अधिनियमों एवं कानूनों की प्रभावी अनुपालना सुनिश्चित कर समाज को इन समस्याओं से मुक्त कराने के लिए प्रशासनिक नेतृत्व भी विशिष्ट भूमिका का निर्वाह करता है । सामाजिक समस्याओं के निराकरण के लिए सामाजिक, राजनीतिक एवं प्रशासनिक नेतृत्व अपनी कार्यप्रणाली के अंतर्गत जिन माध्यमों का उपयोग करते हैं उनमें सबसे महत्वपूर्ण माध्यम नियंत्रण एवं पर्यवेक्षण को माना जाता है । सामाजिक नेतृत्व जनसहयोग एवं जनसंपर्क के माध्यम से जहाँ सामाजिक समस्याओं के प्रति सार्वजनिक जागरूकता पैदा कर इन समस्याओं के ऊपर नियंत्रण करने की कोशिश करते हैं बही राजनीतिक एवं प्रशासनिक नेतृत्व निर्धारित मानदण्डों एवं प्रक्रियाओं के माध्यम से सामाजिक समस्याओं पर नियंत्रण बनाते हैं तथा उनका समुचित निराकरण हो इसके लिए विविध प्रकार की पर्यवेक्षण विधाओं को उपयोग में लाते हैं ।

2.9 सारांश

समाज एवं सामाजिक समस्याओं का चोली-दामन का साथ है । कोई भी समाज समस्या मुक्त नहीं हो सकता । प्रत्येक समाज में कोई न कोई समस्या मौजूद रहती है । इन समस्याओं की प्रकृति एवं स्वरूप विविध प्रकार के होते हैं जो कि समाज विशेष की संरचना एवं उसके सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्वरूपों का प्रतिनिधित्व करते हैं । समाज में सामाजिक समस्याएं बनी रहती हैं क्योंकि उनके निराकरण के मार्ग में कई प्रकार के अवरोध उत्पन्न होते रहते हैं । इन अवरोधों में अशिक्षा, अज्ञान, गरीबी एवं पिछड़ेपन को महत्वपूर्ण माना जाता है । किसी-किसी समाज की प्रगति एवं समृद्धि के लिए यह जरूरी है कि उसे विभिन्न प्रकार की सामाजिक समस्याओं से मुक्त किया जाए । इन सामाजिक समस्याओं के निराकरण के लिए एक कारगर एवं प्रभावी व्यूह रचना का निर्माण करना जरूरी होता है । इस व्यूह रचना में आम नागरिक, स्वैच्छिक संगठन, समाज एवं राज्य की भूमिकाओं को महत्वपूर्ण माना जाता है । राज चूंकि एक संपूर्ण प्रभुता संपन्न सर्वशक्तिमान इकाई होता है अत: उसकी भूमिका सामाजिक समस्याओं के निराकरण में सबसे महत्वपूर्ण मानी गई है । राज्य की इस भूमिका के संबंध में अनेक प्रकार के मत प्रचलन में है । कुछ राजनीतिक विचारक एवं सामाजिक चिंतक यह मानते हैं कि राज्य को सामाजिक समस्याओं से मुक्ति प्रदान करने के लिए सब प्रकार की कार्यवाहियाँ अमल में लानी चहिए, जबकि दूसरी श्रेणी के विचारक यह मानते है कि चूंकि व्यक्ति एवं समाज भी स्वायत्ता संपन्न इकाइयां होते हैं तथा समाज में विभिन्न प्रकार के संगठन मौजूद रहते हैं जो मजबूत सामाजिक नेतृत्व के जरिये सामाजिक समस्याओं का निराकरण करने में सक्षम होते हैं । ऐसी स्थिति में राज्य की अति सक्रियता एक प्रकार से सामाजिक जीवन में अनावश्यक हस्तक्षेप का कार्य करती है । सम-सामयिक संदर्भो में तथा आम नागरिक एवं समाज की राज्य के प्रति उत्तरोत्तर बढ़ती निर्भरता की वजह से यह जरूरी है कि राज्य सामाजिक समस्याओं के निराकरण में अहम भूमिका का निर्वाह करें । राज्य की इस प्रकार की भूमिका को नियामक भूमिका के नाम से जाना जाता है । इस नियामक भूमिका की अवधारणा, स्वरूप एवं प्रकृति समाज विशेष की संरचना एवं उसके स्वरूप पर निर्भर करती है। राज्य को अपनी नियामक भूमिका को मजबूत एवं पुख्ता बनाने के लिए कुछ ठोस आधारों का निर्माण करना होता है। इन आधारों पर बनी राज्य की नियामक भूमिका के ही सामाजिक समस्याओं के निराकरण में सर्वप्रथम सक्षम एवं कारगर हो सकती है । राज्य की नियामक

भूमिका प्रमुख आधारों में नीति निर्धारण संविधान कानून एवं अधिनियम संगठन एवं प्रक्रियाएं तथा नेतृत्व, नियंत्रण एवं पर्यवेक्षण जैसे तत्वों को महत्वपूर्ण माना जाता है ।

2.10 शब्दावली

1. सामाजिक समस्या	Social Problem
2. नियामक भूमिका	Regulatory
3. सामाजिक संतुलन	Social balance
4. सामाजिक संघर्ष	Social Struggle
5. बहुलबादी समाज	Plural Society
6. संप्रभुता	Sovereignty
7. स्वैच्छिक संगठन	voluntary Organisation

2.11 बोध प्रश्न

(क) निम्न प्रश्नों का उत्तर 500 शब्दों में दीजिए:-

1. सामाजिक समस्याओं में राज्य की नियामक भूमिका से आप क्या समझते है ?
2. राज्य की नियामक भूमिका के संदर्भ में भारतीय समाज की समस्याओं के सामयिक परिवेश की समीक्षा कीजिए।
3. सामाजिक समस्याओं के निराकरण में राज्य की नियामक भूमिका को हस्तक्षेप क्यों कहा जाता है ? क्या आप इस मत से सहमत हैं?
4. राज्य की नियामक भूमिका के आधारभूत तत्वो की विवेचना कीजिए ।

(ख) निम्न प्रश्नों के उत्तर 150 शब्दों में दीजिए:-

1. राज्य की नियामक भूमिका के अर्थ एवं अवधारणा को स्पष्ट कीजिए ।
2. सामाजिक समस्याओं के निराकरण में सामाजिक संस्थाओं एवं संगठनों की क्या भूमिका होती है?
3. सामाजिक समस्याओं के निराकरण में व्यक्ति समाज एवं राज्य की पारस्परिक भूमिका की विवेचना कीजिए।
4. अशिक्षा अज्ञान एवं गरीबी सामाजिक समस्याओं के संबंध में क्या भूमिका निभाते है ?

इकाई 3

सामाजिक समस्याओं के उन्मूलन हेतु पारित विशिष्ट कानून

इकाई की रूप रेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 सामाजिक समस्याओं के उन्मूलन हेतु पारित विशिष्ट कानून

- 3.2.1 घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण कानून का सामान्य परिचय
- 3.2.2 घरेलू हिंसा कृत्यों के प्रकार
- 3.2.3 घरेलू हिंसा से व्यथित व्यक्ति के प्रदत्त अधिकार
- 3.2.4 घरेलू हिंसा कार्य करने बाले दुरूपयोगकर्त्ता के विरूद्ध पारित किए जाने वाले विविध आदेश/अनुतोष
- 3.2.5 घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण कानून के मुख्य प्रावधान
- 3.2.6 हिन्दू विधवा पुनर्विवाह कानून, 1856
- 3.2.7 बाल-विवाह अवरोध कानून 1929
- 3.2.8 अनैतिक व्यापार (निवारण) कानून, 1956
- 3.2.9 दहेज प्रतिषेध कानून, 1961
- 3.2.10 गर्म का चिकित्सकीय समापन कानून, 1971
- 3.2.11 पूर्व-गर्भधारण एवं प्रसूति पूर्व निदान तकनीक (लिंग-चयन का प्रतिषेध) कानून, 1994

3.3 शब्दावली

3.4 सन्दर्भ ग्रंथ

3.54 बोध-प्रश्न उद्देश्य

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप

1 सामाजिक समस्याओं के उन्मूलन के उद्देश्य समझ सकेंगे ।

2 घरेलू हिंसा के बारे में जानने के साथ-साथ घरेलू हिंसा के विरूद्ध पारित कानून के बारे में भी जान सकेंगे ।

3 बाल विवाह निषेध कानून, विधवा विवाह कानून एवं दहेज प्रतिषेध कानून की जानकारी हासिल कर पायेंगे ।

4 गर्म चिकित्सकीय समापन कानून को समझ पायेंगे ।

5 विभिन्न कानूनों को बनाने के लिए विभिन्न उद्देश्यों का मनन कर सकेंगे ।

3.1 प्रस्तावना

मनुष्य समाज में रह कर ही संस्कारित होता है । उस का समाज के बिना जीवन अधूरा है। मनुष्य को इस लिए सामाजिक प्राणी कहा गया है । समाज में रहकर मनुष्य समन्वय, सुरक्षा, शक्ति,

समादर एवं गौरव अनुभव करता है । वहीं समाज में रहकर उसे कई ज्वलंत एवं विषम समस्याओं का सामना करना पडता है । कई मामले समाज में इस प्रजातांत्रिक शासन प्रणाली में बहुमत के आधार पर सुलझाएं जाते हैं। समय के अनुसार भी सामाजिक परिवर्तन होता रहता है । समाज को अनुशासित एवं नियंत्रित करने के लिए सरकार कानून बनाकर उनकी पालना कार्यपालिका से सुनिश्चित करवाती है । आज समाज में कई प्रमुख सामाजिक समस्याएं व्याप्त हैं जिनका निवारण केवल कानून बनाकर ही किया जा सकता हे । हमारी सामाजिक व्यवस्था में कई समस्याएं अपना विकराल रूप ले कर खड़ी हैं। आज के आधुनिक समाज में कई विकट समस्याएं जैसे - भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, -निर्धनता, जनसंख्या विस्फोट, मादक पदार्थो का दुरूपयोग, बालश्रम, बलात्श्रम, बंधुआ मजदूरी, विकलांगता, जन-स्वास्थ्य, वृद्धावस्था, कालाधन, भिक्षावृत्ति, गर्भपात, आतंकवाद, वेश्यावृति, आत्महत्या, मानसिक रोग, बाल अपराध, बाल अपराधी, अलगाववाद, एड्स, मृत्युदंड, दहेज प्रथा, सतीप्रथा, मानवाधिकार, खाद्य सुरक्षा, निरक्षरता, कुपोषण, जाति एवं सामाजिक न्याय, जनजातीय समस्याएं, शिक्षा की कमी, युवाओं में असंतोष पर्यावरण-प्रदूषण, आवास, नगरीकरण, साम्प्रदायिकता, महिलाओं के विरूद्व हिंसा, भ्रूण-हत्या, बाल-हत्या, महिला-सशक्तीकरण, श्रमिक सुरक्षा, अपराध एवं अपराधी, व्यसन वृति, कालाबाजारी, अस्पृश्यता, तस्करी, मद्यपान, विवाह विच्छेद, जातिवाद, क्षेत्रवाद, युद्व, अकाल, भाषावाद घरेलू हिंसा, अपहरण, डकैती. चोरी, खाद्य अपमिश्रण, मृत्युभोज, क्रूरता, बाल विवाह, पर्दा प्रथा, नशीले' पदार्थो का सेवन, जुआ खोरी आदि महत्वपूर्ण सामाजिक समस्याएं प्रचलित हैं । इन सभी सामाजिक समस्याओं के समाधान एवं निवारण करने के लिए व्यापक दृष्टिकोण से अपना कर के सही सोच विकसित करने की आवश्यकता है तथा इन सामाजिक समस्याओं के निवारण एवं उचित नियंत्रण के लिए संसद एवं विधान पालिकाओं द्वारा आवश्यकतानुसार एवं समयानुसार कई अधिनियम बनाए गए हैं । ऐसी सामाजिक दशा जो सामान्य रूप से अधिकांश लोगों के मूलों की दृष्टि से खतरे के रूप में देखी जाती है वही सामाजिक समस्या मानी जाती है। सामाजिक समस्या एक ऐसी दशा है जो चिन्ता, तनाव, संघर्ष, भय, नैराश्य, अधीरता, शोक, क्लेश, संकट, परेशानी, कठिनाई उत्पन्न करती है और आवश्यकता की पूर्ति में बाधा डालती है । सामाजिक समस्या सामाजिक आदर्शों का विचलनहै जिसका निराकरण सामूहिक प्रयास से ही संभव है । व्यक्तिगत समस्या सामाजिक समस्याओं को तथा सामाजिक समस्या व्यक्तिगत समस्याओं को जन्म देती है । सामाजिक समस्याओं को मापने के भावात्मक, सांस्कृतिक एवं सांख्यिकीय तीन आधार बताए गये हैं । विचलन को अनुरूपता के विपरीत माना जाता है । सामाजिक प्रतिमानों एवं मापदण्डों के विपरीत आचरण करने को ही सामान्यतः: विचलन कहा जाता है । विचलन को विपथगमन भी कहा जाता है विचलन में परिवर्तन को नवाचार कहते हैं । विचलित व्यवहार अनेक सामाजिक समस्याओं के लिए उत्तरदायी है । सामाजिक विघटन के कारण सामाजिक समस्याएं उत्पन्न होती हैं । संस्कृति के विभिन्न पक्षों में परिवर्तन की असमान दर सामाजिक समस्याओं को जन्म देती है । मूल्यों पाये जाने बाले मतभेद या मूल्यों के सामान्य अर्थों के बदल जाने से भी सामाजिक समस्याएं पैदा होती हैं। वे लोग विचलित व्यक्ति कहलाते हैं जिनका व्यवहार सामाजिक समस्याओं की उत्पति में योगदान देता है । सामाजिक समस्याओं को प्राकृतिक, सुधारात्मक एवं नैतिक समस्याओं में विभक्त कर सकते हैं । सामाजिक समस्याओं के अध्ययन करने लिए तीन अध्ययन पद्धतियाँ है यथा

1 एकल वैयक्तिक अध्ययन पद्धति

2 सामाजिक सर्वेक्षण पद्धति तथा

3 बहु कारक पद्धति प्रयोग में ली जाती है, कानून बनाते समय विधायिका यह ध्यान रखती है कानून में बही प्रावधान रखे जाने चाहिए जिससे समाज, समुदाय के अधिकतम लोगों का से कल्याण हो।

इस इकाई के अन्तर्गत हम आपको यहाँ सामाजिक समस्याओं के उन्मूलन हेतु महिलाओं के उत्थान के लिए जो भी विशिष्ट कानून संसद एवं राज सरकारों ने बनाए हैं । उन सभी नियमों के बारे में संक्षिप्त जानकारी प्रदान करेंगे ताकि समाज में जागरूकता पैदा हो और सुधार महसूस किया जा सके ।

3.2 सामाजिक समस्याओं के उन्मूलन हेतु महिलाओं से सम्बन्धित विशिष्ट कानून

महिलाओं से सम्बन्धित विभिन्न कानूनों की विवेचना हमने प्रथम पाठ्यक्रम महिला प्रस्थिति की इकाई 11 में विस्तार से की है । यहाँ हम केवल महिलाओं से सम्बन्धित सामाजिक बुराइयों / समस्याओं के निवारण करने के लिए, प्रत्यक्षतः समस्या को हल करने के लिए जिन कानूनों को संसद ने पारित कर दिया है । उनमें से विशिष्टता रखने बाले अधिनियमों में वर्णित प्रावधानों को संक्षिप्त रूप से समझाने की चेष्टा करेंगे ।

3.2.1 घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण अधिनियम 2005 का सामान्य परिचय

यह अधिनियम लोक सभा द्वारा 24 अगस्त, 2005 को और राज्य सभा द्वारा 29 अगस्त, 2005 को पारित किया गया था । इस को भारत के महामहिम राष्ट्रपति की स्वीकृति 13 सितम्बर, 2005 को फक होने के बाद यह अधिनियम बना था तथा इसे जग-कश्मीर राज्य के सिवाय सम्पूर्ण भारत में 28 अक्तुबर, 2006 को प्रभावी किया गया था । इस अधिनियम में पाँच अध्याय और धाराएं संहिताबद्ध की गई हैं तथा इस अधिनियम के प्रावधानों को लागू करने में सहायता प्रदान करने हेतु घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण नियम, 2006 को भी 26 अक्तूबर, 2006 को प्रभावी किया गया हैं । इसमें 17 नियमों को व्यवस्थित किया गया है । अधिनियम संख्या 43 बनाया गया था । घरेलू हिंसा तब होती है जब परिवार का सदस्य, भागीदार, पूर्व भागीदार, शारीरिक या मनोवैज्ञानिक रूप से अन्य व्यक्ति को अधिशासित, अपहानि या दबाव, प्रभाव में लेने का प्रयास करता है । इसे अंतरंग भागीदार हिंसा, पत्नी पिटाई, पत्नी, प्रहार, पुरूष पिटाई, पति प्रहार, सम्बन्ध हिंसा, घरेलू दुरूपयोग, दम्पति दुरूपयोग और पारिवारिक हिंसा के नाम से भी पहचान सकते हैं ।

भारत में घरेलू हिंसा की घटना व्यापक रूप से प्रचलित है । सिविल विधि में घरेलू हिंसा को रोकने का कोई प्रावधान नहीं किया गया है । महिला के पति एवं सम्बन्धियों द्वारा निर्दयतापूर्वक व्यवहार करने पर इसे भारतीय दंड संहिता की धारा 498 क के अधीन क्रूरता का अपराध माना गया है । महिलाओं को घरेलू हिंसा से पीड़ित होने पर सिविल विधि में संरक्षित करने के उपचार का प्रावधान किया गया है । और समाज में घरेलू हिंसा की घटनाओं को निवारित करने के लिए घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण विधेयक संसद में प्रस्तुत किया गया था । घरेलू हिंसा को मानवाधिकार विवाधक बताया गया है। घरेलू हिंसा सार्वजनिक क्षेत्र में व्यापक रूप से अदृश्य है । सर्वप्रथम सिविल विधि में घरेलू हिंसा के निवारण करने की व्यवस्था की गई है ।

घरेलू हिंसा सभी धर्म, आयु मूलवंश के लोगों के साथ हो सकती है । यह विपरीत लिंग और सम लिंग दोनों के संबंधों में होती है । घरेलू हिंसा शारीरिक, यौन, मौखिक, भावनात्मक, आर्थिक एवं आध्यात्मिक दुरूपयोग, मनौवैज्ञानिक, अनुचित व्यवहार के रूप में हो सकती है ।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर घरेलू हिंसा के बारे में पुरजोर वकालत वियना समझौता, 1994 कार्रवाई के लिए बीजिंग घोषणा और मंच 1995 तथा संयुक्त राष्ट्र संघ ने महिलाओं के विरूद्ध सभी प्रकार के विभेदीकरण के उन्मूलन पर अभि समय समिति ने की है । इस समिति की यह सिफारिश है कि राज्य पक्षकारों को किसी भी प्रकार की हिंसा, विशेष रूप से परिवार के भीतर होने वाली हिंसा के विरूद्ध महिलाओं को संरक्षण के लिए कार्य करने का प्रावधान किया है ।

कथित व्यक्ति में केवल धर्म-पत्नी ही शामिल नहीं की गई है बल्कि बह महिला भी है जो पुरूष की यौन भागीदार है। इसमें रखैल, वेश्या, कालगर्ल, पुत्री, माता, बहन, शिशु विधवा, घर में निवास करने वाली कोई भी महिला हो सकती है । घरेलू हिंसा का बाद पति या पुरूष भागीदार के विरूद्ध भी संस्थित किया जा सकता है । इस कानून में व्यथित स्त्री के अलावा उसका कोई पडोसी, रिश्तेदार, शुभचिन्तक, मित्र, सामाजिक कार्यकर्ता एवं सम्बन्धी पीड़िता की और से दावे की पहल कर सकने की अनुमति प्रदान की गई है ।

घरेलू हिंसा के संबंध में न्यायालय में परिषद करने के तीन दिन के भीतर प्रथम सुनवाई करने तथा प्रत्येक ऐसे घरेलू हिंसा के मामले का निस्तारण प्रथम सुनवाई के 60 दिवसों के भीतर करने की व्यवस्था की गई है । व्यथित व्यक्ति के एक मात्र साक्ष्य के आधार पर न्यायालय अभियुक्त व्यक्ति को दंडित कर सकता है । इस कानून में आने वाले प्रावधानों में वर्णित अपराध को संज्ञेय और अजमानतीय तथा प्रथम श्रेणी के न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा विचारित करने की व्यवस्था की गई है ।

घरेलू हिंसा का दुरूपयोगकर्ता और पीडित श्रमिक, शिक्षक, न्यायाधीश, डॉक्टर, अभिरक्षक, अर्दली, आचार्य, चालक गृह निर्माता, भण्डार लिपिक हो सकते हैं । घरेलू हिंसा निर्धनतम संवर्ग अत्यधिक शौकीन कारीगर, मिस्त्री, सफेदपोश, पड़ौसी के शिकार हो सकते हैं ।

घरेलू हिंसा की शिकार 95 फीसदी अधिकांश महिलाएं होती हैं । इनमें से 50 फीसदी अंतरंग संबंध के कारण शारीरिक हिंसा का अनुभव करती हैं । इन महिलाओं में से 24.30 प्रतिशत के लिए नियमित प्रहार जारी है । प्रत्येक 15 सैकण्ड में महिला के साथ प्रहार का अपराध घटित होता है । जिनमें से अधिकतर दुरूपयोगकर्ता पुरूष बताए गए हैं ।

3.2.2 घरेलू हिंसा कृत्यों के प्रकार

घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण विधि में घरेलू हिंसा को मुख्यतया बार भागों में विभक्त किया गया है । इस इकाई में हम आप को घरेलू हिंसा के विविध स्वरूपों या प्रकारों के बारे में जानकारी दे सकेंगे। ओ पी. राय ने घरेलू हिंसा के निम्न प्रकार बताए हैं

1 **शारीरिक हिंसा**

शारीरिक हिंसा भी एक घरेलू हिंसा का प्रकार है । इसमें निम्न हिंसक कार्य आते हैं-
मारपीट करना, थप्पड़ मारना, ठोकर मारना, दांत से काटना, लात मारना, मुक्का मारना, धक्का देना, बाल खींचना या धकेलना, किसी अन्य रीति से शारीरिक पीड़ा या क्षति पहुँचाना, प्रहार करना, आपराधिक बल का प्रयोग करना, शारीरिक या मानसिक यातना देना क्रूरतापूर्ण व्यवहार करना, चिकोटी काटना, शराब या मादक पदार्थों के सेवन के लिए बाध्य करना

2 लैंगिक हिंसा-

लैंगिक हिंसा भी घरेलू हिंसा में आता है । इस लैंगिक हिंसा में निम्न बातें शामिल की गई हैं । बलात् लैंगिक मैथुन, अश्लील साहित्य, कोई अन्य अश्लील तस्वीर या सामग्री को देखने के लिए मजबूर करता है, बालकों के साथ लैंगिक दुर्व्यवहार तथा, दुर्व्यवहार करने अपमानित करने, नीचा दिखाने की लैंगिक प्रवृति का कोई अन्य कार्य जो प्रतिष्ठा का उल्लंघन करता हो या अन्य कोई अनैतिक अस्वीकार्य लैंगिक प्रकृति करना आदि आते हैं । इसे कौटुम्बिक व्याभिचार भी कहते हैं।

3 मौखिक एवं भावनात्मक हिंसा

इस हिंसा में निम्न बातें शामिल की गई हैं -

चरित्र एवं आचरण पर दोषारोपण ।

पुरुष संतान न होने पर अपमान ।

दहेज न देने पर अपमान या दहेज की मांग करना ।

व्यथित या उसके बालक दो किसी शैक्षणिक संस्था में जाने से रोकना ।

नौकरी करने से रोकना, नौकरी छोड़ने के लिए विवश करना ।

बालक को घर जाने से रोकना, किसी व्यक्ति से मुलाकात नहीं करने देना, विवाह करने के लिए मजबूर करना, पसंद के व्यक्ति से विवाह करने से रोकना, अपनी पसंद के किसी विशेष व्यक्ति के साथ विवाह करने के लिए मजबूर करना, आत्महत्या करने की धमकी देना, कोई अन्य मौखिक या भावनात्मक दुर्व्यवहार, लज्जा भंग करना, छींटाकशी करना, कोई अन्य अश्लील गंदे अनैतिक इशारे एवं आपराधिक माह भंगिमा हास, उपहास, अन्य करना आदि शामिल हैं ।

4 आर्थिक हिंसा

यह भी घरेलू हिंसा का एक प्रकार है । इसमें निम्न क्रिया-कलाप सम्मिलित किए गए हैं ।

किराए का संदाय नहीं करना।

साधारण घरेलू उपयोग के कप, चीजों या अन्य वस्तुओं के उपयोग करने की इजाजत नहीं देना ।

घर के किसी भाग में आने जाने या उपयोग करने से रोकना ।

व्यथित या बच्चों के अनुरक्षण हेतु धन-उपलब्ध नहीं करना ।

व्यथित या बच्चों के लिए खाना, कपड़े और दवाइयों का प्रबन्ध नहीं करना ।

वैध रोजगार चलाने से रोकना ।

रोजगार करने में बाधा या विघ्न डालना ।

किसी रोजगार को करने की आज्ञा नहीं देना ।

वेतन, पारिश्रमिक की आय को हजम करना । अपना वेतन, मजदूरी, मेहनताना के उपयोग करने की इजाजत नहीं देना।

कथित को जिस घर में बह निवास कर रही हो, उससे बाहर निकालने को विवश करना । किसी आर्थिक आय या स्रोत को बंद कराने में सहायता करना ।

कथित के आभूषण, स्त्रीधन या कपड़ों का कब्जा नहीं देना ।

न्यायालय की इजाजत के बिना संयुक्त बैंक खातों या लौकरों के प्रचालन पर रोक लगाना
दूरभाष पत्रादि, ई-मेल करने से रोकना ।
भरण-पोषण नहीं करना ।

3.2.3 घरेलू हिंसा से व्यथित व्यक्ति के प्रदत्त अधिकार

घरेलू हिंसा से ग्रस्त दुःखी या पीड़ित व्यक्ति को इस घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण कानून की धारा 5,6,7,9,10,12.14,18 से 23 में कई अधिकार आबंटित किए गए हैं । घरेलू हिंसा की शिकार महिला इस कानून के अन्तर्गत निम्नलिखित अधिकार सुनिश्चित किए गए हैं -

1 अधिकारों, अनुतोषों, संरक्षण अधिकार एवं सेवा प्रदाता की सहायता को जानने एवं प्राप्त' करने का अधिकार-धारा -5
2 पीडित की शिकायत दर्ज करने में सहायता एवं आवेदन का अधिकार - धारा - 9 ब 10
3 चिकित्सकीय सहायता, आश्रय, परामर्श एवं विधिक सहायता प्राप्त करने का अधिकार धारा - 6,7,9, व 14
4 घरेलू हिंसा के कृत्यों के विरूद्ध स्वयं तथा बालकों के लिए संरक्षण प्राप्त करने का अधिकार धारा - 18
5 पीडित एवं उसके बालकों के विरूद्ध विशिष्ट खतरों एवं असुरक्षाओं के प्रति संरक्षण के उपाय और आदेश प्राप्त करने का अधिकार
6 पीडित एवं उसके बालकों को निरापद बिना हस्तक्षेप के निवास एवं सुविधाओं का शांतिपूर्वक उपयोग करने का अधिकार
7 पीडित के विरूद्ध घरेलू हिंसा करने वाले व्यक्ति को उससे संपर्क एवं पत्र व्यवहार को रोकने का अधिकार धारा -18
8 किसी घरेलू हिंसा के कारण कारित किसी शारीरिक, मानसिक क्षति या मौद्रिक नुकसान के लिए प्रतिकर प्राप्त करने का अधिकार धारा - 18
9 पीड़ित स्त्री के स्त्रीधन, आभूषण, कपडों, दैनिक उपयोग की वस्तुओं और अन्य घरेलू चीजों को वापस कब्जे में लेने का अधिकार धारा - 22
10 पीडित को सीधे ही न्यायालय को परिशद करने या कोई अनुतोष प्राप्त करने का अधिकार धारा- 12,18 से 23
11 पीडित द्वारा की गई शिकायत, चिकित्सा या अन्य परीक्षणों के प्रतिवेदन की प्रतियां प्राप्त करने का अधिकार
12 घरेलू हिंसा के संबंध में किसी प्राधिकारी द्वारा अभिलिखित किसी कथन की प्रतियां लेने का अधिकार
13 किसी खतरे लिए पुलिस या संरक्षण अधिकार की सहायता लेने का अधिकारी

3.2.4 घरेलू हिंसा का रित करने वाले दुरूपयोगकर्ता के विरूद्ध पारित किए जाने वाले विविध आदेश /अनुतोष

यदि कोई महिला एक ही घर में हिंसा का रित करने वाले व्यक्ति या व्यक्तियों के साथ रह रही है/थी । उसके विरूद्ध किसी प्रकार की उपरवर्णित हिंसा का रित/ घटित की जाती है तो वह पीड़ित महिला दुरूपयोगकर्ता के विरूद्ध न्यायालय से निम्नलिखित सभी या कोई आदेश प्राप्त कर सकती है-

1 व्यथित या बालकों के विरूद्ध घरेलू हिंसा को रोकने का आदेश

2 व्यथित स्त्री के कपडों, आभूषणों, स्त्री धन एवं आवश्यक चीजों या वस्तुओं इत्यादि का कब्जा दिलवाने का आदेश।

3 न्यायालय की अनुज्ञा बगैर संयुक्त बैंक या लौकरों के प्रचालन नहीं कराने का आदेश, सभी धारा 18 के अधीन आदेश हैं ।

4 व्यथित को निवास शांतिपूर्वक करने का आदेश ।

5 शांतिपूर्ण निवास में कोई व्यवधान या बाधा नहीं डालने या जिस घर में पीड़िता रह रही है उसका व्यय का आदेश

6 किराये के मकान में किराए के संदाय एवं सुरक्षा एवं सुविधाएं रखवाने के आदेश ।

7 न्यायालय की बिना आज्ञा के सम्पत्ति के अधिकार नहीं देने का आदेश ।

8 मकान को बंधक, विक्रय, अंतरण, ऋण पर नहीं रखने का आदेश ।

9 व्यथित व्यक्ति या बच्चों की सुरक्षा रखवाने वाला कोई आदेश ।

10 घरेलू हिंसा को रोकने का साधारण आदेश सभी धारा 19 के अधीन हैं कोई विशेष आदेश न्यायालय द्‌वारा पारित करवाया जा सकता है ।

11 उसके निवास या कार्यस्थल से स्वयं को हटाने या दूर रखने के लिए ।

12 उससे मिलने या सम्पर्क के किसी प्रयास को रोकने के लिए ।

13 उसके किसी दूरभाष, पत्रादि, ई-मेल के माध्यम से सम्पर्क स्थापित करने के प्रयास को रोकने के लिए ।

14 उसके विवाह के संबंध में बात करने से या उसकी/उनकी पसंद के किसी विशेष व्यक्ति से विवाह के लिए मिलने के लिए मजबूरी को रोकने के लिए ।

15 बालक/बालिकाओं को विद्‌यालय जाने देने या वहाँ से दूर रहने के लिए, (2) आग्नेयास्त्रों, किसी खतरनाक आयुद्ध या पदार्थ के कब्ज़े के समर्पण के लिए (3) किन्हीं आग्नेयास्त्रों या किसी खतरनाक आयुद्ध या पदार्थ को अर्जित या कब्ज़ा नहीं रखने के लिए, (4) शराब या घरेलू हिंसा की साधक औषधियों के सेवन पर रोक लगाने के लिए, (5) उसको या उसके बच्चों की सुरक्षा के लिए अपेक्षित कोई उपाय करने के लिए धारा - 19

(ङ) धारा 20 और 22 में कोई भी अंतरिम घनीय राहत दी जा सकती है ।

16 चिकित्सकीय व्यय समेत किसी शारीरिक क्षति के लिए प्रतिकर

17 उसको या उसके बच्चों के भरण पोषण कराने के लिए

18 मानसिक प्रताड़ना और भावनात्मक कष्ट के लिए प्रतिकर

19 जीवित की शादी के लिए प्रतिकर

20 उसके कब्जे या नियंत्रणाधीन किसी सम्पत्ति के नुकसान, विनाश, क्षति, हानि, हटाना का रित करने के लिए प्रतिकार

उक्त सभी आदेश उस व्यथित महिला या उसकी ओर से न्यायालय के समक्ष परिवाद करने के पश्चात् उसके निस्तारण से पूर्व उक्त कोई अंतरिम अनुतोष प्रदान किया जा सकता है ।. इसकी शिकायत प्रपत्र - 1 में घरेलू घटना रिपोर्ट में की जाएगी ।

प्रो. राम अहू जा ने - हिंसा को धन अभिमुख, कमजोर पर सत्ता प्राप्त करने, भोग विलास व्यक्तित्व विकृति, तनावपूर्ण पारिवारिक परिस्थितियों के कारण तथा पीड़ित प्रेरित इन का सात भागों

में वर्गीकरण गया किया है । महिलाओं के साथ निम्न सात प्रकार के कारणों से उत्पीड़न हिंसा के अपराधकर्ता द्वारा किए जा सकते हैं :

1 अवसाद ग्रस्त होते हैं जिनमें हीन भावना होती है और आत्म सम्मान कम होता है ।

2 व्यक्तित्व के दोषी तथा मनोरोगी होते हैं ।

3 जिनके पास संसाधनों, प्रवीणताओं प्रतिभाओं का अभाव होता है, जिनका व्यक्तित्व समाज वैज्ञानिक रूप से विकृत होता है ।

4 जिनकी प्रकृति में मालिकानापन, शक्कीपन और प्रबलता रहती है ।

5 पारिवारिक जीवन में तनावपूर्ण स्थितियों का सामना करते हैं ।

6 जो बचपन में आदतन हिंसा के शिकार हुए हैं तथा

7 जो बहुधा मदिरापान, दुर्व्यसन के शिकार हैं ।

महिलाओं के विरूद्ध हिंसा के चार प्रमुख कारण गिनाए जा सकते है ।

1 पीडित द्वारा भड़काना, 2 मद्यपान या नशा, 3 महिलाओं के प्रति शत्रुता की भावना तथा 4 परिस्थितिवश प्रेरणा भी उत्तरदायी मानी जाती है ।

हिंसा बारम्बार, एक बार, यदा कदा, लगातार या दीर्घकालीन हो सकती है । हिंसा की कठोरता के सौपान कई हो सकते हैं । यथा मनोवैज्ञानिक एवं शारीरिक, अपहानि अस्थायी या स्थायी अपहानि सौम्य, असौम्य सन्तुलित ,असन्तुलित, हल्के या संगीन मानव वध तक अपराध करने के कदम उठाए जा सकते हैं । घरेलू हिंसा एक शारीरिक, यौन, आर्थिक या मनौवैज्ञानिक, आध्यात्मिक या भावनात्मक दुरूपयोग है जो किसी के पति या पत्नी, भागीदार या गृहस्थी के अधीन अन्य पारिवारिक सदस्यों के प्रति निर्दिष्ट है । इसमें पीडित के साथ अभित्रास, तंग करना. सम्पत्ति या शरीर को क्षति, हानि, धमकी, अपमान, स्वयं तथा वस्तुओं पर प्रहार, आक्रमण, बल आदि का प्रयोग करना घरेलू हिंसा में आते हैं । शब्दों, हावभाव शारीरिक भंगिमा, तौहीन करना, चेहरे की अभिव्यक्ति एवं हथियारों का प्रयोग घरेलू हिंसा के कारण कहे जा सकते हैं । इसमें अकड़ कर चलना, आध्यात्मिक दुरूपयोग भी सम्मिलित हैं । इस घरेलू हिंसा से बचाने के लिए महिला संरक्षण कानून में किसी अपराध के लिए एक वर्ष के कारावास तथा 20,000/- रूपये जुर्माना तक की शास्ति के लिए प्रावधान किया गया है।

घरेलू हिंसा के कारण के संबंध में कई सिद्धान्त प्रचलित रहे हैं । दूसरे को नियंत्रित करने की मनसा दबंग बनने की प्रवृत्ति भागीदार को अधिशासित करने का प्रयास, निर्धनता का बल, पारिवारिक शत्रुता द्वेष, आनुवंशिक प्रवृत्ति, सामाजिक, सांस्कृतिक प्रभाव, सारभूत दुरूपयोग, मानसिक बीमार, तानाशाही प्रवृत्ति को भी घरेलू हिंसा उत्पन्न होने के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सकता है ।

3.2.5 घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण कानून में मुख्य-मुख्य प्रावधानिक अवस्थाएं

धारा - यह कानून वर्ष 2005 के अधिनियम संख्या 43 में बनाया गया था । इसे व 3 सितंबर, 2005 को जम्मू-कश्मीर के सिवाय सर्च भारत के लिए पारित किया गया था । इसे 28 अक्तूबर, 2008 को प्रवृत किया गया था । यह कानून उन महिलाओं के संरक्षण क्षेत्र में है, जो परिवार के भीतर होने वाली किसी प्रकार की घरेलू हिंसा से पीडित हैं इसमें संतान के अन्तर्गत कोई भी नाबालिग व्यक्ति चाहे वह दत्तक, ग्रहण संगी औलाद, सौतेला, या धाय-पालित संतान को माना गया है । प्रतिकर आदेश, विशेष

आदेश, साधारण अभिरक्षा आदेश, मौद्रिक आदेश, हो चिकित्सकीय सुविधा, संरक्षण आदेश, निवास आदेश, दहेज आदेश, घरेलू हिंसा संरक्षण अधिकारी, मजिस्ट्रेट, प्रत्यर्थी, सेवा प्रदाता, साक्षी गृहस्थी तथा संरक्षण गृह को धारा - 2 में परिभाषित किया गया है ।

धारा - 3 घरेलू हिंसा को परिभाषित करती है । इसमें प्रत्युत्तर दाता का कोई कार्य, लोभ, कार्यकरण या आचरण कुछ परिस्थितियों में घरेलू हिंसा के समान बताया गया है । इसमें शारीरिक दुर्व्यवहार, यौन दुर्व्यवहार, मौखिक, भावनात्मक, आर्थिक एवं मनौवैज्ञानिक दुरूपयोग भी घरेलू हिंसा का रित करने के लिए दावी है ।

धारा - 4 में पीडित व्यक्ति द्वारा घरेलू हिंसा का कार्य किया जा रहा है के संबंध में संरक्षण अधिकारी को सूचित करने की व्यवस्था है । सदभावना से पारित सूचना सिविल एवं आपराधिक दायित्व से मुक्त मानी गयी है

धारा - 5 में पुलिस अधिकारी, संरक्षण अधिकारी, सेवा प्रदाता एवं दण्डात्मक व्यक्ति द्वारा इस कानून के तहत एक या एकाधिक उपचारों के लिए आवेदन करने का अधिकार निःशुल्क विधिक सेवा प्राप्त करने का अधिकार, क्रूरता के संबंध में परिषद दाखिल करने के अधिकार को बताती है । वहीं पुलिस अधिकारी के संज्ञेय अपराध का रित करने पर कार्य करने के कर्तव्य को दर्शाती है । धारा - 6 में संरक्षण गृहों में कथित द्वारा आश्रय प्रदान करने की प्रार्थना करने पर आश्रय प्रदान का प्रावधान किया गया है ।

धारा - 7 में व्यथित व्यक्ति को कर साधक अधिकारी द्वारा चिकित्सकीय सुविधा दिलवाने के कर्तव्य की व्यवस्था की गई हैं । धारा - 9 में संरक्षण अधिकारी के कर्तव्य एवं कार्यो को बताया गया है । संरक्षण अधिकारी अपने कार्यों के निर्वहन में मजिस्ट्रेट की सहायता करेगा घरेलू घटना की रिपोर्ट मजिस्ट्रेट को कर सकेगा। चिकित्सकीय सहायता, सुरक्षित आवास उपलब्ध करायेगा । चिकित्सा जाँच या मौद्रिक अनुतोष देने आदि के कार्य बताए गए हैं ।

धारा - 10 में सेवा प्रदाता सहकारी पंजीयन कानून 1860 या कंपनी अधिनियम 1956 के अधीन स्वैच्छिक पंजीयन करा सकने की अवस्था की गई है। ताकि घरेलू हिंसा के निवारणार्थ कोई गैर सरकारी संगठन स्वैच्छिक रूप से कार्य करने में सहायता कर सकेंगे । धारा - 11 में केन्द्रीय सरकार एवं राज्य सरकारों के कृत्यों को बताया गया है । इसमें कानून की संवेदनशीलता, जानकारी, प्रशिक्षण दिया जा सके । इसमें गृह, विधि एवं न्याय स्वास्थ्य एवं मानव संसाधन से सम्बन्धित मंत्रालयों एवं विभागों के बीच विवादों के निस्तारण, प्रभावी समन्वय तथा दूरदर्शन, आकाशवाणी, प्रिन्ट मिडिया के माध्यम से समाचार प्रकाशित, प्रचारित एवं प्रसारित करने की व्यवस्था की गई है ।

धारा - 12 में मजिस्ट्रेट को आवेदन करने का प्रावधान किया गया है । इसमें आवेदन व्यथित व्यक्ति संरक्षण अधिकारी एवं व्यथित व्यक्ति की तरफ से अन्य कोई भी व्यक्ति कर सकता है । मजिस्ट्रेट घरेलू रिपोर्ट का विचारण प्रारंभ करेगा तथा कोई प्रतिकर या नुकसान के संदाय का आदेश पारित कर सकेगा ।

धारा - 13 में सूचना-पत्र कर तामील मजिस्ट्रेट द्वारा प्रत्युत्तर दाता को दो दिन की अधिकतम अवधि या युक्तियुक्त समय के भीतर अनुज्ञात साधनों द्वारा तामील सुनिश्चित करने का प्रावधान किया गया है । धारा - 14 में सेवा प्रदाता द्वारा परामर्श देने के रूप में मजिस्ट्रेट 2 माह से अनधिक अवधि के भीतर मामले की सुनवाई की अगली तारीख नियत करने की व्यवस्था की है । धारा - 15 में कल्याण विशेषज्ञ की सहायता लेने के बारे में महिला सदस्य को ही परामर्श देने में प्राथमिकता प्रदान

करने की व्यवस्था की गई है । धारा - 16 में समस्त घरेलू हिंसा के मामलों का विचारण बंद कमरे में ही करने की व्यवस्था की गई है । यह कार्रवाई मजिस्ट्रेट के विवेकाधिकार या कार्रवाई के दोनों पक्षकारों की इच्छा पर रखा गया है । धारा - 17 में व्यथित महिला को उसके परिवार के शामिलात में निवास करने का अधिकार दिया गया है । धारा - 18 में संरक्षण आदेश के बारे में प्रावधान किया गया है । धारा - 19 में निवास आदेश देने के बारे में व्यवस्था की गई है । धारा - 20 में मौद्रिक अनुतोष, धारा - 21 में अभिरक्षा आदेश, धारा - 22 में प्रतिकार आदेश, धारा - 23 में अंतरिम एवं एक पक्षीय आदेश देने की शक्ति धारा 24 में न्यायालय द्वारा आदेश की प्रतियां निःशुल्क देने, धारा - 25 में आदेशों की अवधि और उनमें परिवर्तन तथा धारा - 28 में अन्य वादों और विधिक कार्रवाईयों में अनुतोष देने के संबंध में प्रावधान किए गए हैं ।

इस कानून की धारा - 27 में अधिकारिता न्यायिक दण्डाधिकारी प्रथम श्रेणी या महानगर दण्डाधिकारी को दी गई है। इसमें व्यथित एवं प्रत्यर्थी व्यक्ति के निवास, कारोबार, नियोजन स्थान या जहाँ बाद हेतु उन्नत हुआ हो, उसे क्षेत्र के न्यायिक दण्डाधिकारी घरेलू हिंसा से संबंधित मामलों की सुनवाई एवं विचारण कर सकेगें । धारा - 28 में इस कानून की सभी कार्यवाहियाँ दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 के उपबंधों द्वारा अभिशासित करने की व्यवस्था है । धारा - 29 में अपील मजिस्ट्रेट के आदेश निर्णय की तिथि से व्यथित व्यक्ति 30 दिवसों के भीतर सेशन न्यायालय में अपील कर सकने की व्यवस्था की गई है । धारा - 30 में संरक्षण अधिकारी एवं सेवा-प्रदाता को लोक सेवक होने का दर्जा प्रदान किया गया है तथा भारतीय दंड संहिता की धारा - 21 के अन्तर्गत लोक सेवक माने जायेंगे । धारा - 31 में प्रत्यार्थी द्वारा संरक्षण आदेश के भंग करने पर 1 वर्ष के कारावास या 20,000/- रु. जुर्माना या दोनों से दण्डित करने का प्रावधान किया गया है । धारा- 31 के अधीन अपराध संज्ञेय और गैर-जमानतीय रखने का प्रावधान किया गया है ।

धारा - 32 में संज्ञान और सबूत के बारे में प्रावधान मिलता है । धारा - 33 में संरक्षण अधिकारी द्वारा कर्तव्य निर्वहन नहीं करने पर 1 वर्ष का कारावास तथा 20,000- रु. तक का जुर्माना या दोनों से दण्डित करने के बारे में शास्ति का प्रावधान है । धारा - 34 मे सरंक्षण अधिकारी द्वारा का रित अपराध का प्रसंज्ञान तभी स्वीकार किया जा सकता है जब तक कि राज्य सरकार या उस निमित्त उसके द्वारा प्राधिकृत किसी अधिकारी की पूर्व मंजूरी ली गई हो तभी संरक्षक अधिकारी के विरूद्ध अभियोग या विधिक कार्रवाई संस्थित की जा सकती है । धारा - 35 में सद्भावना पूर्वक की गई कार्रवाइयों को संरक्षण करने का प्रावधान किया गया है । धारा - 36 यह नियत करती है कि इस कानून के प्रावधान अतिरिक्त होंगे और किसी अन्य विधि के प्रावधानों को अल्पीकरण में नहीं माना जायेगा । और अन्त में धारा - 37 में केन्द्रीय सरकार द्वारा नियम बनाने की शक्ति देने के संबंध में उचित प्रावधान किया गया है । केन्द्र सरकार इस धारा की प्रदत्त शक्ति का उपयोग करते हुए इस अधिनियम की सहायता करने के लिए घरेलू हिंसा महिला संरक्षण नियम, 2006 बनाए गए हैं जिसे 28 अक्टूबर, 2008 से प्रभावित किया गया है । इसमें कुल 17 नियम संहिताबद्ध किए गए है तथा इसमें विभिन्न सात प्रकार के प्रारूपों को भी शामिल किया गया है ताकि अभिवचन, अभिकथन के लिए सही प्रारूपण या आलेखन किया जा सके।

यह कानून महिलाओं के लिए एक ढाल एवं कवच के रूप में कामयाब सिद्ध हो सकेगा । तथा समय-समय पर महिलाओं द्वारा चलाए गए आन्दोलनों के फलस्वरूप महिला अत्याचार, ज्यादती, क्रूरता एवं हिंसा के निवारण के लिए निःसंदेह एक सफल मील का पत्थर साबित होगा ।

3.2.6 हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम 1850

प्राचीन हिन्दू विधि एवं आधुनिक हिन्दू विधि में काफी बदलाव आए हैं । विधवा होने पर स्त्री को पुन: विधवा करने की अनुमति नहीं थी । उनका जीवन दारूणिक एवं कारूणिक था । स्मृतिकाल के बाद से आगे तक विधवा महिलाओं को पुन: विवाह पर पूर्णतया रोक थी । मनु ने यहाँ तक कहा कि पक विधवा जो पुन: विवाह करती है स्वयं को अपमानित करती है अत: उसे अपने स्वामी के स्थान से बाहर निकल जाना चाहिए विधवा का स्त्री पुन: विवाह कराने के लिए राजा राम मोहन राय एवं केशव चन्द्र सेन ने भारत में आन्दोलन खडा कर दिया था । उसी के कारण सन् 1856 में बनाए गए इस कानून ने विधवाओं के विवाह में आने बाली सभी कानूनी विसंगतियों एवं अडचनों को दूर कर भगाया । इस अधिनियम में यह घोषित किया गया है कि ऐसी विधवा जिसका पति मर चुका हो, उसके द्वारा दूसरे पुरूष से विवाह करना बंध माना गया है तथा विधवा द्वारा पुन: विवाह के बाद उत्पन्न संतान अवैध नहीं माने जाने का भी इस कानून में प्रावधान किया गया है । जहाँ विधवा अल्पवयस्क, किसी मानसिक विकार से ग्रस्त हो, तो उसके माता-पिता सगे-संबंधियों या भाई से संरक्षक की हैसियत से पुन: विवाह करने के लिए सहमति लेना आवश्यक था । यदि उसके या संरक्षक की सहमति के बिना किया गया पुन: विवाह अवैध या निष्प्रभावी माना जाएगा । विधवा द्वारा पुन: विवाह कर लेने के बाद प्रथम मृतक पति की सम्पत्ति में से निर्वाह अधिकार प्राप्त करने से वंचित करने का प्रावधान किया गया है । स्त्री पुन: विवाह नहीं करके प्रथानुसार अपने मृतक पति के दाह-संस्कार के समय ही सती हो जाती थी । इस सती प्रथा का उन्मूलन करने के लिए सती (निवारण) अधिनियम संसद ने सन् 1987 में पारित किया था । राजस्थान में सीकर जिले के दिवराला गाद में रूपकंवर नाम की महिला अपने पति की दाह-क्रिया में साथ बैठकर सती हो गई थी । इस कुप्रथा के विरूद्ध आन्दोलन भी किया गया था । राजस्थान में स्त्री पति की मृत्यु होने के बाद उस महिला के देवर की चूड़ी पहनाकर, उसका नाता-प्रथानुसार किया गया पुन: विधवा मान्य है ।

3.2.7 बाल विवाह अवरोध अधिनियम, 1929

इस कानून को शारदा अधिनियम के नाम से भी जाना जाता है । भारत के सभी भागों में बाल-विवाह का प्रचलन बहुत ही सामान्य हो गया है । कम उम्र में शादी करने से वर-वधू के माध्य एवं समाज दोनों पर कुप्रभाव पडता है । समाज मे अधिकांश वर्गो ने बाल विवाह करने की प्रथा पर रोक लगाने की मांग की थी । इस अधिनियम में 12 धाराएँ संहिताबद्ध की गई हैं । यह कानून संसद एवं राष्ट्रपति की स्वीकृति लेने के बाद व अकबर 1929 को जम्मू कश्मीर राज्य के सिवाय समस्त भारत के लिए पारित किया गया था तथा यह अधिनियम पहली अप्रैल, 1930 को लागू किया गया था ।

यह अधिनियम बाल विवाह को रोकता है यह विवाह स्वयं निरर्थक एवं निष्प्रभावी घोषित है। इस कानून को बनाते समय लड़के एवं लड़की की आयु विवाह के समय क्रमश: 18 वर्ष एवं 24 वर्ष निर्धारित की थी । बाद में लड़की की आयु 15 वर्ष कर दी गयी थी । सन् 1978 में इस कानून में संशोधन किया तब जा कर लड़के एवं लड़की की विवाह के समय आयु 21 वर्ष तथा 18 वर्ष निर्धारित कर दी गई है । इस आयु को 2 अक्तूबर, 1978 से लागू किया गया था । इस कानून के प्रावधानों के उल्लंघन करने पर दण्ड का प्रावधान किया गया है । परन्तु विवाह स्वयं में वैध रहता है । इस कानून

में कुछ उद्देश्यों के लिए अपराधों को संज्ञेय प्रकृति का माना गया है । तथा अपराधी व्यक्ति के बिना वारण्ट या बिना मजिस्ट्रेट के आदेश को गिरफ्तार किया जा सकता है ।

धारा - 3 में 21 वर्ष से कम आयु वाले व्यक्ति द्वारा बाल-विवाह करने पर व 5 दिवस के कारावास तथा 1 हजार रूपये का जुर्माना तथा धारा 4 में 21 वर्ष से अधिक आयु वाले व्यक्ति द्वारा बाल विवाह करने पर उसे 3 माह के कारावास एवं जुर्माने से दंडित करने की अवस्था की गई है ।

धारा- 5 में बाल विवाह अनुष्ठापित करने बाले व्यक्ति को 3 माह के कारावास तथा जुर्माने से दंडित करने का विधान किया गया है ।

धारा - 6 में बाल-विवाह करने बाले बच्चे के अभिभावक/ संरक्षकों को धारा 4 एवं 5 के अनुसार दिए गये दंड से दंडित किया जाएगा ।

धारा - 7 में अपराधों को संज्ञेय बनाने तथा धारा - 8 में महानगर या न्यायिक को संज्ञान लेने, सुनवाई, विचारण करने की अधिकारिता दी गई है ।

धारा - 9 में इस अपराध के का रित किए जाने के 1 वर्ष बाद कोई संज्ञान नहीं लेने की अवस्था की गई की है । धारा 10 में अपराधों से सम्बन्धित पारम्परिक जाँच मजिस्ट्रेट को परिषद प्राप्त होने पर यदि खारिज नहीं किया गया है तो कार्रवाई धारा 202 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अनुसार सीधा या अधीनस्थ को जाँच करने के लिए मजिस्ट्रेट सौंप सकता है ।

धारा - 11 को सन् 1949 में हु ए संशोधन में निरासित कर दिया है । इसमें परिवादी को प्रतिभू ति लेने की व्यवस्था का प्रावधान था ।

धारा - 12 में इस कानून के प्रावधानों के विपरीत विवाह करने की अवस्था में उस बाल विवाह को रोकने के संबंध में निषेधाज्ञा जारी करने की सक्षम मजिस्ट्रेट को शक्ति देने का प्रावधान किया गया

3.2.8 अनैतिक व्यापार (निवारण) कानून, 1956

यह कानून 30 सितम्बर, 1956 को पारित समस्त भारत में किया गया था । इस कानून में महत्वपूर्ण संशोधन 1988 में किया गया था । इस कानून में 25 धाराएँ संहिताबद्ध की गई थी । यह पहले अनैतिक व्यापार महिलाओं पर दमन कानून के नाम से मशहू र हु आ था । अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर 9 मई, 1950 को न्यूयार्क शहर में महिलाओं के अनैतिक व्यापार के निवारण के लिए अभिसमय अधिवेशित किया गया था । इस कानून की धारा-2 में वेश्या गृह बालक व 6 वर्ष के कम आयु सुधार संस्था वयस्क एवं अवयस्क (18 वर्ष से 18 वर्ष पूरे न हो), वेश्यावृत्ति, संरक्षण गृह लोक स्थान, दुर्व्यापार पुलिस अधिकारी, स्त्री बह है जिसने अपनी आयु के 11 वर्ष पूर्ण कर लिए हो, सभी को परिभाषित किया गया है । इस कानून की धारा - 3 में वेश्यावृति बनाए रखने एवं परिसर को वेश्यागृह के रूप में प्रयोग करने की इजाजत देने पर दंडित करने । धारा 4 में वेश्यावृति के उपार्जन पर जीविका निर्वाह करने पर दंडित करने, धारा-3 में वेश्यावृति कराने के लिए व्यक्ति को लेने, उत्प्रेरित या उपाप्त करने पर दंडित, करने, धारा -6 में जहाँ वेश्यावृति चालू है उस व्यक्ति के परिसर में निरोध करने का प्रावधान किया गया है । धारा - 7 में लोक स्थान में या उसके आस पास वेश्यावृति (दो सौ मीटर) के भीतर होने पर 3 माह के कारावास से दंडित करने की अवस्था है । धारा -6 में वेश्यावृति के उद्देश्य के लिए साजिश या याचना दिक् या घूमता फिरता है, समीप रहने बालों या गुजरने बालों को कोई बाधा या

लोक शिष्टता के विरूद्ध होने पर प्रथम दोष सिद्ध होने पर 8 माह कारावास, पांच सौ रूपये जुर्माना पुनरावृति पर व साल के कारावास 500 रूपये जुर्माना से दंडित किया जाता है ।

धारा 9 में किसी व्यक्ति की अभिरक्षा करने के लिए बहकाने, सहायता करने या कारावास पर 7 वर्ष से कम नहीं तथा आजीवन कारावास व और 500 रूपये जुर्माना या दोनों का विधान है ।

धारा 10 क ऐसी दोषी नारी को जो धारा - 7 या 8 में दोषी पाई गई है को दंडित करने की बजाए उसके चरित्र, स्वास्थ्य की दशा, मानसिक स्थिति को ध्यान में रखकर न्यायालय उस महिला को सुधार संस्था में निरूल करने का आदेश देगा

अनुसूचित करने की व्यवस्था की गई है ।

धारा - 12 में वेश्यावृति में लिप्त अभ्यासिक अपराधियों से सदाचार की प्रतिभूति लेने की आवश्यकता को उन 1988 में निरसित कर दी गई है । सदाचार की इस व्यवस्था को 28 जनवरी 1987 से लागू किया गया है ।

धारा - 13 में विशेष पुलिस अधिकारी एवं सलाहकार निकाय के नियुक्ति एवं गठन करने का प्रावधान है । पुलिस अधिकारी निरीक्षक से नीचे पद का नहीं होगा तथा सलाहकार निकाय के गठन में जिला दण्डात्मक, पूर्व पुलिस एवं सैनिक अधिकारी तथा 5 अशासकीय सलाहकार समाज कल्याण दिमाग में से नारी कार्यकर्ता को लिया जाएगा । तथा राज्य सरकार लैंगिक शोषण के दुर्व्यापार के संरक्षण के लिए पदस्थापित करेगी ।

धारा - 14 में वेश्यावृति से सम्बन्धित अपराधों को संज्ञेय होना बताया गया है ।

धारा - 15 में बिना वारण्ट के तलाशी उस महिला की दो सम्मानित व्यक्तियों, जिनमें से एक महिला होगी के सामने पुलिस अधिकारी तलाशी लेगा ।

धारा - 16 में किसी व्यक्ति को वेश्यागृह से उप निरीक्षक से पद में कम न हो, द्वारा ही हटाया जा सकेगा ।

धारा - 14 में धारा - 15 में हटाए गए व्यक्ति तथा धारा -16 में छुडाए गए व्यक्तियों को माध्यान्तरक अभिरक्षा के लिए कोई भी निकटतम मजिस्ट्रेट के पास ले जायेगा ।

धारा - 15 (5) क में वेश्यागृह से पकड़े गए व्यक्ति की आयु अवधारित करने के लिए चिकित्सा परीक्षण रजिस्टर्ड चिकित्सा व्यवसायी से सन् 1986 के संशोधन में यह अंत स्थापित किया गया है।

धारा - 17क को सन् 1986 में जोड़ा गया था । इसमें धारा - 16 के अधीन छुडाए गए व्यक्ति को मजिस्ट्रेट उसके माता-पिता, संरक्षक, पति को सौंपने के लिए पहले उसके रखने की क्षमता एवं असलियत के बारे में उस व्यक्ति की मान्यता प्राप्त कल्याण संस्था या संगठन से अन्वेषण करायेगा । धारा - 16 में वेश्या गृहों को बंद करने तथा अपराधियों को परिसर से बेदखल करने की व्यवस्था की गई है । धारा - 19 में वेश्यावृति में लिप्त व्यक्ति को संरक्षण गृह में रखने या न्यायालय द्वारा संरक्षण एवं देखभाल उपबंधित करने के लिए आवेदन करने पर मजिस्ट्रेट किसी संरक्षण गृह, सुधार संस्था या मजिस्ट्रेट द्वारा निर्देशित व्यक्ति के पर्यवेक्षण में रखने का प्रावधान किया गया है ।

धारा - 20 में वेश्याओं को किसी स्थान से हटाने के बारे में मजिस्ट्रेट उस वेश्या को वहां से हटने का नोटिस देगा तथा जनहित में उस वेश्या को उस स्थान से हटाने या पुन: प्रवेशित करने पर प्रतिषेध लगा सकता है ।

धारा - 21 में संरक्षण गृह एवं सुधार-संस्थाओं को राज्य सरकार द्वारा स्थापित करने का प्रावधान किया गया है। धारा 21 क अभिलेख पेश करने के बारे में सन् 1986 में जोड़ी गई है ।

धारा - 22 में महानगर मजिस्ट्रेट या प्रथम वर्ग के न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा धारा - 3 से 8 तक वर्णित अपराध के लिए विचारण करने का प्रावधान किया गया है ।

धारा - 22 क में विशेष न्यायालय स्थापित करने तथा धारा - 22 क में विशेष न्यायालय स्थापित करने की केन्द्र सरकार को शक्ति दी गई है ।

धारा - 22 ख में न्यायालयों को ऐसे मामलों को संक्षिप्त विचारण की शक्ति प्रदान की गई है।

धारा - 23 में नियम बनाने की शक्ति, धारा - 24 में अल्पीकरण का नहीं होने का प्रावधान किया गया है ।

इस कानून में धारा - 11 (4), 15(5),16 से 20 एवं 22 ख महानगर मजिस्ट्रेट या न्यायिक इस कानून में धारा - 11 (4), 15 (5), 16 से 20 एवं 22 ख महानगर मजिस्ट्रेट या न्यायिक मजिस्ट्रेट या जिला/सब मजिस्ट्रेट को शक्तियाँ दी गई हैं तथा धारा 7 (1) में जिला मजिस्ट्रेट को शक्ति दी गई है । इसे प्रथम अनुसूची में रखा गया है ।

3.2.9 हेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961

यह कानून 20 मई, 1961 को संसद द्वारा दहेज लेने-देने पर प्रतिबंध लगाने के लिए जम्मू-कश्मीर के अलावा समस्त भारत में पारित किया गया था । इसमें कुल 10 धाराएं प्रवाहित की गई थीं । इस कानून में दहेज निषेध (संशोधन) अधिनियम जून, 1966 में बनाया गया था । इसी वर्ष में भारतीय दंड संहिता में धारा 113 क में किसी विवाहित स्त्री द्वारा आत्महत्या के दुष्प्रेक्षण के बारे में उप धारा करने का प्रावधान किया गया है । धारा 304 दहेज मृत्यु तथा भारतीय साक्ष्य अधिनियम में धारा 113 के दहेज मृत्यु की उपधारणा करने के बारे में नये प्रावधान रखे गये थे । इसमें दहेज में दिये जाने बाले सामान के संधारण के लिए एक सूची बनवाने के नियम बनाए गए हैं जिसे दहेज प्रतिबंध (दूल्हा व दुल्हन को दी जाने वाली भेंटों की सूची का रखरखाव) नियम 1985 में बनाए गए हैं । इस दहेज सूची पर दर वधू के साथ उसके माता पिता, बारातियों में सम्मानित व्यक्तियों के हस्ताक्षर करवाने आवश्यक है । दहेज की मांग करना भी क्रूरता में माना गया है । राजस्थान में दहेज कानून की समुचित पालना सुनिश्चित कराने के लिए राजस्थान दहेज प्रतिषेध नियम, 20अ में 14 नियम बनाए गए हैं । दहेज/ मेहर प्रतिषेध कानून को मुसलमानों पर लागू नहीं किया जा सकता है । यह कानून 2000 रूपये से अधिक मूल्य के उपहारों के आदान-प्रदान की अनुमति नहीं देता है । इसके उल्लंघन की दशा में 6 माह का कारावास अथवा 500 रूपये तक के अर्थदण्ड का प्रावधान है । कानून का उल्लंघन करने पर पुलिस स्वयं कार्रवाई नहीं कर सकती है । दहेज का अपराध विवाह होने के 7 वर्ष के बाद दहेज एवं दहेज-मृत्यु के आरोप से कानूनन मुक्ति मिलती है । विवाह होने के 1 वर्ष बाद दहेज के संबंध में कोई परिशद दायर नहीं किया जा सकता है । दहेज मृत्यु का वही अर्थ है जो भारतीय दंड संहिता की धारा - 498 क में किसी स्त्री के पति या पति के नातेदार द्वारा उसके प्रति क्रूरता करने पर दोषी व्यक्ति को 3 वर्ष का कारावास एवं जुर्माना से दण्डित करने का प्रावधान किया गया है । दहेज मृत्यु (धारा 304 ख) भारतीय दंड संहिता में कम से कम 7 वर्ष के लिए कारावास तथा जो बढ़ कर आजीवन कारावास तक हो सकेगी । इसे संज्ञेय एथ अजमानतीय प्रथम अनुसूची में बताया गया है । इसे सैशन न्यायालय द्वारा विचारण किया जाएगा । धारा - 498 क को भी अमानवीय अपराध

तथा प्रथम श्रेणी के न्यायिक मजिस्ट्रेट या महानगर मजिस्ट्रेट द्वारा विचारित करने की व्यवस्था की गई है ।

"दहेज में वही वस्तु या उपहार माना जाएगा जो विवाह में वर -वधू के माता-पिता रिश्तेदारों या अन्य व्यक्तियों द्वारा विवाह के पहले, दौरान तथा पश्चात कोई वस्तु प्रतिभूतियाँ या नकद या आभूषण उपहार स्वरूप दिया गया हो । यह सभी "दहेज में शामिल किया जाएगा । यह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष दी जाने बाली या देने के लिए के प्रतिज्ञा की गई किसी सम्पत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति से है । परन्तु इसमें मुस्लिम स्वीच विधि को अनुसार देय मेहर पर लाग नहीं होता हैं विवाह के विधिवत संपादन के बाद की गई दहेज की मांग परिभाषा में आयेगी ।

धारा- 3 में दहेज लेने या देने वाले या उकसाने वाले को कम से कम 5 वर्ष के कारावास और 15000 रू तक जुर्माने से अधिक नहीं होगा या दहेज के मूल्य की राशि जो भी अधिक हो से दंडनीय बनाया धारा -4 क दहेज मांगने बाले व्यक्ति को न्यूनतम 6 माह से 2 वर्ष के कारावास और 10000 रू. तक जुर्माना हो सकेगा, से दंडित किया जाएगा।

धारा - 4 क दहेज के संबंध में विज्ञापन करने पर पाबंदी लगाने का प्रावधान किया गया है । इसमें 6 के संबंध में विवाह के पक्षकारों द्वारा किया गया कोई लिखित या मौखिक करार को शून्य मानने का प्रावधान किया गया है ।

धारा - 6 में यह व्यवस्था की गई है कि दहेज को पत्नी और उसके उत्तराधिकारियों के लाभ के लिए माना गया है । यदि दहेज स्त्री के अलावा कोई अन्य व्यक्ति प्राप्त कर लेता है तो (क) यदि विवाह से पूर्व प्राप्त किया गया हो तो तीन माह के भीतर (ख) यदि दहेज विवाह के समय या बाद में प्राप्त हुआ है तो इसकी प्राप्ति की तारीख से 3 माह के भीतर या (ग) यदि विवाह या दहेज के समय बह स्त्री अवयस्क थी तो उनके बालिग होने की तिथि से तीन माह के भीतर ऐसे अंतरण तक उसे न्यास के रूप में स्त्री के लाभ के लिए धारण करेगा । यदि व्यक्ति यह सम्पत्ति/रकम / उपहार को सुपुर्द करने में असफल रहता है तो उसे 6 माह से कम नहीं लेकिन 2 वर्ष के कारावास या 1500 रु जुर्माना से दंडित किया जाएगा ।

यदि ऐसी स्त्री दहेज के प्राप्त करने से पूर्व मर जाती है तो उस स्त्री के वारिस हकदार होंगे, यदि संतान न हो तो उसके माता-पिता को दहेज राशि अंतरित होगी ।

धारा - 7 में दहेज अपराध का विचरण प्रथम वर्ग न्यायिक या महानगर मजिस्ट्रेट करेगा ।

धारा - 8 में अपराध संज्ञेय अजमानतीय तथा अशमनीय रखने की अवस्था की है ।

धारा - 8 क में प्रमाण भार तथा - 8 ख में दहेज प्रतिषेध अधिकारी च सलाहकार बोर्ड के गठन की व्यवस्था की गई है ।

धारा - 9 एवं 10 में केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकारों को नियम बनाने की शक्ति देने सम्बन्धी प्रावधान किया गया है ।

3.2.10 गर्भ का चिकित्सकीय समापन अधिनियम, 1971

यह अधिनियम जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय समस्त भारत के लिए संसद द्वारा 10 अगस्त, 1971 को पारित, स्वीकृत एवं प्रभावी किया गया था । इस कानून में 8 धाराएं संहिताबद्ध की गई हैं । इस कानून में सन् 2002 में संशोधन किया गया है जिस में धारा - 2 से 5 तक में पागल (लुनाटिक) की जगह मानसिक रूग्ण व्यक्ति' शब्द जोडा गया है। इस अधिनियम की सहायता के लिए गर्भ के

चिकित्सकीय समापन नियम, 1975 एवं 2003 में बनाए गए है तथा सन् 2003 में विनियम भी बनाए गए हैं । इस कानून की धारा - 2 में संरक्षक, मानसिक रुग्ण व्यक्ति, अवयस्क तथा पंजीकृत चिकित्सा व्यवसायी को परिभाषित किया गया है ।

धारा - 3 में रजिस्टर्ड चिकित्सा व्यवसायी द्वारा कब गर्भपात समापन किया जा सकेगा तथा उसे भारतीय दंड संहिता के प्रावधानों से दंडित नहीं किया जाएगा । 2 (क) यदि गर्भधारण का समय 12 सप्ताह से अधिक नहीं है, तो एक पंजीकृत चिकित्सा व्यवसायी द्वारा तथा (2) यदि गर्भधारण का समय 12 सप्ताह से अधिक परन्तु 20 सप्ताह से अधिक नहीं हुआ हो तो रजिस्टर्ड चिकित्सा व्यवसायियों द्वारा उसकी राय सद्भावना में यह राय है कि (1) गर्म धारण लगातार रखना उस गर्भवती स्त्री के जीवन को खतरा अन्तर्निहित है । या उसके शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य को गंभीर अति होने की संभावना है । तथा (2) यदि यह सारभूत जोखिम है कि यदि बच्चे ने जन्म ले लिया तो बह ऐसी शारीरिक या मानसिक असाधारणता से होगा जिसमें विकलांगता से भी ग्रस्त हो सकता है ।

यदि ऐसा गर्भाधान उस स्त्री के साथ बलात्कार के कारण ठहरा है या ऐसा गर्भधारण उस गर्भवती स्त्री के मानसिक स्वास्थ्य पर गंभीर क्षति पहुँचा सकता है ।

यदि ऐसे गर्भधारण को रोकने के लिए पति-पत्नी कोई उपाय अपनाते हों और बह असफल रहा हो, वे सीमित संख्या में बच्चे रखना चाहते हैं या कोई अवांछनीय गर्भधारण उस गर्भवती स्त्री के हो गया जो उस स्त्री के मानसिक स्वास्थ्य को गंभीर क्षति पहुँचाता हो,

(4) (क) यदि गर्भवती स्त्री जो अवयस्क हो या मानसिक रुग्णता से ग्रस्त हो तो उसके संरक्षक की लिखित में अनुमति लिए बिना कोई गर्भ समापन नहीं किया जाएगा ।

(ख) यदि वह स्त्री वयस्क है तो उसकी सहमति के बिना कोई गर्भ समापन नहीं किया जाएगा । धारा-5 स्थान जहाँ गर्म समापन किया जा सकेगा । गर्भवती स्त्री का गर्भ समापन किसी राज्य सरकार द्वारा स्थापित या संधारित चिकित्सालय में या जो चिकित्सालय राज्य सरकार की जिला स्तरीय समिति या सरकार द्वारा अनुमोदित होना चाहिए । उसी स्थान के चिकित्सालय में ही गर्भ समापन किया जा सकता है ।

धारा - 6 में धारा - 3 और धारा - 4 कब लाग नहीं है के बारे में प्रावधान किया गया है ।

(2) यदि गर्म का समापन करने वाले व्यक्ति रजिस्टर्ड चिकित्सा व्यवसायी नहीं हैं तो भारतीय दंड संहिता के प्रावधान के अनुसार कम से कम 2 वर्ष और अधिकतम 7 वर्ष के कारावास की सजा देने का प्रावधान ऐसे दोषी व्यक्ति पर किया गया है ।

(3) (4) ऐसा कोई चिकित्सालय स्थल का स्वामी जिसने राज्य सरकार समिति से अनुमोदन प्राप्त नहीं किया है और फिर भी गर्भ समापन करें तो उसे वही कम से कम 2 वर्ष और अधिकतम वर्ष के का कारावास की सजा देने का प्रावधान किया है ।

यहाँ स्वामी से तात्पर्य उस चिकित्सालय के प्रशासनिक प्रभारी से है । इसमें रजिस्टर्ड चिकित्सा अधिकारी जो महिला एवं प्रसूति रोग का अनुभव रखता है पर लागू नहीं होगा ।

धारा - 6 में केन्द्र सरकार को नियम बनाने की शक्ति का प्रावधान किया गया है । इसकी अनुपालना में सन् 1975 एवं 2003 में नियम जिनमें क्रमश: 9 एवं 10 संहिताबद्ध किए है ।

धारा - 7 में केन्द्र सरकार को विनियम बनाने की शक्ति दी गई है । इसलिए सन् 2003 से गर्भ समापन चिकित्सकीय विनिमय 2003 बनाए गए हैं इसमें 7 विनियम व्यवस्थित किए गए हैं ।

धारा - 8 में सद्भावना पूर्वक किए गए कार्यो को संरक्षण दिए जाने का प्रावधान किया गया है । विभिन्न नियमों में जिला स्तरीय समिति के गठन चिकित्सकों के अनुभव 3 वर्ष, प्रशिक्षण 8 माह अस्पताल स्थल के अनुमोदन, उसके निरीक्षण स्थल, अनुमोदन प्रमाण पत्र के निलम्बन या रद्दी करण करने, पुनर्विलोकन सहमति के प्रपत्रों, प्रवेश पंजिका, प्रमाणित राय, प्रपत्रों की अभिरक्षा प्रवेश पंजिका को खुला नहीं रखने, प्रविष्टियाँ करने आदि के बारे में नियम एवं कि नियम बनाए गए हैं ।

गर्भ का समापन उस स्त्री की इजाजत के बिना तथा किसी औचित्य के बिना किया जाता है तो उसे अपराध मानकर भारतीय दंड संहिता की धारा - 311 से 318 तक दंडित करने का विधान इस विशिष्ट कानून के अलावा किया गया है। यह भी महिलाओं से सम्बन्धी महत्वपूर्ण कानून संसद ने बनाया है।

3.2.11 व पूर्व - गर्भधारण एवं प्रसूति पूर्व निदान तकनीक (लिंग चयन का प्रतिषेध अधिनियम, 1994)

विवाह का उद्देश्य पति-पत्नी के सहवास को विधि मान्यता देने के साथ उनकी सन्तानोत्पति को भी संरक्षण प्रदान करना रहा है । आज महिलाओं को पुरूष सत्तात्मक समाज में उसी महिला को सम्मान के साथ देखा एवं व्यवहारित किया जाता है जो माँ बन गई हो । आज संतानों में भी भेदभाव किया जात रहा है । बालिका के स्थान पर बालक पैदा होने की चाहत समाज में एक विकृत बुराई हो गयी है । सामाजिक, धार्मिक एवं विधिक दृष्टि से बालक-बालिका में समानता पाई जाती है । आज शहरों में प्रसव पूर्व उपचार केन्द्र में भ्रूण के लिंग निर्धारण की जांच कराने की प्रवृति समाज में बढ़ रही है। इससे बाल हत्या, कन्या हत्या जैसे अपराधों को बढ़ावा मिल रहा है, यह प्रसव पूर्व तकनीक केन्द्र महिला भ्रूण हत्या के केन्द्र बनते जा रहे हैं । इस तकनीक के दुरूपयोग महिला लिंग के खिलाफ है और महिलाओं की गरिमा एवं प्रस्थिति को प्रभावित कर रहा है । महिलाओं के उत्थान एवं कल्याण करने बाले कई महिला संगठनों ने इस दुरूपयोग के खिलाफ मुख्य मुद्दे पर आवाज उठाई है । इन तकनीकों वाले कई महिला संगठनों ने इस दुरुपयोग के खिलाफ मुख्य मुद्दे पर आवाज उठाई है । इन तकनीकों के दुरूपयोग को रोकने के लिए दण्ड प्रावधान करने की व्यवस्था करने के लिए संसद में इस मुद्दे पर विचार विमर्श हुआ था । इसके लिए प्रसूति-पूर्व निदान तकनीक (विनिमय एंव दुरूपयोग निवारण) विधेयक 1991 में लोक सभा में पेश किया गया था । यह विधेयक संयुक्त प्रवर समिति ने दिसम्बर, 1992 में अपनी सिफारिशों के साथ रिपोर्ट की थी । राष्ट्रपति की स्वीकृति इस कानून पर 20 सितंबर 1994, को प्राप्त हुई थी । इस कानून की धारा - 3 में संशोधन 2002 में पारित होने से अब यह पूर्व गर्भधारण एवं प्रसूति पूर्व परीक्षण तकनीक (लिंग के चयन का प्रतिषेध) अधिनियम, 1994 कहलाता है । यह जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय सम्पूर्ण भारत के भागों में लाग किया गया था । इस कानून में कुल 8 पाठों में 34 धाराएं प्रवाहित की गई थी । सन् 1 99त में 19 नियम बनाए गए थे । इसमें गर्भधारण के 8 सप्ताह अर्थात 56 दिन तक डिम्ब अण्डा कहलाता है तथा 57 दिन के बाद से जन्म तक भ्रूण कहलाता है । इसमें परामर्श केन्द्र, आनुवांशिक उपचार केन्द्र, आनुवांशिक प्रयोगशाला, स्त्री रोग विशेषज्ञ, चिकित्सा संतति शास्त्री, बाल रोग विशेषज्ञ, पूर्व प्रसव तकनीक, पूर्व प्रसव उपचार जांच, लिंग चयन, विकिरण विशेषज्ञ, राज्य-मंडल, राज्य सरकार एवं रजिस्टर्ड चिकित्सा व्यवसायी विनियमन को धारा-2 में परिभाषित किया गया है ।

धारा - 3 में आनुवांशिक परामर्श केन्द्र, आनुवांशिक प्रयोगशाला ब आनुवांशिक क्लिनिक बनाने के सम्बन्ध में विनियमन किया गया है । इसमें केवल पंजीकृत प्रशिक्षित एवं योग्यता प्राप्त आनुवांशिक

विशेषज्ञ, बाल - रोग विशेषज्ञ या स्त्री रोग विशेषज्ञ पंजीबद्ध स्थान के अलावा मदद एवं संचालन नहीं करेगा ।

धारा - 4 में प्रसूति पूर्व तकनीकों का विनियमन किया गया है । क्रोमोसोमल अनियमितता, आनुवांशिक मेटाबोलिक डिर्सिस, हीमोग्लोबिन पोलियो, लिंग संबंधी बीमारी, कोनेजाइठल अनियमितता के सिवाय परीक्षण का प्रयोग नहीं किया जाएगा। गर्भवती स्त्री ३5 वर्ष से अधिक आयु की हो, स्त्री के दो या अधिक बार स्वत: गर्भपात होने पर, स्त्री के रक्त में रेडीमैंशन, संक्रमण रसायन के बारे बताया जाए, कोई भी मानसिक या शारीरिक बीमारी से आनुवांशिक बीमारी बताई जाए, कोई भी व्यक्ति गर्भवती महिला के पति या रिश्तेदार के अलावा किसी से परामर्श एवं प्रोत्साहन मिले तकनीक का उपयोग नहीं करेगा ।

धारा - 5 में गर्भवती महिला की लिखित सहमति तथा भ्रूण के लिंग के बारे में उसे संसूचित करने एवं प्रतिबंधित करने का प्रावधान किया गया है । भ्रूण के लिंग की जांच के बाद उस स्त्री, उसके रिश्तेदारों को शब्दों, संकेत या अन्य रीति से सूचित नहीं करने की व्यवस्था की गई है ।

धारा - 6 में अल्ट्रासोनोग्राफी भ्रूण के लिंग निर्धारण के लिए नहीं की जाएगी ।

धारा - 7 केन्द्रीय पर्यवेक्षक मंडल के गठन का प्रावधान किया गया है जो एक अध्यक्ष, एक उप सभापति, दो पदेन सदस्य तथा दस सदस्यों से मिल कर बनेगा । तथा धारा - 8 में सदस्यों के कार्य काल की अवधि 3 वर्ष निर्धारित की गई है। सदस्य के बीमार होने, त्याग पत्र, कर्तव्य में असमर्थता या अन्य आकस्मिक कारण से पद रिक्त होने पर नई नियुक्ति की जाएगी ।

धारा - 9 में मंडल की सभायें छः माह में कम से कम एक बार रखी जाएगी । मंडल में कोई पद रिक्त होने से कार्रवाई अवैध नहीं होगी, मंडल के अधिकारी, कर्मचारियों की नियुक्ति, मंडल के आदेशों का प्रमाणीकरण, सदस्यों की अयोग्यता, पुन: नियुक्ति के कार्यो के बारे में प्रावधान किए गये है । इसमें परामर्श केन्द्रों, प्रयोगशालाओं, क्लिनिक के संचालन एवं प्रयोग के लिए सक्षम अधिकारी के समक्ष आरंभ के पूर्व तिथि से 60 दिन में पंजीयन हेतु आवेदन करने का प्रावधान किया गया है । इसके बाद पंजीयन-प्रमाण पत्र देने, उसके निलम्बन एवं निरस्तीकरण के बारे में बताया गया है । आदेश के 30 दिन में अपील की अवस्था की है । प्रसूति-पूर्व लिंग निर्धारण से संबन्धित विज्ञापन पर रोक लगाने एवं उल्लंघन करने पर दंडित करने का प्रावधान किया गया है । इस कानून में अपराध को संज्ञेय अजमानतीय एवं राजीनामायोग्य नहीं बताया गया है तथा अपराधों का विचारण महानगर या न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम वर्ग द्वारा किया जाएगा । इसमें अभिलेख संचारित करने की व्यवस्था की गई है । इस में अभिलेख की तलाशी एवं जल करने की शक्ति दी गई है । सद्भावना में की गई कार्रवाईयों के संरक्षण करने के नियम व विनियम की शक्ति तथा इन नियमों एवं विनियमों को संसद के समक्ष पेश करने का प्रावधान किया है ताकि विधायन नहीं बनाए जा सके ।

3.3 सारांश

भारतीय संविधान की प्रस्तावना की प्रस्तावना मूलाधिकारों एवं नीति निर्देशक तत्वों के अन्तर्गत सामाजिक समस्याओं के निराकरण के लिए वितरितन्याय के सिद्धान्त लागू किया है । इसमें समाज की आर्थिक एवं सामाजिक समस्याओं का निवारण विशिष्ट कानून पारित करके किया गया है । मनुष्य कमी भी सामाजिक समस्याओं से पूर्णत: मुक्त नहीं रहा। समय के साथ-साथ सामाजिक समस्याएं

बदलती रहती है । उनका समाधान करने के लिए भारतीय संसद एवं राज्यों की विधानसभाओं ने कई विशिष्ट सामाजिक कानून पारित किये हैं । भारतीय संविधान की प्रस्तावना में सामाजिक आर्थिक एथ राजनीतिक न्याय को अवधारणा को व्यक्त किया गया है ।

सामाजिक समस्याओं के उन्मूलन हेतु महिलाओं के भले के लिए जो भी विशिष्ट कानून संसद एवं राज्य सरकारों ने बनाए है । उन सभी अधिनियमों के बारे में समस्त जानकारी प्रदान की गई है।

3.4 शब्दावली

1 उन्मूलन -	किसी समस्या या कठिनाई, रोग को समूल रूप से नष्ट करने के लिए कारगर उपायों का सहारा लेना ।
2 मूलाधिकार -	भारतीय संविधान के भाग-तीन में वर्णित किए गए मौलिक अधिकारों से है जो मनुष्य के अस्तित्व के लिए जीवन में प्राकृतिक रूप से जरूरी हों ।
3 घरेलू हिंसा -	ऐसे अशोभनीय कृत्य जिनका सहारा परिवार के भीतर अशांति, अनादर, अपमान, प्रहार, क्रूरता आदि से है ।
4 व्यथित व्यक्ति -	पीडित या दुखी व्यक्ति से है ।
5 अवरोध -	निग्रह, रोक या पाबंदी लगाने का कार्य
6 समापन -	गर्भ निकलवाने को उच्चारित किया है
7 प्रतिषेध -	कोई भी कार्रवाई जिससे किसी कार्य को करने से इंकार किया जाता है ।
8 भ्रूण हत्या -	सप्ताह के बाद से जन्म होने के पूर्व बालक / बालिका की हत्या
9 अस्पृश्यता -	इसे छुआछूत के नाम से जानते हैं अर्थात जाति, व्यक्ति या वर्ग को नहीं छूने से है ।
10 संज्ञेय -	किसी अपराध में बिना वारण्ट या न्यायालय के आदेश के कार्रवाई
11 अजमानतीय -	ऐसे अपराध जिसमें आरोपी की जमानत नहीं ली जा सकती हो
12 अशमनीय -	ऐसे अपराध का मामला जिसमें पक्षकारों में राजीनामा नहीं हो सकता हो
13 लैंगिक हिंसा -	संभोग स्थापित करने के आशय से की गई हिंसा
14 सेवा प्रदाता -	जो किसी व्यक्ति को सेवा करने में सहायता करने में सहायता करने वाला व्यक्ति/संस्था
15 संरक्षण अधिकारी -	घरेलू हिंसा में नियुक्त /निरीक्षक के अनिम्न व्यक्ति
16 अभिरक्षा -	किसी अल्प वयस्क के शरीर एवं सम्पत्ति की रक्षा
17 माध्यान्तरिक अभिरक्षा -	जब कोई दो सक्षम अधिकारी उपस्थित नहीं होने पर, बीच में ही निकटतम से अभिरक्षा लेना
18 न्यायिक दण्डाधिकारी -	जो दण्ड प्रक्रिया संहिता के अधीन विशुद्धत: न्यायिक मामलों को सुनने बाला जो दण्डाधिकारी सेवा से हो
19 कार्यपालिका -	जो दण्ड प्रक्रिया के अधीन बह अधिकारी जो राज्य या केन्द्र की प्रशासनिक सेवा से हो, उसे दण्डित अधिकार देने पर कार्यपालक कहलाता है ।
20 इस्तगासा -	इसे परिवाद पक्ष, शिकायत-पत्र भी कहते हैं। यह न्यायालय में लिखित में पेश किया जाता है ।
21 गर्भपात -	गर्भ गिरवाने को गर्भपात कहते हैं

22 गर्भधारण - संतान पेट में लगने को गर्भधारण कहते हैं

23 गर्म समापन - गर्भ को पेट से स्वैच्छिक रूप से बीमारी पर जीवन संकट में होने पर उस गर्भवती स्त्री की सहमति से गर्भ-समाप्त करवाना

3.5 सन्दर्भ ग्रंथ

1 विविध आपराधिक कानून: डा एस.के. अवस्थी, इंदौर ला प्रकाशन, इंदौर।

2 विविध अपराध अधिनियम - संजय चराटे (द्विभाषी) वाधवा एण्ड कम्पनी, इन्दौर

3 हिन्दू विधि - के. पी. शर्मा, ईस्टर्न बुक कम्पनी, लखनऊ

4 भारतीय सामाजिक अवस्था - प्रो. राम आस्था, रावत पब्लिकेशन्स, सेक्टर - 3 जवाहर नगर, जयपुर

5 श्रम एवं ओद्यौगिक विधि - डा. गंगा सहाय शर्मा यूनिवर्सिटी बुक हाउस प्रा. लि., 70 चौड़ा रास्ता, जयपुर

6 सेन्ट्रल क्रिमिनल माइनर एक्ट्स प्रकाशन - रमेश खेरा, 2000, प्रथम संस्कार व एलाइड, बुक कम्पनी दिल्ली - 54

7 भारतीय महिलाएँ - दशा एवं दिशा - लेखन सुभाष शर्मा, भारतीय प्रशासनिक सेवा शताब्दी प्रकाशन, आशियाना नगर, पटना - 800025

3. बोध प्रश्न

1 भारत में सामाजिक समस्याओं से आप क्या समझते हैं? आप इनमें कौन-कौन सी समस्याएं शामिल कर सकते हैं?

2 घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण कानून में विभिन्न प्रकार की हिंसा. को बताइए ।

3 घरेलू हिंसा से कथित व्यक्ति को क्या-क्या अधिकार प्रदत्त किए गये है? उन पर प्रकाश डालिए।

4 वेश्यावृति के मामलों में मध्यांतरित अभिरक्षा को समझाइए ।

5 हिन्दू विधवा पुन: विवाह पर अपने विचार प्रस्तुत कीजिए ।

6 शारदा अधिनियम के बारे में समझाइए ।

7 अनैतिक व्यापार निवारण कानून के मुख्य-मुख्य प्रावधानों पर प्रकाश डालिए ।

8 दहेज प्रतिषेध कानून के साथ अन्य सम्बन्धित कानूनों के प्रावधानों को स्पष्ट उजागर कीजिए।

9 गर्भ के चिकित्सकीय समापन कानून के बारे में समझाइए ।

10 कन्या हत्या, एवं कमा! भ्रूण हत्या को रोकने के लिए बनाए गए कानून के मुख्य-मुख्य तत्व समझाइए ।

11 सती निवारण कानून से सम्बन्धित प्रावधान वर्णित कीजिए ।

12 भारत मे सामाजिक समस्याओं के उन्मूलन हेतु पारित किए गए महिलाओं के विशिष्ट कानूनों के बारे में विवेचना कीजिए ।

13 भारत में घरेलू हिंसा से महिलाओं को संरक्षण के बारे में पारित किये गए कानून के मुख्य प्रावधानों पर प्रकाश डालिए।

14 भारत में गर्भपात एवं गर्भधारण गर्भ समापन से सम्बन्धित कानूनों में वर्णित मुख्य बातों को बताइए।

15 सती एवं दहेज निवारण के लिए बनाए गए अधिनियमों में वर्णित मुख्य-मुख्य प्रावधानों पर अपने विचार बताइए।

इकाई - 4

सामाजिक समस्याओं के प्रति राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका

4.2.1 स्वरूप एवं प्रकृति

4.2.2 अपेक्षाएं एवं संभावनाएं

4.2.3 प्रवर्तनकारी भूमिका में अवरोध

4.3 प्रवर्तनकारी भूमिका की समीक्षा के आधार

4.3.1 सामाजिक सोच एवं संवेदना तथा राजनैतिक चेतना

4.3.2 विधायिनी प्रयास

4.3.3 संस्थागत स्वरूप

4.3.4 अधिकार, शक्तियाँ एवं दायित्व

4.3.5 स्थायी एवं आधारभूत व्यवस्थाओं की स्थापना

4.3.6 नियंत्रण, पर्यवेक्षण एवं नेतृत्व

4.4 प्रवर्तनकारी भूमिका का के सामयिक स्वरुप

4.4.1 संतोषजनक प्रवर्तनकारी भूमिका के समर्थन के आधार

4.4.2 असंतोषजनक प्रवर्तनकारी भूमिका के आधार

4.5 राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका में सुधार आधार एवं अपेक्षा

4.5.1 सामाजिक समस्याओं के कारणों की समीक्षा

4.5.2 सामाजिक एवं सार्वजनिक चेतना का विकास

4.5.3 स्वैच्छिक एवं सामाजिक संगठनों की भूमिका

4.5.4 कानूनों का निर्माण

4.5.5 प्रवर्तनकारी इकाइयों की स्थापना

4.5.6 सामाजिक, राजनैतिक एक् प्रशासकीय नेतृत्व

4.6 सारांश

4.7 शब्दाबली

4.8 बोध प्रश्न

4.0 उद्देश्य

इस इकाई अध्ययन पश्चात आप -

i. सामाजिक समस्याओं के प्रति राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका को समग्र रूप से समझ सकेंगे।

ii. राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका के सरूप एवं प्रवृति की समीक्षा कर सकेंगे ।

iii. राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका के सम्बन्ध में प्रचलित अपेक्षाओं एवं सम्भावनाओं का विश्लेषण करने में सक्षम हो जायेंगे ।
iv. सामाजिक समस्याओं के निराकरण में राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका के निर्वाह में उपस्थित हो रहे अवरोधों के बारे में जानकारी हासिल कर पायेंगे ।
v. सामाजिक समस्याओं के निराकरण में राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका के विश्लेषण एवं समीक्षा के विविध आधारों का निरूपण करने में सक्षम होंगे ।
vi. राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका के संतोषजनक एवं असंतोषजनक पहलुओं की समीक्षा कर पायेंगे।
vii. राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका को मजबूत बनाने बाले कारकों का विश्लेषण कर सकेंगे ।

4.0 प्रस्तावना

प्रत्येक समाज की अपनी अलग-अलग किस्म की समस्याएं होती हैं । इन समस्याओं के मूल में अनेक कारण मौजूद रहते हैं । इन्हीं कारणों की प्रकृति के अनुरूप सामाजिक समस्याओं का स्वरूप निर्धारित होता है । जिन समस्याओं के मूल में सामाजिक कारण मौजूद रहते हैं उन्हें सामाजिक समस्याओं के रूप में पहचाना जाता है । इन समस्याओं के जन्म, आविर्भाव एवं प्रचलन के पीछे कोई न कोई सामाजिक परम्परा, प्रथा एवं रूढ़ी मौजूद रहती है । यही कारण है कि प्रत्येक सामाजिक समस्या के पीछे प्रकारान्तर में किसी न किसी प्रकार की सामाजिक स्वीकारोक्ति मौजूद रहती हैं। यही वजह है कि सामाजिक समस्याओं से समाज स्वाभाविक तौर पर ग्रस्त भी रहते हैं एवं सामाजिक समस्याओं के निराकरण के लिए किए जा रहे प्रयासों को अनेक प्रकार के अवरोधों का सामना भी करना होता है ।

यदि कोई समाज लम्बी अवधि तक सामाजिक समस्याओं से जकड़ा रहता है तो ऐसा समाज एक प्रकार की जडता एवं पिछडेपन से ग्रस्त हो जाता है । अत: जरूरी है कि समाज को इस प्रकार की समस्याओं से मुक्त करवाने के प्रयास सभी स्तरों पर निरन्तर जारी रहें । सामाजिक समस्याओं के निराकरण में आम नागरिक की भूमिका एव दायित्व को महत्वपूर्ण माना गया है । इसी प्रकार सामाजिक एवं स्वैच्छिक संगठनों की भूमिका को भी इस सन्दर्भ में महत्वपूर्ण माना जाता है । चूंकि सामाजिक समस्याओं की पृष्ठभूमि में सामाजिक कारण मौजूद रहते हैं अत: समाज की अपनी भूमिका भी इन समस्याओं के निराकरण में अति महत्वपूर्ण मानी जाती है । सामाजिक नेतृत्व इस प्रकार की भूमिका के निर्वाह में पहल करता है तथा इस भूमिका के स्वरूप एवं क्रियान्वयन पहलुओं को निर्धारित करता है । आम तौर पर यह देखा गया है कि सामाजिक समस्याएं कभी-कभी ऐसा विकट एवं विकराल स्वरूप ग्रहण कर लेती हैं जिसकी वजह से व्यक्ति, समाज, सामाजिक संगठन एवं सामाजिक नेतृत्व इन समस्याओं से निपटने में राज्य की पहल एवं भूमिका की अपेक्षा रखते हैं। सामाजिक समस्याओं के निराकरण में राज्य अपनी भूमिका का निर्वाह दो स्तरों पर करता है । पहले स्तर की भूमिका को नियामक भूमिका के रूप में जाना जाता है । तथा दूसरे स्तर की भूमिका को प्रवर्तनकारी भूमिका के रूप में पहचाना जाता है । राज्य की नियामक भूमिका मूलरूप से नीति निर्धारण करने बाली एवं योजना निर्माण से सम्बन्ध रखती है। इसी प्रकार सामाजिक समस्याओं के निराकरण के लिए राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका मूल रूप से कानूनों के क्रियान्वयन एवं उन्हें लागू करने से संबंध रखती है ।

4.2 राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका

सामाजिक समस्याओं के निराकरण में राज्य के लिए यह जरूरी है कि वह किसी न किसी प्रकार की प्रवर्तनकारी भूमिका का निर्वाह करे । प्रवर्तनकारी भूमिका के निर्धारण एवं क्रियान्वयन से पूर्व राज्य को नियामक मानदण्डों एवं नीतियों का निर्धारण करना होता है । इन्हीं मानदण्डों एवं नीतियों के अनुसरण में राज्य अपनी प्रवर्तनकारी भूमिका के स्वरूप एवं प्रकृति को निर्धारित करते हैं । जैसा कि पूर्व में कहा गया है कि सामाजिक समस्याओं के प्रचलन एवं मौजूदगी के पीछे समाज के कुछ वर्गों एवं समूहों की सहमति एवं स्वीकारोक्ति होती है तथा यह समूह नहीं चाहते कि राज्य इन समस्याओं के निराकरण में पहल करे एवं सक्रिय भूमिका का निर्वाह करे । इन स्थितियों में यदि राज्य सामाजिक सोच की अवहेलना कर इन समस्याओं के निराकरण के लिए कोई कार्य योजनाएं बनायेंगे तो उन्हें न सिर्फ हस्तक्षेप की संज्ञा दी जाएगी अपितु राज्य को सार्वजनिक तौर पर अपनी भूमिका के सम्बन्ध में विरोध का भी सामना करना पडेगा ।

4.2.1 राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका. स्वरूप एवं प्रकृति

सामाजिक समस्याओं के निराकरण में राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका का स्वरूप क्या हो? तथा उसकी प्रकृति कैसी हो? इसका निर्धारण करने से ही प्रस्तावित भूमिका को सफल बनाया जा सकता है । राज्य की इस भूमिका का स्वरूप एवं प्रकृति अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग प्रकार की होना स्वाभाविक है क्योंकि प्रत्येक समाज के संस्कार, संस्कृति, रीति-रिवाज, प्रथाएं एवं परम्पराएं अलग-अलग किस्म की होती हैं एवं सम्बंधित समाज की सामाजिक समस्याओं का सरूप मी इन बिन्दुओं के आधार पर निर्धारित होता है । इसी प्रकार प्रत्येक समाज में सामाजिक समस्याओं के प्रति सोच एवं चिन्तन के साथ-साथ उनके निराकरण के लिए निर्वाह की जा रही सक्रियता के प्रति चेतना भी अलग-अलग किस्म की होती है । अत: यह जरूरी है कि राज्य इन समस्याओं के निराकरण के लिए अपनी भूमिका के स्वरूप एवं प्रकृति का निर्धारण करने से पूर्व उपर्युक्त स्थितियों की समग्र तौर पर समीक्षा करे । राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका का स्वरूप सीमित, आंशिक, व्यापक एवं संयुक्त प्रकार का हो सकता है । सीमित स्वरूप की भूमिका के अन्तर्गत राज्य को सामाजिक समस्याओं के निराकरण में अपनी सीमाओं का निर्धारण करना होता है तथा इन सीमाओं से बाहर जाकर कार्य करने की स्थिति को सही नहीं माना जाता । इसी प्रकार आंशिक भूमिका के अन्तर्गत एक विशिष्ट प्रकार की भूमिका का निर्धारण किया जाता है । राज्य की व्यापक भूमिका के अन्तर्गत राज्य की पहल एवं कार्यकारी भूमिका पर्याप्त तौर पर सर्वग्राही होती है तथा इस भूमिका के निर्वाह में किसी प्रकार की कोई सीमा का निर्धारण नहीं किया जाता है । सम्बन्धित समस्या के निराकरण के सम्बन्ध में जन-जागृत से लेकर कानून निर्माण एवं उनके प्रभावी क्रियान्वयन के साथ ही दोषी व्यक्तियों के खिलाफ कठोर कानूनी कार्यवाही की जाने की कार्य योजनाओं का निर्माण किया जाता है । सामाजिक समस्याओं के निराकरण में राज्य की संयुक्त भूमिका के अन्तर्गत राज्य एवं समाज की विविध इकाइयों के बीच में सहभागिता, भागीदारी एवं साझेदारी की स्थिति बनी रहती है । इस भूमिका के अन्तर्गत कुछ दायित्वों का निर्वाह समाज को करना होता है तथा कुछ दायित्व समाज की विभिन्न इकाइयों द्वारा निभाये जाते हैं । भूमिका के अन्तर्गत राज्य एवं समाज द्वारा एक दूसरे को सहयोग प्रदान किया जाकर पारस्परिक भूमिकाओं को सफल बनाने के प्रयास किये जाते हैं । सामाजिक समस्याओं के निराकरण में राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका की प्रकृति

कुछ समाजों में आक्रामक होती है जबकि अन्य समाजों में उसकी प्रकृति समन्वयात्मक स्वरूप लिए होती है । आक्रामक भूमिका के अन्तर्गत कठोर कानून बनाए जाते हैं तथा उन कानूनों का क्रियान्वयन भी सख्ती से किया जाकर दोषी व्यक्तियों के खिलाफ तत्काल, त्वरित एवं प्रभावी कार्यवाही अमल में लायी जाती है । समन्वयात्मक एवं सहयोगात्मक प्रकृति की भूमिकाओं के अन्तर्गत राज्य सामाजिक समस्याओं के निराकरण के लिए एक वातावरण का निर्माण करते हैं तथा जो संगठन एवं इकाइयाँ इन समस्याओं के निराकरण में पहल करती हैं उनको वांछित सहयोग प्रदान करते हैं ।

4.2.2 अपेक्षाएं एवं सम्भावनाएं

सामाजिक समस्याओं के निराकरण में राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका के सम्बन्ध में समाज के विभिन्न वर्गों में अलग-अलग प्रकार की अपेक्षाएं मौजूद रहती हैं । समाज के प्रगतिशील वर्ग यह चाहते हैं कि इन समस्याओं का प्रभावी तौर पर निराकरण किया जाए एवं राज्य इस सम्बन्ध में प्रवर्तनकारी भूमिका को मजबूत एवं प्रभावी बनाए । दूसरी ओर समाज के पिछडे एवं रूढ़िवादी वर्ग यह महसूस करते हैं कि राज्य उनके सामाजिक क्रिया कलापों, परम्पराओं एवं प्रथाओं में अनावश्यक हस्तक्षेप नहीं करें । इन सामाजिक वर्गों की ओर से राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका के अन्तर्गत किए जा रहे कार्यों के प्रति विरोध की स्थितियाँ, पैदा की जाती है । इस प्रकार समाज में सामाजिक समस्याओं के निराकरण में राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका के संबंध में आमतौर पर विसंगतिपूर्ण एवं विरोधाभासी स्थितियाँ भी मौजूद रहती है । जब तक व्यक्ति विशेष के स्वयं के हित एवं सिर्फ राज्य पूर्ति सामाजिक कुरीति एवं कुप्रथा की वजह से होती रहती है तब तक व्यक्ति विशेष यह नहीं चाहता कि राज्य किसी प्रकार का हस्तक्षेप करे । उदाहरण के लिए किसी भी समाज में बाल-विवाह, दहेज, बाल-श्रम एवं मृत्युभोज के सबब में इस प्रकार की विसंगतिपूर्ण एव विरोधाभासी स्थितियाँ समाज में आम तौर पर देखी जा सकती हैं । संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि सामाजिक समस्याओं के निराकरण में राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका के सम्बन्ध में समाज में एक-दूसरे के प्रतिकूल विचारधाराओं का प्रचलन मौजूद रहता है । अन्ततोगत्वा राज्य को समग्र स्थिति की संतुलित समीक्षा कर निर्णय लेना होता है तथा उसी के अनुरूप अपनी प्रवर्तनकारी भूमिका का निर्धारण करना होता है । सामाजिक समस्याओं के प्रति राज्य अपनी प्रवर्तनकारी भूमिका का निर्वाह कब, कैसे ब किस सीमा तक करे जैसी स्थितियाँ भी अलग-अलग समाजों में अलग-अलग प्रकार की होती हैं । समाज की जो भी स्थिति एवं सोच हो इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि सामाजिक समस्याओं के निराकरण में राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका के निर्वाह की संभावना किसी न किसी रूप में बनी रहती है । चूंकि राज्य एक संपूर्ण प्रभुता सम्पन्न इकाई है, अत: राज्य स्वेच्छा से अपनी किसी भी प्रकार की भूमिका पर सीमा का निर्धारण कर सकते हैं । चूंकि राज्य समाज में संघर्ष की स्थिति पैदा कर अपनी किसी भी प्रकार की भूमिका का निर्वाह लम्बी अवधि तक नहीं कर सकते, अत: उन्हें किसी प्रकार की प्रस्तावित भूमिका की सफलता की क्या संभावना है, इसका निर्धारण भी समुचित तौर पर कर लेना चाहिए । राज्य समाज के विविध अंगों एवं संगठनों को अपनी-अपनी भूमिकाओं का निर्वाह करने दे, ऐसी अपेक्षा सार्वजनिक तौर पर रखी जाती है । इसी अपेक्षा के अन्तर्गत राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका की संभावना के स्वरूप एवं प्रकृति का निर्धारण किए जाने से ही यह भूमिका जन स्वीकारोक्ति प्राप्त कर सकेगी तथा समाज भी अपने निर्धारित दायित्वों का निर्वाह कर सकेगें।

4.2.3 राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका में अवरोध

सामाजिक समस्याओं के निराकरण में राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका के सकल एवं सफल निर्वाह में अनेक प्रकार के अवरोध उपस्थित होते रहते हैं । अशिक्षा, अज्ञान, गरीबी एवं पिछडापन कुछ ऐसी स्थितियाँ हैं जिनकी वजह से राज्य समाज में व्याप्त समस्याओं को दूर करने में अवरोध महसूस करते हैं । जिन समाजों में अशिक्षा, अज्ञान, गरीबी एवं पिछड़ेपन की स्थितियाँ विद्‌यमान रहती हैं यहाँ न सिर्फ सामाजिक समस्याएँ जल्दी पनपती हैं बल्कि ये समस्याएँ अपनी जडें गहरे तक जमा लेती हैं एवं राज्य जब भी इन समस्याओं के निराकरण के लिए अपनी प्रवर्तनकारी भूमिका के अन्तर्गत कार्य करते हैं उन्हें अनेक प्रकार के अवरोधों का सामना करना पडता है । अत: जरूरी है कि प्रवर्तनकारी भूमिका के निर्धारण एवं उसे कार्य रूप में परिवर्तित करने से पूर्व राज्य समाज में बाल अशिक्षा, अज्ञान, गरीबी एवं पिछड़ेपन की स्थितियों को दूर करे । ऐसा होने पर सामाजिक समस्याओं के जन्म, आविर्भाव एव प्रचलन में भी कमी आयेगी तथा इन समस्याओं से निपटने के लिए राज्य अपनी प्रवर्तनकारी भूमिका का निर्वाह भी सहजतापूर्वक कर सकेगें । इसके साथ ही राज्य को अपनी प्रवर्तनकारी भूमिका के अवरोधों को दूर करने के लिए इन अवरोधों की प्रकृति, स्वरूप एवं कारणों की समय-समय पर समीक्षा करनी चाहिए तथा उपलब्ध सुझावों एवं निष्कर्षों के अनुरूप चहुँमुखी योजनाओं को अमल में लाकर इन अवरोधों को दूर करने का प्रयास करना चाहिए ।

4.3 प्रवर्तन की भूमिका की समीक्षा के आधार

सामाजिक समस्याओं के प्रति राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका की समीक्षा समय-समय पर समाज के विभिन्न वर्गों द्‌वारा की जाती है । प्रस्तावित समीक्षा के कुछ महत्वपूर्ण आधार होते हैं । इन आधारों पर यह निश्चित किया जाता है कि राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका का गुणात्मक स्वरूप एवं उसका समग्र प्रभाव कैसा है । यदि राज्य विशेष अपनी प्रवर्तनकारी भूमिका के निर्धारण के दौरान इन बुनियादी आधारों का ध्यान रखें तो यह भूमिका सही सटीक एवं प्रभावी हो सकती है। यदि इन आधारों की अवहेलना की जायेगी तो न सिर्फ राज्य प्रवर्तनकारी भूमिका अकुशल एवं असक्षम बनी रहेगी अपितु उसके वांछित परिणाम भी प्राप्त नहीं हो सकेंगे और राज्य अपने निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने में सफल नहीं हो सकेंगे। परिणामस्वरूप सामाजिक समस्याओं के निराकरण के लिए निर्धारित की जाने वाली प्रवर्तनकारी भूमिका तो असफल रहेगी ही समाज में समस्याएं भी जस की तस बनी रहेंगी । अत: जरूरी है कि सामाजिक समस्याओं के निराकरण के संबंध में राज्य द्‌वारा अपनायी जाने वाली प्रवर्तनकारी भूमिका के कुछ महत्वपूर्ण आधारों की समीक्षा की जाए ।

4.3.1 सामाजिक सोच एवं संवेदना तथा राजनैतिक चेतना

सामाजिक समस्याओं के निराकरण में समाज का सहयोग होना नितान्त आवश्यक है । यदि सामाजिक सोच व चेतना पिछडेपन से ग्रस्त है तो राज्य द्‌वारा किये जा रहे प्रयास समाज को स्वीकार नहीं होंगे एवं सामाजिक सहयोग के अभाव में राज्य के प्रस्तावित प्रयास सफल एवं लक्ष्योन्मुखी नहीं बन पायेंगे । सामाजिक सोच एवं संवेदना को सही सरूप एवं दिशा देने के लिए राज्य को समाज में बाल समस्याओं के प्रति जागरूकता पैदा करने के प्रयास करने चाहिए। अशिक्षा अज्ञान, गरीबी एवं पिछड़ेपन को दूर किया जाकर सामाजिक सोच एवं संवेदना को सही दिशा प्रदान की जा सकती है । सामाजिक सोच एवं संवेदना का सही सरूप जहाँ सामाजिक समस्याओं को सही संदर्भों में समझ कर

उनके निराकरण की पहल को सफल बनायेगा, बहीं राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका को भी सफलता की ओर उज़ख करेगा। संवेदनशील एवं जाग्रत समाज में उपलब्ध राजनैतिक चेतना का स्वरूप भी प्रगतिशील होता है और यह राजनैतिक चेतना सामाजिक समस्याओं के निराकरण में अहम भूमिका का निर्वाह करती है। इस प्रकार सामाजिक समस्याओं के प्रति राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका के बुनियादी आधार के रूप में सामाजिक सोच एवं संवेदना के स्वरूप एवं राजनैतिक चेतना को सही दिशा प्रदान करना जरूरी होता है।

4.3.2 विधायिनी प्रयास

किसी भी प्रजातांत्रिक समाज में जन-प्रतिनिधियों की भूमिका सभी क्षेत्रों में महत्वपूर्ण मानी जाती है। सामाजिक समस्याओं से समाज को मुक्त करने में भी यह भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण होती है। समाज में अशिक्षा अज्ञान, गरीबी एवं पिछडेपन की स्थितियाँ किस तरह से कम की जाएं इस संबंध में विधायिनी प्रयास महत्वपूर्ण होते हैं। समाज में सही चेतना का विकास करने एवं सामाजिक कुरीतियों के प्रति सकारात्मक संवेदनशीलता पैदा करने में भी जन प्रतिनिधि अहम भूमिका का निर्वाह कर सकते हैं। इस प्रकार की प्रारम्भिक कार्यवाहियाँ सामाजिक समस्याओं के निराकरण के सन्दर्भ में एक मजबूत पृष्ठ भूमि का निर्माण करती हैं। इन प्रयासों के माध्यम से यदि सामाजिक समस्याओं का निराकरण संभव नहीं हो तो उच्च स्तरीय विधायिनी प्रयास करने होते हैं। इन प्रयासों के अन्तर्गत विधानसभा एवं लोकसभा में सामाजिक समस्याओं से जुड़े हु ए मुद्दों के बारे में चर्चा करना एवं समस्याओं का निराकरण कैसे किया जाए इसके बारे मे विचार किया जाता है। इन प्रयत्नों के आधार पर व्यक्ति प्रकार के कार्यक्रमों का निर्धारण किया जाकर समाज को समस्याओं से मुक्त करने के प्रयास किये जाते हैं। यदि इन तमाम विधायिनी प्रयासों के बावजूद भी समाज में समस्याएँ बनी रहती हैं तो विधानसभा एवं लोकसभा के माध्यम से कानूनों, नियमों एवं अधिनियमों का निर्माण करवाया जाता है। सामाजिक समस्याओं के निराकरण में इस प्रकार के कानून कारगर सिद्ध होते हैं तथा दोषी व्यक्तियों के खिलाफ प्रभावी कानूनी कार्यवाही अमल में लाना सम्भव होता है। किसी भी समाज में राजनैतिक चेतना का स्वरूप क्या है तथा उस समाज के जन-प्रतिनिधि किस प्रकार के विधायिनी प्रयास कर समाज को समस्याओं से मुक्ति दिलाने के लिए क्या प्रयास कर रहे हैं? जैसी स्थितियाँ राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका की समीक्षा के महत्वपूर्ण आधार माने जाते हैं।

4.3.3. संस्थागत स्वरूप

सामाजिक समस्याओं के निराकरण के लिए बनाये गये कानून तभी कारगर एवं प्रभावी होंगे जब उन्हें लागू करने के लिये सही प्रकार के संस्थागत स्वरूपों का निर्धारण किया जाये गा। आमतौर पर देखा गया है कि समाज में कानून तो बना दिये जाते हैं परन्तु कानूनी प्रावधानों के अनुरूप दोषी व्यक्तियों के खिलाफ कार्यवाही नहीं हो पाती है क्यों कि सम्बन्धित कानूनों के क्रियान्वयन के लिए जिस तरह की संस्थागत व्यवस्थाएं होनी चाहिए बो उपलब्ध नहीं होती हैं। फलस्वरूप कानून निष्क्रिय एवं निष्प्रभावी बने रहते हैं एवं सामाजिक समस्याएं जैसी की तैसी बनी रहती हैं। यह सही है कि मात्र कानून बना देने से सामाजिक समस्याएं स्वत: ही समाज नहीं हो जाती हैं। उन कानूनों को लाग करने के लिए उपयुक्त संस्थाओं एवं व्यवस्थाओं को लागू करना जरूरी होता है। इस प्रकार राज्य की

प्रवर्तनकारी भूमिका की सटीक समीक्षा इस भूमिका के निर्वाह के लिए स्थापित संस्थागत स्वरूपों के प्रभाव के आधार पर की जा सकती है ।

4.3.4 अधिकार, शक्तियाँ एवं दायित्व

सामाजिक समस्याओं के निराकरण के लिए जहाँ कानून बनाये जाने जरूरी हैं, वही उन्हें लागू करने के लिए समुचित संस्थाओं एवं व्यवस्थाओं की स्थापना किया जाना भी आवश्यक माना जाता है । इसी क्रम में संबंधित संस्थाओं, अधिकारियों एवं कार्मिक वर्ग को प्रदत्त कानूनों को लागू करने के लिए समुचित अधिकार एवं शक्तियाँ भी प्रदान करनी होती हैं तथा उनके दायित्वों का स्पष्ट निर्धारण भी करना होता है । यदि सम्बन्धित अधिकारियों एवं संस्थाओं को समुचित अधिकार एवं शक्तियाँ प्रदान नहीं की जायेंगी तो वे अपने दायित्वों का निर्वाह प्रभावी तरीके से नहीं कर पायेंगे । प्रासंगिक अधिकार एवं कर्तव्यों के निर्धारण में इस बात का समुचित ध्यान रखा जाना आवश्यक है कि सम्बन्धित अधिकारी अपने अधिकारों एवं शक्तियों का दुरूपयोग नहीं करें तथा अपने निर्धारित दायित्वों के निर्वाह के लिए बनाई गई लक्ष्मण रेखा का उल्लंघन नहीं करें । इस प्रकार की संतुलित स्थितियाँ सम्बन्धित कानूनों को कारगर बनाकर उन्हें सामाजिक समस्याओं के निराकरण के सन्दर्भ में एक प्रभावी उपकरण का स्वरूप प्रदान कर सकेंगी । इस प्रकार सामाजिक समस्याओं के प्रति राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका की समीक्षा के लिए प्रस्तावित कानूनों के स्वरूप की समीक्षा तथा स्थापित संस्थाओं के प्रभाव के साथ ही कार्मिक वर्ग को प्रदत्त समुचित अधिकार एवं दायित्वों के निर्धारण को भी एक महत्वपूर्ण आधार माना जाता है ।

4.3.5 स्थायी एवं आधारभूत अवस्थाओं की स्थापना

प्रवर्तनकारी भूमिका का निहितार्थ यह है कि राज्य द्वारा सामाजिक समस्याओं के निराकरण के लिए बनाये गये कानूनों के विविध प्रावधानों के अनुरूप संबंधित इकाइयों द्वारा निर्धारित कार्यवाहियाँ अमल में लाई जाकर इन समस्याओं से समाज को मुक्त किया जाये । इन कानूनों को प्रमादी रूप से लाग करने तथा निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए जिस अवस्था की स्थापना की जाती है उसे आपराधिक न्याय अवस्था के नाम से जाना जाता है । इस व्यवस्था के प्रमुख तौर पर 6 अंग होते हैं । यह अंग हैं- कानून, बार, न्यायपालिका, पुलिस, अभियोजन एवं जेल-प्रवचन । आपराधिक न्याय व्यवस्था के इन अंगों के बीच जहाँ पारस्परिक सहयोग एवं तालमेल बना रहना जरूरी होता है, वही प्रत्येक इकाई के संगठनात्मक एवं प्रकार्यात्मक स्वरूपों का समुचित निर्धारण किए जाने से ही सामाजिक समस्याओं के प्रति राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका का प्रभावी निर्वाह होना संभव होता है । राज्य अपनी इस भूमिका का निर्वाह आपराधिक न्याय-व्यवस्था की उपर्युक्त इकाइयों के माध्यम से ही सम्पन्न करता है । इन इकाइयों के संगठनात्मक स्वरूपों के स्पष्ट निर्धारण के साथ-साथ उनके अधिकारों' शक्तियों कर्तव्यों एवं दायित्वों का निर्धारण करने के अलावा इन इकाइयों को सभी प्रकार की कार्यकारी स्थितियाँ एवं संसाधन उपलब्ध करवाये जाने से ही राज्य की प्रासंगिक प्रवर्तनकारी भूमिका लक्ष्योन्मुखी एवं अर्थपूर्ण बन पाती है ।

4.3.6 नियन्त्रण' पर्यवेक्षण एवं नेतृत्व

राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका के प्रभावी निर्वाह के लिये कानूनों के निर्माण उनकी अनुपालना के लिए संस्थागत स्वरूपों के निर्धारण तथा स्थायी एवं आधारभूत अवस्थाओं की स्थापना के साथ-साथ

प्रदत्त कार्यो के सही निर्वाह के लिये विभिन्न प्रकार की नियन्त्रण एवं पर्यवेक्षण व्यवस्थाओं की स्थापना किया जाना भी आवश्यक होता है । प्रदत्त कार्यों को संबंधित कर्मचारी एवं अधिकारी सही तरीके से सम्पन्न करें एवं वे अपने इन अधिकारों का दुरूपयोग नहीं करें इसके लिए जरूरी है कि इन कर्मियों पर समुचित नियन्त्रण बनाए रखा जाए तथा उन्हें समय-समय पर सही दिशा निर्देश प्रदान कर लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया जाए। नियन्त्रण एवं पर्यवेक्षण विधाओं के माध्यम से इस कार्यबाही को सम्पन्न किया जाता है । राजनैतिक एवं प्रशासकीय नेतृत्व उनमें निहित नियन्त्रण एवं पर्यवेक्षण शक्तियों के माध्यम से अपने अधीनस्थ अधिकारियों एवं कर्मचारियों पर नियन्त्रण बनाये रखकर तथा उन पर समुचित पर्यवेक्षण की स्थितियाँ बनाकर इन कर्मियों को निर्धारित सत्यों को प्राप्त करने के लिए गतिशील बनाये रखते हैं । इस प्रकार प्रभावी एवं कुशल नेतृत्व के द्वारा सही नियन्त्रण एवं सकारात्मक पर्यवेक्षण के जरिये सामाजिक समस्याओं के निराकरण में राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका को वास्तविक स्वरूप प्रदान किया जाता है ।

4.4 प्रवर्तनकारी भूमिका के सामयिक स्वरूप

कोई राज्य सामाजिक समस्याओं के प्रति अपनी प्रवर्तनकारी भूमिका का निर्वाह कैसे कर रहा है, इसकी समीक्षा समय-समय पर समाज के विभिन्न वर्गों द्वारा की जाती रहती है । इस समीक्षा के परिणामस्वरूप कुछ वर्ग यह मानते हैं कि राज्य अपनी संबंधित भूमिका का निर्वाह संतोषजनक तरीके से करते हैं वही दूसरे पक्ष के लोग यह मानते हैं कि राज्य अपनी प्रवर्तनकारी भूमिका का निर्वाह संतोषजनक तरीके से नहीं करते हैं ।

4.4.1 संतोषजनक प्रवर्तनकारी भूमिका के समर्थन के आधार

राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका को संतोषजनक मानने वाले पक्षकार निम्नांकित आधारों पर राज्य की इस
भूमिका को संतोषजनक मानते है।

i. सामाजिक समस्याओं को उत्पन्न करने वाले कारकों एवं कारणों का निराकरण ।
ii. सामाजिक समस्याओं के बारे में सार्वजनिक चेतना एवं समुचित संवेदना का विकास ।
iii. समाज को इन समस्याओं से मुक्त करने के लिए विविध कल्याणकारी कार्य-योजनाओं का निर्माण।
iv. iv इन समस्याओं के निराकरण के लिये कानूनों का निर्माण ।
v. निर्मित कानूनों को लागू करने के लिए विविध संस्थाओं की स्थापना ।
vi. सामाजिक समस्याओं के निराकरण को निरन्तरता प्रदान करने के लिये स्थाई एवं आधारभूत अवस्थाओं की स्थापना।
vii. स्थापित संस्थाओं एवं अवस्थाओं को अर्थपूर्ण, गतिशील एवं लक्ष्योन्मुखी बनाने के प्रयास।

राज्य सामाजिक समस्याओं के निराकरण के संबंध में अपनी प्रवर्तनकारी भूमिका को प्रभावी और अर्थपूर्ण मानते हैं तथा इस सम्बन्ध में स्थापित संस्थाओं एवं व्यवस्थाओं में कार्यरत अधिकारी एवं कर्मचारी भी यह महसूस करते हैं कि राज्य की इस भूमिका का निर्वाह उनके द्वारा प्रभावी तरीके से किया जा रहा है । राज्य सरकारें एवं उनके विभिन्न संगठन यह महसूस करते है कि राज्य विशेष में जो भी सामाजिक समस्याएं प्रचलन में हैं उनके लिए जो भी कारण उत्तरदायी हैं उन कारणों की समीक्षा की जाकर उन्हें दूर करने के विविध प्रयास किये जाते हैं। इस क्रम में राज्य की सरकारें अशिक्षा,

अज्ञान, गरीबी एवं पिछड़ेपन को दूर करने के लिए अनेक प्रकार के कार्यक्रमों एवं योजनाओं का निर्माण करती हैं । समुचित धन इन योजनाओं को प्रभावी रूप से लाग करने के लिए उपलब्ध करवाया जाता है जिससे कि अशिक्षा, अज्ञान, गरीबी एवं पिछडेपन की बे स्थितियाँ जो सामाजिक समस्याओं के आविर्भाव एवं प्रचलन के लिए जिम्मेदार हैं उनका निराकरण किया जा सके । इन्हीं कार्यक्रमों के अभिन्न अंग के रूप में समाज में काश बुराइयों, कुरीतियों एवं समस्याओं के बारे में जन मानस में संवेदना एवं चेतना विकसित करने की कार्य-योजनाओं का निर्माण किया जाता है, जिससे कि सामाजिक समस्याओं के खिलाफ एक प्रभावी जनमत का निर्माण किया जा सके । इस प्रकार के सहयोगात्मक, समन्वयात्मक एवं मैत्री पूर्ण कार्यक्रमों के अलावा राज्य अपनी प्रवर्तनकारी सामाजिक समस्याओं का को प्रभावी बनाने के लिए कानूनों का निर्माण भी करते हैं तथा इन कानूनों को लागू करने के लिए प्रभावी एवं कारगर संगठनों, संस्थाओं, विभागों, इकाइयों एवं अवस्थाओं का निर्माण भी किया जाता है । इन अवस्थाओं के माध्यम से दोषी व्यक्तियों के खिलाफ प्रभावी कार्यवाही अमल में लाई जाती है जो समाज में एक उदाहरण के रूप में कार्य करती है एवं जो लोग सामाजिक समस्याओं के निराकरण में अवरोध पैदा करते हैं उन्हें निरूत्साहित करती है । राज्य सरकारें तथा उनके सम्बन्धित विभाग एवं संगठन आकड़ों, विविध मानदण्डों एवं लक्ष्य प्राप्ति की स्थितियों के माध्यम से यह सिद्ध करते हैं कि सामाजिक समस्याओं के निराकरण में राज्य अपनी प्रवर्तनकारी भूमिका का निर्वाह प्रभावी तरीके से कर रहा है । राजस्थान राज्य भी सामाजिक समस्याओं के अभिशाप से अछूता नहीं है । यहाँ पर बाल-विवाह, दहेज-प्रथा, बाल-श्रम, मृत्यु-भोज, छुआछूत एवं शोषण जैसी अनेक सामाजिक समस्याएं अस्तित्व में हैं । इन समस्याओं के निराकरण के लिए राज्य ने अनेक संगठनों एवं विभागों का निर्माण कर रखा है । समाज कल्याण विभाग, महिला एवं शिशु विभाग, श्रम-विभाग, आपराधिक न्याय व्यवस्था, पुलिस संगठन जैसे अनेक विभाग अस्तित्व में हैं जो सामाजिक समस्याओं के निराकरण के लिए सहयोगात्मक, समन्वयात्मक, जनमत निर्माण जैसे कार्यो का निर्वाह करते हैं वहीं सामान्य प्रशासन, आपराधिक न्याय-व्यवस्था स्व पुलिस संगठन जैसे अनेक कानून क्रियान्वयन अभिकरण भी अस्तित्व में हैं जो सामाजिक समस्याओं से जुडे विविध अपराधों के संबंध में प्रभावी कार्यवाही सम्पन्न कर राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका को लक्ष्योन्मुखी बनाते हैं ।

4.4.2 असंतोषजनक प्रवर्तनकारी भूमिका के आधार

राज्य सरकार एवं उनके विविध संगठन एवं विभाग यह महसूस करते हैं कि बे सामाजिक समस्याओं के प्रति सर्वथा जागरूक रहते हैं तथा इनके निराकरण के लिए सभी प्रकार के प्रयास, जिनके किये जाने की अपेक्षा समाज द्वारा की जाती है, बे प्रयास राज्य सरकार द्वारा किये जाकर सामाजिक समस्याओं के संबंध में राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका को प्रभावी बनाते हैं । इस मत के समर्थन में राज्य सरकार विविध प्रकार के आकडों, कार्य-योजनाओं एवं प्राप्त लक्ष्यों का सहारा लेती है । समाज के कुछ वर्ग राज्य के इस पक्ष से सहमत नहीं होते हैं तथा वे यह मानते हैं कि राज्य सामाजिक समस्याओं के निराकरण में अपनी प्रवर्तनकारी भूमिका का निर्वाह संतोषजनक तरीके से नहीं करते हैं । इस पक्ष का समर्थन करने वाले वर्ग अपने पक्ष में निम्नांकित तर्क एवं तथ्य प्रस्तुत करते हैं-

i. राज्य-सरकारों तथा उनके विविध संगठनों द्वारा राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका के पक्ष में प्रस्तुत आंकडें, तथ्य एवं सूचनाएं भ्रामक होते हैं तथा लक्ष्य प्राप्ति की जो स्थितियाँ बतलाई जाती हैं वे

भी सच्चाई से परे होती हैं। अपने इस मत के समर्थन में ये लोग जमीनी सच्चाईयों एवं यथार्थ को समझने की दुहाई देते हैं । इनका मानना है कि यदि जो आकड़े, तथ्य एवं स्थितियाँ सामाजिक समस्याओं के निराकरण के लिए प्रस्तुत की गई हैं वे सही होते तो समाज इन समस्याओं से मुक्त हो चुका होता । बावजूद इन आकडों के समाज के विभिन्न वर्ग में सामाजिक समस्याएं कमोबेश वैसी ही बनी हुई हैं जैसी कि इन आंक्रडों से पूर्व बनी हुई थी । अतः यह आंकडें भ्रामक हैं एवं सच्चाई से परे हैं जो यह सिद्ध करते हैं कि राज्य सामाजिक समस्याओं के निराकरण में अपनी प्रवर्तनकारी भूमिका का निर्वाह सही तरीके से नहीं कर रहा है ।

ii. राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका को असंतोषजनक मानने वाले लोगों का यह मानना है कि सामाजिक समस्याओं के निराकरण के लिए निर्धारित धन का दुरूपयोग होता है तथा यह धन सही व्यक्तियों तक नहीं पहुँच पाता है एवं भ्रष्टाचार की वजह से जो धनराशि जिस कार्य के लिए उपलब्ध करवायी जाती है उस कार्य में नहीं लगकर उस धन को निहित स्वार्थी हड़प कर जाते हैं । यही वजह है कि विविध योजनाओं के क्रियान्वयन के बावजूद भी सामाजिक समस्याएं जस की तस बनी रहती हैं ।

iii. राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका को अंजाम देने वाले विभाग निक्रिय असंवेदनशील एवं लापरवाह होते हैं एवं अपने दायित्वों का निर्वाह सही तरीके से नहीं करते हैं जिसकी वजह से सामाजिक समस्याओं के निराकरण के लिए जो कार्यवाही की जाने की अपेक्षा होती है वह संभव नहीं हो पाती है ।

iv. राज्य सरकारें कानूनों का निर्माण तो कर देती हैं परन्तु ये कानून सामाजिक स्वीकारोक्ति के अभाव में अप्रभावी बने रहते हैं । बाल-विवाह, बाल-श्रम एवं दहेज विरोधी कानून अस्तित्व में हैं परन्तु इन कानूनों के बावजूद भी उपर्युक्त सामाजिक समस्याएं समाज में बदस्तूर बनी हुई हैं ।

v. राज्य उन कारणों का निराकरण करने में असफल रहते हैं जो सामाजिक समस्याओं के जन्म, आविर्भाव एवं प्रचलन के लिए जिम्मेदार रहते हैं । इन कारणों के निराकरण के लिए जिस स्तर की कार्य योजनाएं बनाई जाती हैं, उस स्तर पर उन्हें लाग नहीं किया जाता है, जिसकी वजह से बावजूद योजनाओं एवं वित्तीय सहयोग एवं सहायता के सामाजिक समस्याएं बदस्तूर बनी रहती हैं ।

vi. भ्रांति-जनक आकड़ों के जरिये अपनी भूमिका को प्रतिपादित करने की मनोवृत्ति तथा लक्ष्यों एवं यथार्थ के बीच के फासले एवं निष्क्रिय, असंवेदनशील तथा उदासीन कानून क्रियान्वयन अधिकरणों की वजह से सामाजिक समस्याओं के संबंध में राज्य की निर्धारित प्रवर्तनकारी भूमिका को असंतोषजनक मानने बाले लोगों का यह कहना है कि राज्यों की यह भूमिका ज्ञान-भेद कुछ क्रिया भिन्न है. की तरह की विसंगति स्व विरोधाभासी स्थितियों की वजह से असंतोषजनक ही कही जायेगी ।

4.5 राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका मे सुधारः आधार एवं अपेक्षाएं

समाज को समस्याओं से मुक्त करने का प्रयास राज्य को निरन्तर करना होता है । अपने इन प्रयासों के अन्तर्गत राज्य समय-समय पर नियामक एवं प्रवर्तनकारी भूमिकाओं का निर्धारण करते हैं । अपनी इन निर्धारित भूमिकाओं के प्रभावी क्रियान्वयन के जरिये समाज को विविध प्रकार की सामाजिक समस्याओं से मुक्त करने के लिए भी राज्य सचेष्ट रहते हैं । इन भूमिकाओं के निर्वाह को लेकर प्रतिकूल मत भी अस्तित्व में बने रहते हैं । एक तरफ जहाँ राज्य एवं उसकी विविध इकाइयाँ

यह सिद्ध करने का प्रयास करते हैं कि सामाजिक समस्याओं के निराकरण में राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका का निर्वाह अर्थपूर्ण एवं प्रभावी तरीके से किया जा रहा है बही प्रतिपक्षी मत रखने बाले लोगों का यह कहना है कि राज्य द्वारा प्रतिपादित पक्ष भ्रांति जनक एवं यथार्थ से परे होता है । संतुलित दृष्टिकोण से देखा जाए तो यह प्रकट होता है कि राज्य सामाजिक समस्याओं के निराकरण के लिए सभी प्रकार के प्रयत्न करते हैं एवं इस प्रकार की कोशिशें निरन्तर जारी रहती हैं जिनकी वजह से समाज में आज बुराईयों, कुरीतियों, कुप्रथाओं एवं समस्याओं पर नियन्त्रण बना रहे तथा समाज को यथाशीघ्र एवं यथासंभव इन समस्याओं से मुक्त किया जाये । इस क्रम में राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका की निरन्तर समीक्षा किया जाना जरूरी होता है जिससे कि सुधार की स्थितियाँ लगातार बनी रहें । समाज भी यह अपेक्षा करता है कि राज्य जिस तरह की भूमिका का निर्वाह करते रहे हैं उससे बेहतर भूमिका का निर्वाह किया जाये । सुधार एवं आदर्श का कोई अंतिम प्रतिमान नहीं होता है और आदर्श से आदर्श स्थिति को भी बेहतर बनाये जाने की संभावना अनवरत बनी रहती है । अत: जरूरी है कि सामाजिक समस्याओं में राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका में सुधार के आधार बिन्दुओं की पहचान की जाए जिनके आधार पर इस भूमिका की समीक्षा की जाकर उसको निरन्तर बेहतर बनाने के प्रयास जारी रह सकें। राज्य की इस प्रवर्तनकारी भूमिका में सुधार लाने के कुछ आधार निम्नांकित हैं:-

4.5.1 सामाजिक समस्याओं के कारणों की समीक्षा

प्रत्येक सामाजिक समस्या के पीछे कुछ न कुछ कारण मौजूद रहते हैं । इन कारणों की सामाजिक सुरक्षा की जाकर इनके ऐतिहासिक परिवेश को समझना जरूरी होता है । इस समीक्षा के माध्यम से एक तरफ जहाँ समुचित समस्या ये निपटने में सहूलियत रहती है बही इसके लिए निर्धारित कार्य योजनाओं को भी प्रभावी बनाने में सहायता मिलती है । यद्‌यपि राज्य सरकारें इस प्रकार की समीक्षा के अन्तर्गत शैक्षिक शोधगत एवं क्षेत्रीय सर्वेक्षणों के जरिये संबंधित समस्या के कारणों को जानने का प्रयास करती है परन्तु आवश्यकता है कि इन प्रयासों को और अधिक अर्थपूर्ण, यथार्थवादी एवं लक्ष्योन्मुखी बनाया जाए । जिन समाजों में सामाजिक समस्याओं की बहुतायत रहती है एथ इन समस्याओं के प्रति जनमत जागरूक नहीं होता है वहाँ पर ऐसे प्रयासों को और अधिक व्यापक एवं सारगर्भित बनाये जाने की आवश्यकता है । इस संबंध में शैक्षिक संस्थाओं का सहयोग प्राप्त करने के साथ-साथ राज्य की संबंधित प्रशासकीय इकाइयों को भी और अधिक सक्रिय बनाने की आवश्यकता है ।

4.5.2 सामाजिक एवं सार्वजनिक चेतना का विकास

समाज में सामाजिक समस्याएँ इसलिए मौजूद रहती हैं क्योंकि समाज-विशेष इन समस्याओं के प्रति जागरूक नहीं रहता है तथा सार्वजनिक चेतना का स्वरूप उदासीन, तटस्थ एवं निष्क्रिय बना रहता है । इन परिस्थितियों में यह जरूरी है कि समाज को जगाने, बही की सार्वजनिक चेतना को विकसित करने तथा आम जन में बाज सामाजिक समस्याओं के प्रति असंवेदनशीलता को कम करने के प्रयास किये जायें । इस प्रकार के प्रयास समाज में एक ऐसी चेतना का विकास करेंगे जो स्वत: ही सामाजिक समस्याओं के प्रचलन के प्रति सक्रिय रहेगी एवं उनसे निपटने के लिए जो भी प्रयास किये जा रहे हैं उनमें प्रभावी सहभागिता निभा सकेगी । इस प्रकार की सामाजिक एवं सार्वजनिक चेतना राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका के सफल निर्वाह के लिए एक प्रभावी पृष्ठभूमि का कार्य करेगी । वांछित

सामाजिक एवं सार्वजनिक चेतना के विकास के लिए यह आवश्यक है कि सामाजिक समस्याओं के संबंध में का एक चर्चा एवं जन-जागरण के लिये चेतना रैलियों का आयोजन किया जाये । इस प्रकार के प्रयास सूक्ष्म एवं व्यापक स्तरों पर आयोजित किये जाने के परिणामस्वरूप कालांतर में एक प्रभावी जनमत सामाजिक समस्याओं के खिलाफ तैयार हो सकता है । इस प्रकार का प्रभावी जनमत समाज में सकारात्मक वातावरण का निर्माण करेगा, जिसकी वजह से सामाजिक समस्याओं से निजात मिलने में सुविधा रहेगी ।

4.5.3 स्वैच्छिक एवं सामाजिक संगठनों की भूमिका

समाज में नई प्रकार की चेतना का विकास करने एवं सामाजिक समस्याओं के निराकरण के लिए प्रभावी जनमत बनाने के संदर्भ में स्वैच्छिक एवं सामाजिक संगठनों की भूमिका को सकारात्मक एवं प्रभावी माना गया है । यह संगठन जन-भागीदारी, सार्वजनिक सहयोग एवं स्वैच्छिकता के आधार पर कार्य करते हैं । अत: आमजन इन संगठनों की गतिविधियों के प्रति सहयोग एवं सकारात्मक रूख रखते हैं । स्वैच्छिक संगठनों में कार्य करने बाले कर्मी जमीनी सच्चाईयों को आत्मसात करते हैं तथा पूरी निष्ठा के साथ अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए आम आदमी के साथ जुड़कर काम करने की प्रेरणा से अभिप्रेरित रहते हैं । इस प्रकार के संगठन एवं उनमें कार्यरत कर्मी जन-साधारण को सामाजिक समस्याओं के प्रति अधिक प्रभावी तरीके से जागरूक कर सकते हैं । अत: राज्य को चाहिए कि बे इस प्रकार के स्वैच्छिक संगठनों को प्रोत्साहित करें एवं उन्हें सहयोग भी प्रदान करें । इन संगठनों द्वारा की गई कार्यवाही एक तरफ जहाँ जन-जागरण एवं जनमत तैयार कर राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका के निर्वाह को सहज बनायेगी वहीं आम नागरिक को भी सामाजिक समस्याओं से निपटने के लिए प्रेरित करेगी ।

4.5.4 कानूनों का निर्माण

सामाजिक समस्याओं के निराकरण के संदर्भ में राज्य अपनी प्रवर्तनकारी भूमिका के निर्वाह के लिये कानूनों के निर्माण में या तो उदासीनता बरतते हैं या अति सक्रियता का परिचय देते हैं । ये दोनों प्रकार की स्थितियाँ अवांछनीय हैं । राज्य यदि सामाजिक समस्याओं के निराकरण के लिए कानूनों के निर्माण के प्रति उदासीनता का रूख रखेंगे तो ये समस्याएँ अपराध का स्वरूप ग्रहण कर लेंगी एवं समाज को जड़ता की ओर धकेल देंगी । इसी प्रकार यदि राज्य सामाजिक समस्याओं के निराकरण के लिए कानून-निर्माण के लिए अति सक्रियता दिखलायेगे तो अधिक मात्रा में कानूनों का निर्माण हो जाएगा जिन पर अमल नहीं होने की स्थिति में ये कानून निरर्थक एवं निष्क्रिय बने रहेंगे । साथ ही बिना जन स्वीकारोक्ति के बनाये गए कानूनों को लाग करने के लिए जिस बांछित जन सहयोग की आवश्यकता है वह भी राज्य को मिल नहीं पायेगा एवं इन कानूनों करने वाले क्रियान्वयन अभिकरण भी निष्क्रिय एवं अप्रभावी बने रहेंगे । इन स्थितियों में यह आवश्यक है कि कानून निर्माण के संदर्भ में राज्य एक संतुलित सोच का परिचय दें एवं कानूनों के निर्माण से पूर्व समाज की स्वीकारोक्ति को भी जन चेतना के जरिये प्राप्त करने की कोशिश करें एवं उतने ही कानूनों का निर्माण करें जिनको प्रभावी तरीके से लाग किया जाना संभव हो सके । यदि किसी सामाजिक समस्या के निराकरण के लिए कानून बनाया जाना जनहित में है तो राज्य को मजबूत इच्छाशक्ति का परिचय देना चाहिए एवं

नकारात्मक जनमत के सामने न तो आत्मसमर्पण करना चाहिए एवं न ही निष्क्रियता का रूख अपनाना चाहिए ।

4.5.5 प्रवर्तनकारी इकाइयों की स्थापना

सामाजिक समस्याओं के निराकरण के लिए बनाये गये कानूनों को प्रभावी रूप से लागू करने के लिए राज्य को मजबूत एवं कारगर संस्थाओं, अवस्थाओं एवं प्रवर्तनकारी इकाइयों की स्थापना करनी चाहिए । यदि ये व्यवस्थाएं उपलब्ध नहीं रहेंगी तो कानूनों का प्रभावी क्रियान्वयन नहीं होने की स्थिति में एक तरफ जहाँ कानून बेमानी बन जायेंगे वहीं सामाजिक समस्याएं भी विकट से विकट रूप ग्रहण करती जायेंगी । प्रवर्तनकारी इकाइयों की मजबूती एवं प्रभाव के माध्यम से प्राप्त लक्ष्यों एवं आकडों के आधार पर ही सामाजिक समस्याओं के निराकरण के संदर्भ में अपनायी गई राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका की समीक्षा की जाती है । अत: इन इकाइयों का सभी दृष्टि से मजबूत एवं प्रभावी बना रहना आवश्यक है ।

4.5.6 सामाजिक, राजनैतिक एवं प्रशासकीय नेतृत्व

सामाजिक समस्याओं के निराकरण में सामाजिक, राजनैतिक एवं प्रशासकीय नेतृत्व की अहम भूमिका होती है । सामाजिक समस्याओं के निराकरण के लिए व्यक्ति, समाज एवं स्वैच्छिक संगठनों को मजबूत बनाने के लिए नेतृत्व के इन सभी स्तरों को सक्रिय, जागरूक एवं सकारात्मक होना जरूरी होता है । यदि सामाजिक नेतृत्व सजग एवं जागरूक है तो सामाजिक समस्याओं के निराकरण में समाज अपने आपको सक्षम पाता है । यदि सामाजिक नेतृत्व असक्षम एवं निष्क्रिय है तो राज्य एवं प्रशासन को अपनी प्रवर्तनकारी भूमिका का निर्वाह करने में अनेक कठिनाईयों का सामना करना होता है । राजनैतिक नेतृत्व से यह अपेक्षा रखी जाती है कि बह समाज को सही दिशा एवं गति प्रदान करेंगे । प्रबुद्ध एवं जागरूक राजनेता ही ऐसा करने में सक्षम होते हैं । सामाजिक समस्याओं के निराकरण के संदर्भ में यह जरूरी है कि राजनैतिक नेतृत्व, सामाजिक एवं प्रशासनिक स्तरों के बीच एक सेतु का कार्य करे एवं ऐसी स्थितियों का निर्माण करें जिनकी वजह से सामाजिक समस्याओं के निराकरण की सहज परिस्थितियाँ निर्मित हो सकें । इसी क्रम में प्रशासनिक नेतृत्व से यह अपेक्षा रखी जाती है कि वे राज्य के स्तर पर सामाजिक समस्याओं के संबंध में जो भी प्रयास किये जा रहें हैं, उनके प्रति निष्ठा एवं उत्तरदायित्व का ध्यान रखें । सामाजिक, राजनैतिक एवं प्रशासकीय नेतृत्व के प्रभावी बने रहने से सामाजिक समस्याओं के प्रति राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका स्वाभाविक तौर पर अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में कामयाब बन सकेगी।

4.6 सारांश

सामाजिक समस्याएं प्रत्येक समाज में मौजूद रहती हैं । इनका निराकरण भी समय-समय पर समाज हित में किया जाना जरूरी होता है । इन समस्याओं के निराकरण के लिए अनेक प्रकार की इकाइयाँ उत्तरदायी होती हैं । राज्य की भूमिका इस संदर्भ में महत्वपूर्ण मानी जाती है । सामाजिक समस्याओं के निराकरण के लिए राज्य अपनी भूमिका का दो स्तरों पर निर्वाह करता है । प्रथम स्तर की भूमिका को नियामक भूमिका तथा दूसरे स्तर की भूमिका को प्रवर्तनकारी भूमिका के रूप में जाना जाता है । राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका के संबंध में कुछ महत्वपूर्ण बिन्दुओं की समीक्षा इस अध्ययन के दौरान की गई है । सामाजिक समस्याओं के संदर्भ में राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका का निहितार्थ

यह है कि जब समस्त प्रयत्नों के बावजूद भी समस्याएँ मौजूद रहें तो इनके निराकरण के लिए राज्य कानून बनाए तथा उन कानूनों के क्रियान्वयन के लिए समुचित संस्थाओं एवं व्यवस्थाओं का निर्माण करे । इन संस्थाओं एवं अवस्थाओं के माध्यम से उपलब्ध कानूनों के आधार पर दोषी व्यक्तियों के खिलाफ कार्यवाही की जाकर समाज को इन समस्याओं से निजात दिलाने की प्रक्रिया को राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका के रूप में पहचाना जाता है । प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत हमने राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका के स्वरूप एवं प्रकृति को समझने का प्रयास किया तथा इस सबक में समाज के विभिन्न वर्गो से राज्य की क्या अपेक्षा है तथा राज्य अपनी उस भूमिका को कैसे एवं किस सीमा तक निर्वाह करे इसकी संभावना की समीक्षा भी हमने इस इकाई में की है । समाज को समस्याओं से मुक्त करवाने के लिए राज्य द्वारा की जा रही कोशिशों में किस प्रकार के अवरोध उपस्थित होते रहते हैं उन्हें भी हमने समझने का प्रयास किया है ।

राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका की समीक्षा के प्रमुख आधारों की भी पहचान इस इकाई में की गई तथा इस तथ्य की विवेचना की गई है कि किस प्रकार एवं कैसे सामाजिक एवं राजनैतिक चेतना एवं संवेदना और विधायिनी प्रयास तथा कानूनी क्रियान्वयन तन्त्र व अन्य व्यवस्थाएं राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका का मूल्याकन करने के आधार बनते हैं । हमने यह भी समझने का प्रयास किया कि राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका का विश्लेषण किस प्रकार से विभिन्न वर्ग विभिन्न तरीके से करते हैं तथा किन आधारों पर वे इस भूमिका को संतोषजनक एवं असंतोषजनक मानते हैं । प्रस्तावित विषय को समग्रता प्रदान करने की दृष्टि से हमने उन तलो एवं आधारों की भी समीक्षा की जिनमें सुधार लाया जाकर प्रवर्तनकारी भूमिका को अधिक कारगर एवं लक्ष्योन्मुखी बनाया जा सकता है । इस सम्बन्ध में सामाजिक एवं सार्वजनिक चेतना का विकास, स्वैच्छिक संगठनों की भूमिका, कानूनों का निर्माण, प्रवर्तनकारी इकाइयों की स्थापना तथा सामाजिक, राजनैतिक एवं प्रशासकीय नेतृत्व की भूमिका जैसे बिन्दुओं पर विस्तार से चर्चा की गई है । इस प्रकार इस इकाई के माध्यम से हमने सामाजिक समस्याओं के प्रति राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका के विविध पक्षों की मीमांसा की तथा इस विषय को पूरी समग्रता के साथ समझने का प्रयास क्रिया ।

4.7 शब्दावली

i.	सामाजिक समस्या	Social Problem
ii.	नियामक भूमिका	Regulatory
iii.	प्रवर्तनकारी भूमिका	Changing Role
iv.	अपराधिक न्याय व्यवस्था	Criminal Legal System
v.	स्वैच्छिक संगठन	Voluntary Organisation
vi.	नियन्त्रण	Control
vii.	पर्यवेक्षण	Supervision
viii.	नेतृत्व	Leadership

4.8 बोध प्रश्न

निम्न प्रश्नों के उत्तर 500 शब्दों में दीजिए-

1. राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका के स्वरूप एवं प्रकृति की समीक्षा करते हुए इस संदर्भ में उपस्थित होने वाले अवरोधों की विवेचना कीजिए।
2. राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका का निरूपण किन आधारों पर किया जाता है?
3. सामाजिक समस्याओं के प्रति राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका को श्रेष्ठ बनाने के विविध आधारों का विश्लेषण कीजिए।

निम्न प्रश्नों के उत्तर 150 शब्दों में दीजिए-

1. सामाजिक समस्याओं के प्रति राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका के पक्ष में विचार प्रकट कीजिए।
2. सामाजिक समस्याओं के प्रति राज्य की प्रवर्तनकारी भूमिका को किन आधारों पर असंतोषजनक माना जाता है?

इकाई-5

सामाजिक संघर्षण में पुलिस की भूमिका

इकाई संरचना

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 संघर्षण से तात्पर्य

5.3 संघर्षण के स्वरूप

5.4 संघर्षण के कारण

5.5 अल्पसंख्यक-बहुसंख्यक

5.6 सामाजिक संघर्षण एवं पुलिस

5.6.2 भाषायी संघर्ष

5.6.2 क्षेत्रवाद

5.6.3 जाति संघर्ष

5.6.4 जनजातियाँ और अन्य

5.8.5 धार्मिक संघर्ष

5.7 सारांश

5.8 बोध प्रश्न

5.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

संघर्ष का अर्थ उसके स्वरूप एवं उसके कारणों के बारे में जान सकेंगे ।

अल्पसंख्यक-बहुसंख्यक के बारे में जान सकेंगे ।

सामाजिक संघर्षण में पुलिस की भूमिका के बारे में समझ सकेंगे ।

धार्मिक संघर्ष के कारणों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।

5.1 प्रस्तावना

संघर्षण एक सामाजिक प्रक्रिया है, जो व्यक्ति एवं समाज दोनों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है । संघर्षण चेतना को विकसित करता है, व्यक्ति को परिश्रम करने के लिए बाध्य करता है । संघर्षण एक चुनौती के रूप में होता है और सहयोग के लिए बाध्य करता है । इसके कारण मनुष्यों को अपनी शक्ति का अनुभव होता है । रयूटर एवं हार्ट का कहना है, संघर्षण समस्त चेतन जीवन का आधार एवं उत्पत्ति की जड़ है, आत्म चेतना और सामूहिक-चेतना दोनों संघर्षण के परिणाम हैं ।

इस प्रकार संघर्षण जीवन को संगठित रखने का कार्य करता है । मैकाइवर और पेज कहते हैं कि संघर्षण और सहयोग मानव जीवन में सार्वभौमिक तल है । ये कार्यो के एक विस्तृत क्षेत्र में साथ-साथ उपस्थित रहते हैं । संघर्षण के बिना चरित्र का निर्माण भी नहीं हो सकता । जब तक जीवन में संघर्षो से न जूझा जाए, व्यक्ति अपने जीवन की एक निश्चित दिशा तय नहीं कर पाता, क्योंकि

व्यक्ति सदैव बच्चा ही बना रहता है । अत: विचारों को ब कार्यो को संगठित करने के लिए, जीवन की दिशा निश्चित करने के लिए संघर्षण का होना आवश्यक है । संघर्षण व्यक्तियों के समान ही सामूहिक संगठन को बढ़ाने में भी महत्वपूर्ण प्रक्रिया है ।

5.2 संघर्षण से तात्पर्य

संघर्षण एक सामाजिक प्रक्रिया है । यह समाज में पाई जाती है जो किन्हीं स्वार्थो के फलस्वरूप उत्पन्न होती है । जब उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए व्यक्ति प्रतिस्पर्धा का मार्ग त्याग देते हैं और हर सम्भव प्रयासो से अपने उद्देश्यों की प्राप्ति कर लेते हैं तो यह संघर्षण की स्थिति होती है । संघर्षण में विरोधी को नुकसान पहुँचाने, उसे धमकी देने ब उसे पराजित करने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया जाता है । इसमें हिंसा एवं बल का प्रयोग भी किया जाता है । मुख्य उद्देश्य अपने लक्ष्य की प्राप्ति करना होता है, चाहे उसके लिए कैसे भी साधन अपनाने पड़े । इस प्रकार यह संघर्षण विरोध, वैमनस्यता, घृणा उत्पन्न करती हैं । संघर्षण की निम्नलिखित परिभाषाओं से उसे भलीभाँति समझा जा सकता है-

संघर्षण की परिभाषा

संघर्षण में व्यक्ति अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए विरोधी पक्ष को हर सम्भव नुकसान पहुँचाने का प्रयत्न करता है ।

1. ग्रीन का कहना है, ' संघर्षण दूसरों की इच्छा के विरोध, प्रतीकार अथवा बल पूर्वक रोकने के विचार पूर्वक प्रयत्न को कहते हैं ।
2. गिलिन एवं गिलिन के अनुसार, संघर्षण वह सामाजिक प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति या समूह अपने उद्देश्यों की प्राप्ति अपने विरोधी को हिंसा या हिंसा के भय के द्वारा प्रत्यक्ष आहवान देकर करते हैं ।.
3. मैकाइवर और पेज के अनुसार,. सामाजिक संघर्षण में वे सभी क्रिया कलाम सम्मिलित हैं, जिसमें मनुष्य किसी उद्देश्य के लिए एक -दूसरे के विरूद्ध लड़ते या विशद करते है ।

उपयुक्त परिभाषाओं के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि संघर्षण में अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए एक-दूसरे के साथ भय अथवा हिंसा का प्रयोग व्यक्तियों द्वारा किया जाता है । इस प्रकार संघर्षण में विरोधी के प्रतिशत्रुता एवं घृणा की भावना निहित है । डेविस का मानना है कि जहाँ प्रतीस्पर्धा का स्थान प्रतिद्वंद्वी ले लेते हैं वही संघर्षण होता है। इसके व्यक्तिगत एवं सामूहिक दोनों ही कारण होते हैं । ग्रीन के मत में संघर्षण शारीरिक हिंसा के बिना भी हो सकता है किन्तु गिन एवं गिलिन ने संघर्षण के लिए शारीरिक हिंसा को उत्तरदायी माना है ।

5.3 संघर्ष का स्वरूप :

(1) वैयत्तिक संघर्षण

जब संघर्षरत व्यक्तियों में व्यक्तिगत रूप से मृणा होती है, तो संघर्षण वैयक्तिक कहलाता है । संघर्षरत व्यक्ति एक-दूसरे को नुकसान पहुँचाने, उन्हें नष्ट करने पर तुले रहते हैं, उनमें परस्पर मन-मुटाव होता है, घृणा होती है , यहीं तक कि वे एक-दूसरे को मरने-मारने पर उतारू हो जाते हैं- कभी संघर्षण चलता है कभी धीमा पड़ जाता हैं और अन्त में सहयोग परिणत हो जाता है । इस प्रकार संघर्षण व्यक्तिगत स्वार्थो के कारण होता है और जिनमें धन, मान-प्रतिष्ठा शक्ति, लिंग आदि सार्थ होते हैं । वैयक्तिक संघर्षण में समूह की भूमिका नहीं होती ।

(2) प्रजातीय संघर्षण

वंशानुगत शारीरिक लक्षणों के आधार पर व्यक्तियों को प्रजातियों में बांटा जाता है और उनमें एक प्रजाति दूसरी प्रजाति से स्वयं को श्रेष्ठ मानती है । इस कारण उनमें समूहगत संघर्षण पाया जाता है । नीग्रो व श्वेत प्रजाति का संघर्षण बहु त उत्तेजनापूर्ण होता है । इसमें रंग-भेद की मायना प्रमुख कारण है । आर्थिक रूप से भी प्रजातियों का शोषण उच्च प्रजाति के द्वारा किया जाता है, जैसे-उसे अधिकारों से वंचित कर देना, मारना, पिटना आदि प्रजातीय संघर्षण के दुष्परिणाम हैं।

(3) वर्ग संघर्षण

कार्ल मार्क्स ने कहा हैं, 'आज के अस्तित्व में रहे समाज का इतिहास वर्ग-संघर्ष का इतिहास है । वर्ग संघर्ष सम्पूर्ण विश्व में विद्यमान है । मजदूर और मिल-मालिक का संघर्ष इसका प्रबल उदाहरण है जिसमें पूँजीपति -वर्ग मजदूरों का अधिक शोषण करते हैं- तब उनमें संघर्षण होता है, हड़ताले होती हैं । इस प्रकार का संघर्षण एक सार्वभौमिक घटना कहा जा सकता है ।

(4) राजनैतिक संघर्षण

राजनीति में दो प्रकार के संघर्ष होते हैं- (1) एक तो राष्ट्र के विभिन्न दलों के बीच होने बाला संघर्षण और (2) दूसरा अन्तर्राष्ट्रीय अथवा विभिन्न राष्ट्रों के मध्य होने वाला संघर्षण । जहाँ प्रजातन्त्रात्मक शासन व्यवस्था है वहाँ अनेक राजनैतिक दल होते हैं । इनमें परस्पर प्रतिस्पर्धा होती है और बाद में यह संघर्षण का रूप ले लेती है । जब एक दल दूसरे दल के विरोध में घृणा फैलाता है, अफवाहें, भ्रामक प्रचार, चरित्र-हनन जैसे दोषारोपण होते हैं तो इस प्रकार का संघर्षण उग्र रूप धारण का लेता है, दूसरा अन्तर्राष्ट्रीय संघर्षण है जिसका उदाहरण युद्ध है जो संघर्षण का ही परिणाम है । इस प्रकार राजनीति में राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर संघर्षण मिलता है।

5.4 संघर्षण का कारण

संघर्षण की स्थिति उस समय आती है जब व्यक्ति दूसरे पर अपना प्रभाव जमाना चाहता है। वैसे आधुनिक समय में संघर्षण का प्रमुख कारण आर्थिक है । गिलिन एवं गिलिन ने संघर्षण के चार कारण बताए हैं-

(1) व्यक्तिगत विभिन्नताएँ

कोई भी दो व्यक्ति रंग, रूप, आकार, योग्यता एवं बौद्धिक क्षमता आदि में समान नहीं होते। इस कारण उनके मूल्यों, स्वभावों व रूचियों आदि में भिन्नता होती है । यह सब कारण संघर्षण को जन्म देते हैं- इस प्रकार व्यक्तिगत भिन्नताएँ संघर्षण का कारण होती हैं ।

(2) सांस्कृतिक भिन्नताएँ

व्यक्ति पर उसकी संस्कृति का भी अत्यधिक प्रभाव रहता है । जिस समाज का वह सदस्य है, जहाँ उसका समाजीकरण हु आ है बही के मूल्यों मान्यताओं, रीती-रिवाजों को बह मत ग्रहण कर लेता है । सांस्कृतिक विभिन्नताएँ उसके व्यवहार में होती हैं अत: दो संस्कृतियों बाले व्यक्ति में संघर्षण होता रहता है, जैसे कोई संस्कृति शांतिप्रिय एवं कोई झगडालू प्रकृति की हो सकती है । ऐसी स्थिती में संघर्षण हो जाता है ।

(3) विरोधी स्वाथ

परस्पर विरोधी स्वार्थी के कारण संघर्षण होता है । जब दो व्यक्तियों के हित एक-दूसरे से टकराते है तो उस समय संघर्षण की स्थिति हो जाती है, उदाहरण के लिए मिल-मालिक व मजदूरों

में सदैव संघर्षण बना रहता है । क्योंकि मिल-मालिक का हित अधिकाधिक धन कमाना है और मजदूर चूंकि मेहनत करता है तो अधिक धन प्राप्त करना चाहता है अत: दोनों में संघर्षण होता है । परस्पर विरोधी संघर्षण सदैव अधिकारी और कार्यकर्त्ता में मध्य रहता है । महाविद्यालयों में जब छात्रों को असुविधाओं का सामना करना पड़ता है तो प्रर्धा के विरोध में हड़ताल तोड़फोड़ आदि करके अपना संघर्षण वक्त करते हैं ।

(4) सामाजिक परिवर्तन

समाज की व्यवस्था में परिवर्तन आता है तो यह भी संघर्षण का कारण होता है । नये आविष्कारों के कारण व्यापार व उद्योग के क्षेत्र में वृद्धि होती है, परिणामस्वरूप आपसी-वर्ग में प्रतिस्पर्धा होती है । और बाद में यही प्रतिस्पर्धा संघर्षण का रूप ले लेती है । संघर्षण इस रूप में सामाजिक परिवर्तन के कारण होता है । सामाजिक परिवर्तन के कारण संघर्षण समाज में अनेक क्षेत्रों में दिखाई दे रहा है-पारिवारिक विघटन, सांस्कृतिक विघटन इसी के कारण हो रहे हैं ।

5.5 अल्पसंख्यक-बहुसंख्यक

इनकी पहचान का सीधा सा आधार सांख्यिकीय होता है । जो जातीय समूह संख्या बल में ज्यादा होता है वह बहुसंख्यक और दूसरा या दूसरे अन्य अल्पसंख्यक कहलाते हैं । आमतौर पर देखा जाता है कि संख्या बल के अतिरिक्त भी इनमें कई असमानताएं होती हैं और सामाजिक संघर्षणों के संदर्भ में दूसरी असमानता ज्यादा बडी भूमिका निभाती है । आमतौर पर एक जातीय समूह दूसरों से सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक हैसियत में प्रबल होता है इसके कतिपय विशिष्ट ऐतिहासिक कारण होते हैं । यह जानना दिलचस्प होता है कि 20 वीं शताब्दी की शुरुआत तक दुनिया के अधिकांश समाजों में आमतौर पर संख्या बल के आधार पर अल्पसंख्यक माने जाने वालों का समाज के संसाधनों ब राजनीति पर प्रभाव था और उनकी सामाजिक हैसियत ज्यादा थी । अफ्रीका के कतिपय देशों में यूरोपियन्स व यूरोप के कतिपय कतिपय देशों में यहूदियों की अल्पसंख्यक होते हुए भी बडी प्रभावी भूमिका थी ।

चूंकि 20 वीं शताब्दी में अधिकांश समाजों का लोकतांत्रीकरण हुआ, फलस्वरूप सांख्यिकी रूप से बहुसंख्यक समुदाय सामाजिक और खासतौर से राजनीतिक रूप से प्रबल हो गए । बहुसंख्यकों के राष्ट्रीय जन-जीवन में छा जाने का एक प्रत्यक्ष प्रभाव अल्पसंख्यकों में आई असुरक्षा व अविश्वास की भावना के रूप में सामने आया । भारत में स्वतंत्रता से पूर्व मुस्लिम समाज का सांप्रदायिक ध्रुवीकरण इसी आशंका का परिणाम था और आज विश्व स्तर पर विभिन्न देशों में अल्पसंख्यक समूहों की भयग्रस्तता व अल्पसंख्यक-बहुसंख्यक संघर्ष इसी ग्रंथी की देन है ।

हमारे इस अध्ययन क्षेत्र (सामाजिक-संघर्षण एवं पुलिस) की दृष्टि से हमे सामाजिक संघर्षणों के दूसरे रूपों यथा वर्ग-संघर्ष आदि पर भी गौर करना होगा क्योंकि वर्ग (श्रमिक, किसान, व्यापारी वर्ग, वेतनभोगी मध्यम वर्ग) जिनका गठन आर्थिक आधार पर होता है, अन्तत: सामाजिक समूह ही होते है परन्तु यह देखा गया है कि मनुष्य की वर्गीय-चेतना से अधिक उसकी जातीय चेतना प्रभावी होती है और वह जातीय आधार पर अपनी पहचान रखता है एवं अपने को उसी रूप में व्यक्त करना पसन्द करता है ।

पिछली शताब्दी में मार्क्सवादी विमर्श के इतने प्रसार के बावजूद मनुष्य की आकांक्षाएं और निर्णय जातीय पहचान से ही परिचालित होते हैं । यह प्रवृत्ति विकासशील और पूर्व उपनिवेशिक समाजों

में ज्यादा है जहां सामाजिक देशों ने बडी चालाकी से जातीय पहचानों को उभारा और एक दूसरे के विरूद्ध इस्तेमाल किया अतएव यहाँ सामाजिक संघर्षण का जातीय स्वरूप ही नजर आता है ।

इस प्रकार हमारे अध्ययन क्षेत्र की दृष्टि से भारत में सामाजिक संघर्षण वस्तुत: जातीय संघर्षण ही है । यद्यपि जाति के साथ धर्म, क्षेत्र, भाषा तथा वर्गीय आधार पर अनेक बार संघर्षण की स्थिति देखने को मिलती है । इसी को दृष्टिगत रखकर हम विषय पर चर्चा करेंगे ।

5.6 सामाजिक संघर्षण एवं पुलिस

सामाजिक संघर्षण को एक ऐसी अन्त: क्रिया के रूप में देखा जा सकता है जहां विभिन्न समुदाय या तो सामूहिक संसाधनों के लिए परस्पर प्रतिस्पर्धी होते हैं अथवा अपनी कतिपय अन्य आकांक्षाओं को दूसरे समुदाय पर थोपते रहते हैं ।

सामाजिक संघर्षण को पूरी तरह अवांछित भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि एक बहुसांस्कृतिक जटिल समाज का यह अनिवार्य पहलू है ।

एक जटिल समाज में एक साथ अनेक संघर्षण अनेक स्तरों पर चलते रहते हैं और बहुधा कोई एक समुदाय जो किसी संघर्ष विशेष में किसी अन्य समुदाय/समूह का सहभागी होता है; किसी अन्य संघर्ष में उस समुदाय/समूह का विरोधी भी हो सकता है ।

वस्तुत: एक जटिल समुदाय एक साथ अनेक और कई बार परस्पर विरोधी हितों का संधान कर रहा होता है । इस प्रकार संघर्षण-बहुलता की स्थिति बन जाती है । यह संघर्ष बहुलता समाजविशेष में ध्रुवीकरण को रोकती है और कालान्तर में एक प्रकार का सामाजिक संतुलन बना देती है । अक्सर यह देखा गया है कि इस प्रकार के संघर्षण अन्तत: समाज के विकास में ही सहायक सिद्ध होते है । विभिन्न हित समूहों के बीच परस्पर संघर्षण व शमन की यह प्रक्रिया किसी समाज को और अनुभव संपन्न, उदार व सामंजस्य प्रिय ही बनाती है । हालांकि सामाजिक संघर्षण की परिस्थितियां अत्यंत नाजुक होती है । कोई भी क्षुद्र स्वार्थी समूह इस स्थिति को आसानी से विद्वेषपूर्ण बदल सकता है। अपने ऐतिहासिक विकास-क्रम के लगभग प्रारंभिक बिंदु से ही भारतीय समाज एक बहुसांस्कृतिक और बहु स्तरीकरण युक्त समाज रहा है

ऐसे समाज में संघर्षण निरंतर चलते रहते है और पूर्ण आधुनिक काल तक भारतीय समाज अपनी अन्तर्निहित क्षमताओं द्वारा इनका निराकरण करता आया था ।

एक अर्द्धलोकतांत्रिक-अर्द्ध निरंकुश औपनिवेशिक सत्ता ने इन संघर्षणों का राजनीतिकरण किया। औपनिवेशिक सत्ता का प्रधान हित भारत पर राजनीतिक एवं आर्थिक नियंत्रण बनाये रखना था फलत: इसने भारत के विभिन्न समुदायों को परस्पर उलझा दिया ।

ब्रिटिश सत्ता ने एक भारतीय पहचान की अपेक्षा भिन्न-भिन्न भाषायी, जातीय, सांप्रदायिक और वर्गीय पहचानों पर बल दिया । चूंकि इन आदिम पहचानों के बल पर राजनीति करना भी आसान था अतएव विभिन्न भारतीय समुदायों के कतिपय नेतृत्वकर्ता भी औपनिवेशिक षडयंत्र का जाने-अनजाने हिस्सा बन गए और अपने-अपने समुदायों को दूसरों के विरूद्ध लामबंद करने लग गए । पहली बार भारत में सामाजिक संघर्षण एक समस्या के रूप में यही सामने आया।

दुर्भाग्य की बात है कि स्वतंत्रता के बाद भी इस स्थिति में कोई गुणात्मक परिवर्तन नहीं आया है उल्टे स्थितियाँ और भी भयावह हुई हैं ।

इसका एक बड़ा कारण यह भी है कि भारतीय राजनीति में जन सहभागिता का मूल आधार वही आदिम पहचानें बनी हुई है। आजादी के बाद जहां लोकतंत्र का विस्तार हुआ है बहीं राजनीति जन सहभागिता के आधुनिक आधारो को खोजने में असफल रही है फलत: लोकतंत्र के विस्तार के साथ जाति, धर्म, समुदायों की विशिष्टता और आत्मीयता पर आग्रह बढ़ता जा रहा है ।

यह स्थिति इसलिए और भी पेचिदा हो गई कि हमने (स्वतंत्रता के समय) एक अल्प विकसित, औपनिवशिकृत अर्थव्यवस्था के साथ राष्ट्र निर्माण का कार्य शुरू किया था। इस राष्ट्र निर्माण में हमारा सांविधानिक उद्देश्य एक न्यायपूर्ण समत्ववादी व्यवस्था का निर्माण करना रहा है । ऐसे में सीमित संसाधनों को लेकर जो प्रतिस्पर्धा शुरु हुई अथवा न्यायपूर्ण व्यस्था की लक्ष्यापूर्ति में जो विशिष्ट वर्गो का प्रतिस्थापन हुआ उसने भारतीय समाज के विभिन्न समूहों समुदायों के बीच गहरी कटुता के बीज वो दिये। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि पिछले लगभग 50 वर्षा में विश्व स्तर पर सामाजिक संघर्षणों में वृद्धि हुई है।

संचार, आवागमन आदि में आयी क्रान्ति और आर्थिक गतिविधियों के वैश्वीकृत हो जाने के कारण कई नवीन प्रवृति दृष्टिगोचर हुई है जो कहीं ना कही इन संघर्षो के मूल में है ।

इनमें से एक प्रवृति जो साफ तौर पर दिखाई पडती है वह है बडे पैमाने पर हो आव्रजन ।

बेहतर आर्थिक विकल्पों की तलाश में अल्पविकसित क्षेत्रों/ देशों के निवासी विकसित क्षेत्रों/देशों में जा बसे हैं; फलस्वरूप जातीय समरसता की समस्या पैदा हो गई है ।

जहां अन्त: देशीय प्रव्रजन से बडे शहरों (यथा मुंबई) और विकसित क्षेत्रों पर नये जातीय समूहों को समायोजित करने का दबाव बढा है । वहीं विकसित देशों को अल्प विकसित देशो के निवासियों के प्रव्रजन से इसी तरह की समस्या का सामना करना पड रहा है आजकल इसके सबसे बडे शिकार पश्चिम यूरोप के देश हैं ।

चूंकि इस प्रकार की स्थिति अपरिहार्य है अतएव जातीय संघर्षी को किस प्रकार रोका जाये, यह लम्बे समय से समाजशास्त्रियों की चिंता का विषय बना हुआ है।

कुछ समाजशास्त्रियों ने अमेरिकी समाज के मॉडल पर समायोजन सिद्धांत अथवा मेल्टिंग पीट सिद्धांत को आदर्श स्थिती माना है। इस सिद्धांत के अनुसार अमेरिकी समाज में प्रव्रजित समूह अपनी अपनी विशिष्ट पहचान छोडकर अमेरिकी संस्कृति को अपना लेते है और अमेरिकी समाज के समरूप बन जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ये परिकल्प अति उत्साह और जल्दबाजी में किये गये निरीक्षणों का प्रतीफलन है ।

अव्वल तो कोई भी समुदाय अपनी निजी पहचान को नहीं छोड़ता उल्टे भिन्न और शक्तिशाली सांस्कृतिक समूह के समक्ष अपनी पहचान को लेकर और अधिक आग्रहशील हो जाता है ।

दूसरे अमेरिकी समाज स्वयं जातीय संघषों की चुनौती से मुक्त नहीं है अतएव यहां अमेरिकी समाज के ढांचे पर निकाले गये निष्कर्ष कतई उपयोगी नहीं हो सकते ।

इसके विपरीत यथार्थवादी विचारक यह मानकर चलते हैं कि सांस्कृतिक विभेद व विभिन्नताओं का यथोचित सम्मान किया जाना चाहिए और जातीय समूहों को एकरूप बनाने के किसी भी प्रयास की जगह विभिन्न जातीय समूहों की विशिष्टता व विलक्षणता को संरक्षित किया जाना चाहिए । यह न केवल समाज को सांस्कृतिक रूप से समृद्ध व वैविध्यपूर्ण बनाता है वरन् उसे उदार व लचीला भी बनाता है। वस्तुत: हम भारतीय इसी को आदर्श स्थिती मानते हैं पिछले 4000 वर्षो में विभिन्न जातीय समूहों का खुले हृदय से स्वागत करके हमने समाज को और वैभवपूर्ण बनाया है और संभवत: इसलिए

आधुनिक भारत के निमार्ताओं ने संवैधानिक उपबंधों के माध्यम से सांस्कृतिक विलक्षणताओं को संरक्षित करने का प्रयास किया है ।

अब संपूर्ण संदर्भ के साथ हम भारत में सामाजिक संघर्षण की समस्या और पुलिस की भूमिका पर चर्चा करेंगे।

जैसा कि हम पहले भी चर्चा कर चुके हैं कि भारत अत्यधिक विविधता वाला देश । एक स्तर पर ये विविधताएं भौगोलिक-क्षेत्र विषयक है जो खान-पान, शारीरिक बनावट आदि से व्यक्त होती हैं तो दूसरे स्तर पर वैचारिक-धार्मिक । यदि गहराई से देखा जाये तो भारत वस्तुतः विविधताओं में भी विविधता वाला देश है जहां भाषा-बोलियों में धर्म विभिन्न पंथों में और जातीयां विभिन्न उपजातीयो में बंटी हुई हैं ।

हम यह पाते हैं कि पिछले लगभग छः दशकों का भारतीय इतिहास सामाजिक संघर्षणों के निरंतर बढते जाने का इतिहास भी है । हालांकि भारतीय लोकतंत्र समस्त प्रकार के विरोधी, प्रतिस्पर्धी स्वरों को पर्याप्त सम्मान दे रहा है फिर भी देखा गया है कि ये संघर्ष कई बार बेहद कटु व हिंसक हो उठते हैं ।

इनमें धार्मिक-सांस्कृतिक आधार पर उठे संघर्ष ज्यादा चिंताजनक रूप लेते जा रहे हैं । अब तो ऐसे क्षेत्र भी साम्प्रदायिक हिंसा के केन्द्र बन जाते हैं जो ऐतिहासिक रूप से साम्प्रदायिक सद्भाव व सामंजस्य के साक्षी रहे हैं । दूसरे अपनी सांस्कृतिक-सामाजिक पहचान और सामुदायिक मांगों को लेकर कुछ ऐसे समुदाय भी निरंतर अनुदार, हिंसक व उग्र होते जा रहे हैं जो भारत में परंपरागत रूप से शांतिप्रिय अहिंसक माने जाते रहे हैं ।

भारतीय राजनीति जिस प्रकार जाति-धर्म आधारित दबाव समूहों को समादृत कर रही है उससे इस प्रकार की प्रवृत्तियों को लगातार बल मिल रहा है।

भारतीय समाज के ये आंतरिक संघर्ष हालांकि संपूर्ण समाज के लिए बडी चुनौती हैं फिर भी विधि व अवस्था की नियामक होने के कारण प्राथमिक स्तर पर भारतीय पुलिस के लिए सबसे बड़ी चुनौती है ।

यह कहना तो सम्यक नहीं होगा कि इस प्रकार की घटनाओं को नियंत्रित करने में पुलिस की सफलता का क्या रिकार्ड है परन्तु यह संकलित करना ही पर्याप्त है कि इस प्रकार की घटनाओं में पुलिस निष्पादन को लेकर भारी असंतोष है।

पुलिस सामाजिक संघर्षणों में अपने कार्य निष्पादन को लेकर कटु आलोचना का शिकार होती रही है । यहां तक कि उस पर गैर पेशेवर रवैया अपनाने का आरोप भी लगता रहा है । यह और चिन्ताजनक तब हो जाता है जब हम पाते हैं कि स्वयं पुलिस बल के कुछ बडे अधिकारी भी यह मानते रहे हैं और अपने इस विचार को सार्वजनिक भी करते रहे हैं ।

हालांकि यहां यह बेहिचक कहा जा सकता है कि भारतीय पुलिस अपने मूल चरित्र में पूर्णतः पेशेवर पुलिस बल है । एक अर्द्धनिरंकुश औपनिवेशिक सत्ता के अधीन कार्य करने का अनुभव इसके साथ है; जहां इसने सफलता पूर्वक राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान विधि व व्यवस्था का अनुरक्षण किया है ।

लोकतांत्रिक समाज की कतिपय मर्यादाओं के बावजूद भारतीय पुलिस अपने कार्य निष्पादन में पूर्णतः पेशेवर है यद्यपि पुलिस के कुछ अनुषंगी अंग यथा पी0ए0सी0 आदि इस प्रकार की आलोचना

का आधार बन जाते हैं इसलिए हमें इस प्रकार के बलों की गठन-प्रक्रिया का गंभीर मूल्यांकन करना चाहिए ।

निश्चित रूप से सामाजिक संघर्षणों को रोकना पुलिस के लिए अत्यंत दुष्कर सिद्ध होता रहा है । स्वतंत्रता के बाद सामाजिक संघर्षणों के इतिहास व स्वरूप पर दृष्टिपात करें तो हम पायेंगे कि विधि-व्यवस्था की नियामक के रूप में पुलिस की अधिकांश ऊर्जा का क्षय इन्हीं संघर्षणों में हो जाता है । भारतीय पुलिस को जातीय संघर्ष के लगभग सभी रूपों का सामना करना पड़ा है ।

5.6.1 भाषायी संघर्ष:-

यह तो सर्वविदित है कि हिंदी को लेकर गैर हिन्दी राज्यों विशेषकर दक्षिण भारत में जब-तब सामाजिक तनाव की स्थिति बन जाती है परन्तु दूसरे भाषा-भाषी भी एक दूसरे के प्रति आशंका ब अविश्वास से ग्रस्त है ।

1972 में आसाम में बांग्ला भाषा को परीक्षाओं में उत्तर का माध्यम स्वीकार कर लेने पर गंभीर विवाद हो गया था । इसी प्रकार बेलगांव क्षेत्र में मराठी भाषी समूह कन्नड़ भाषी समूह से प्रतिस्पर्धा रखते हैं जो अक्सर हिंसक हो जाती है।

5.6.2 क्षेत्रवाद

प्रव्रजन के कारण नये जातीय समूहों के आगमन से स्थानीय समूह सदैव आशंका और अविश्वास के वातावरण में रहते हैं । अभी हाल ही में आसाम में बिहारियों पर हुए हमले क्षेत्रवाद से उपजी हिंसा के ताजा उदाहरण हैं ।

कमोवेश ऐसी ही स्थिति मुंबई की है जहां मराठी ब गैर मराठियों के बीच तनाव होता रहता है ।

5.6.3 जाति संघर्ष :

जाति आधारित तनाव दो कारणों से होता है :-

1 जाति आधारित भेदभाव (पदानुक्रम) के कारण

2 स्वजातियों के हित में पक्षपात पूर्ण मदद जिसे लोकप्रिय संदर्भ में जातिवाद नाम दिया जाता है ।

भारतीय कस्बों/मंझोले शहरों व ग्रामीण अंचलों में आज भी जाति आधारित पदानुक्रम विद्यमान है और इससे परिचालित दबंग लोग जब दलितों को घोड़ी पर बैठने या सार्वजनिक कुँए इत्यादि के उपयोग से रोकते हैं तो तनावपूर्ण स्थिति बन जाती है । अक्सर इन्हीं बातों पर हिंसक संघर्ष की शुरुआत भी हो जाती है । पिछले वर्ष (2006) हरियाणा में कुछ जगह इसी कारण से हिंसक संघर्ष हो उठा था ।

5.6.4 जनजातियां और अन्य:-

भारत में अनेक जनजातियां भी निवास करती हैं ये अपनी जीवनशैली, दृष्टिकोण इत्यादि को लेकर बाकि समाज से पूर्णत: पृथक होते हैं । ये अपनी आदिम परंपराओं ब जीवन शैली को सुरक्षित रखना चाहते हैं ।

जन जातियों को किसी भी तरह समरूप समूह नहीं बनाया जा सकता । चूंकि अधिकांश जनजातियां क्षेत्र विशेष में सिमटी हैं अतएव जब भी बाहरी लोगों का इनके क्षेत्र में दखल बढता है; संघर्ष की स्थिति बन जाती है । पूर्वोत्तर के राज्यों में संघर्ष का मूल कारण यही है ।

5.6.5 धार्मिक संघर्ष :-

धार्मिक संघर्ष, जिन्हें आमतौर पर सांप्रदायिक दंगों के रूप में जाना जाता है अपने चरित्र में व्यापक और भयावह है । भयावहता का अनुमान तो हम इसी से लगा सकते है कि 1947 में देश के विभाजन के समय विभत्स नरसंहार का कारण सांप्रदायिक विद्वेष था ।

अब भी विगत 60 वर्षो के स्वतंत्र इतिहास में हमने लगभग हर वर्ष सांप्रदायिक हिंसा का सामना किया है । विभिन्न सामाजिक संघर्षो में सांप्रदायिक संघर्ष इसलिए भी सबसे गंभीर समस्या है कि ये किसी एक क्षेत्र विशेष तक सीमित नहीं हैं जमशेदपुर, भिवाडी, रांची इत्यादि में नियमित रूप से दंगे हुए ।

80 के दशक में सांप्रदायिकता का दूसरा जार उठा और उत्तर प्रदेश ब बिहार के शहरों में यह हिंसा ज्यादा देखने को मिली। इनमें उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद ब बिहार के भागलपुर के दंगे अपनी भयावहता के लिए कुख्यात रहे हैं ।

दंगों के सरूप के अध्ययन पर यह पाया गया कि पहले स्वयंभू नेताओं व धार्मिक रहनुमाओं ने अलगाववाद व ध्रुवीकरण को बढावा दिया और बाद में झूँठी अफवाह के आधार पर ही भीषण दंगों की शुरुआत हो गई ।

ऊपरी स्तर पर देखने पर दंगों का बडा सरलीकृत कारण सामने आता है परन्तु गहन विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि सांप्रदायिकता का इस्तेमाल एक विचारधारा की तरह होता है जिसका मूल प्रयोजन समुदाय विशेष के आर्थिक-राजनीतिक हितों को साधना होता है अन्य दंगे जहां भाषा-क्षेत्र आदि से उपजे संघर्ष किसी क्षेत्र विशेष में ही नजर आते हैं सांप्रदायिक दंगों की मौजूदगी हमें हर जगह नजर आती है ।

चूंकि भारत में धार्मिक आधार पर जनसंख्या का वितरण इतना मिश्रित है कि सांप्रदायिकता की समस्या भारत' के प्रत्येक राज्य एवं शहर की समस्या है । विगत 60 वर्षो में देश का कोई राज्य, कोई बडा शहर इन दंगों से अछूता नहीं बचा है।

भारतीय पुलिस लगभग नियमित रूप से सामाजिक संघर्षण के इसी रूप का सामना करती है अतएव पुलिस की भूमिका के अध्ययन से पूर्ण सांप्रदायिक दंगों के स्वरूप पर चर्चा आवश्यक है ।

भारत में 60 के दशक से ही सांप्रदायिक दंगों में तेजी आयी । शुरुआत में मंझौले आकार के शहरों में सांप्रदायिक हिंसा ज्यादा नजर आयी ।

1980 में मुरादाबाद के दंगों का तात्कालिक कारण तो ईद की नमाज के समय सुअर का घुस आना था परन्तु गहराई से पड़ताल करने पर ज्ञात हुआ कि यह वस्तुत: आर्थिक और व्यवसायगत प्रतिस्पर्द्धा का परिणाम था । पीतल के सामान के निर्माण के लिए मशहूर इस शहर में परंपरागत रूप से मुस्लिम कारीगर इस व्यवसाय से जुड़े हुए हैऔर विभाजन के बाद पाकिस्तान से आकर बसे पंजाबी व्यापारी भी इसी व्यवसाय से जुड कर व्यापार करने लगे है । कारीगर-व्यापारी गठजोड़ में व्यवधान तब आने लगा जब पश्चिमी एशियाई देशों से मिले एक मुश्त आदेशों के बलबूतों पर कुछ मुस्लिम कारीगर स्वयं व्यापारी बन गए ।

जाहिर है कि इस रूपान्तरण का मूल आधार भी सांप्रदायिक था । पश्चिमी एशियाई देशों में पैठ बनाने का मूल कारण कारीगरों का मुस्लिम होना था । इसी कारण पाकिस्तान से आव्रजित व्यापारी भी धार्मिक विभिन्नता को लेकर अतिरिक्त रूप से आशंकित थे । फलत: व्यापारिक प्रतिस्पर्द्धा ने सांप्रदायिक रंग ले लिया और अन्तत: दंगे गए ।

80 के दशक में हिंदू-सिख दंगों का अध्ययन किया जाये तो यह साफ हो जाता है कि सांप्रदायिकता एक विचारधारा है और दंगे उसकी रणनीति । पूर्व में हमने जातीय विभिन्नताओं पर जितनी भी चर्चा की है हिन्दू-सिख उनमें से किसी में भी फिट नहीं बैठते । पंजाब में हिंदू-सिख पूर्णत: समीकृत है । एक दूसरे से वैवाहिक संबंध रखते हैं । उनकी एक बोली, एक पहनावा व एक समान खान पान हैं । स्वतंत्रता के बाद पंजाब की राजनीति के ध्रुवीकरण से यह समस्या पैदा हुई ।

पुलिस इन संघर्षो में जिस प्रकार प्रभावी भूमिका निभा सकती है इसके लिए पुन: हमें संघर्षो के स्वरूप को एक बार देखना होगा । मोटे तौर पर समस्त संघर्षो की शुरुआत का एक जैसा स्वरूप होता है यहां हम सुविधा की दृष्टि से सांप्रदायिक दंगो के पैटर्न को देखेंगे।

सांप्रदायिक दंगों की भूमिका विभिन्न धर्मावलंबियों के बीच परस्पर पैदा हुए अविश्वास के रूप में बनती है । अविश्वास के कारण स्थानीय घटना से लेकर राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं तक कुछ भी हो सकता है । जैसे विगत कुछ वर्षो में अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद के बढने का असर स्थानीय स्तर पर अपने अविश्वास के रूप में सामने आ रहा है ।

धार्मिक नेताओं की दृष्टि अक्सर संकीर्ण व उदारता विरोधी होती है अतएव उनका दृष्टिकोण अविश्वास में वृद्धि ही करता है । उसका लाभ स्थानीय स्तर के कुछ स्वयंभू नेता उठाते हैं जिसकी क्षुद्र महत्वाकांक्षा आमतौर पर स्थानीय स्तर पर अपनी राजनीतिक पहचान बनाना होती है । कई बार तो स्थानीय नौकरशाही में अपना महल बढाने के लिए भी ये स्वयंभू नेता अपने समुदाय में असंतोष ब विद्वेष को बढावा देते हैं ।

इस परस्पर अविश्वास व विद्वेष के माहौल में छोटी सी घटना अफवाह के रूप में बड़ी घटना बन जाती है । गली में बच्चों की लडाई, पडौसी दुकानदारों के झगड़े, सडक पर मामूली दुर्घटना और लड़कियों से छेड़छाड़ आदि को बढा-चढा कर व्यक्त किया जाता है । मुरादाबाद, मेरठ, भागलपुर के दंगे इस बात का सबूत हैं ।

5.7 सारांश

कम संख्या बाले लोग अल्पसंख्यक और अधिक संख्या बाले लोग बहुसंख्यक कहलाते हैं। इसमें जनसंख्या के अतिरिक्त अन्य असमानताएं जैसे- आर्थिक रूप से, राजनैतिक रूप से प्रभावशाली होना भी होती हैं । कई बार यह भी देखा गया है कि अल्पसंख्यक वर्ग आर्थिक और राजनैतिक रूप से अधिक प्रभावशाली होते हैं भारतीय समाज प्रारम्भिक काल से ही बहु सांस्कृतिक, बहु स्तरीकरण वाला समाज रहा है । ब्रिटिश सत्ता ने इस देश की पहचान को भाषायी, जातीय, साम्प्रदायिक और वर्गीय आधार पर विभाजित कर दिया । उसी का परिणाम था सामाजिक संघर्षण जो आज भी समाज में फैला हुआ है ।

भारतीय समाज में व्याप्त संघर्षण पुलिस के लिए एक बड़ी चुनौती साबित हो रहे हैं क्योंकि समाज में शांति व्यवस्था बनाए रखना पुलिस का कर्तव्य है । भारतीय पुलिस पूर्णत: एक पेशेवर पुलिस बल है जो विधि व व्यवस्था का अनुसरण करती आ रही है । हालांकि इस पर आरोप भी लगते रहे

हैं । साम्प्रदायिक दंगों के लिए एक छोटी सी अफवाह की चिंगारी का कार्य करती है और भयावह रूप धारण कर लेती है । लेकिन भारतीय पुलिस के पास काफी अनुभव है इन पर अंकुश लगाने का ।

5.8 बोध-प्रश्न

(1) संघर्षण की परिभाषा समझाइए ।

(2) संघर्षण के स्वरूप एवं कारणों की व्याख्या कीजिए ।

(3) सामाजिक संघर्शण में पुलिस की भूमिका पर एक लेख लिखिए ।

(4) धार्मिक संघर्ष की विवेचना कीजिए ।

इकाई 6

सामाजिक समस्याएँ I : पुलिस एवं सामाजिक व्यवस्थापन

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य
6.1 प्रस्तावना
6.2 सामाजिक परिवर्तन एवं प्रक्रियाएं
6.3 भारत में सामाजिक व्यवस्थापन
6.4 सामाजिक व्यवस्थापन की आवश्यकता
6.5 सामाजिक समस्याएं और व्यवस्थापन
6.6 भारतीय पुलिस और व्यवस्थापन के उपाय
6.7 सारांश
6.8 बोध प्रश्न

6.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप -

1. सामाजिक परिवर्तन का समाज के विभिन्न घटकों पर पडने बाने प्रभाव को समझ पायेंगे ।
2. भारत के सामाजिक व्यवस्थापन के बारे में जानकारी हासिल कर पायेंगे ।
3. सामाजिक व्यवस्थापन की आवश्यक पढ़ने वाले कारणों के बारे में जान पायेंगे ।
4. सामाजिक अवस्थापन में पुलिस की भूमिका के बारे में समझ पायेंगे ।
5. सामाजिक समस्याओं में निराकरण में पुलिस की भूमिका का महत्व समझ पायेंगे ।
6. सामाजिक व्यवस्थापन के लिए पुलिस द्वारा अपनाये गये उपायों के बारे में जानकारी हासिल कर पायेंगे ।

6.1 प्रस्तावना

इस इकाई में यह समझाया गया है कि समाज में घटित होने बाले सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तन समाज के विभिन्न घटकों को प्रभावित करते हैं । सामाजिक परिवर्तनों से सामाजिक संबंधों में परिवर्तन आता है, संयुक्त परिवार टूटकर एकाकी परिवार में परिवर्तित होने लगते है, धर्म की नियंत्रणकारी भूमिका में कमी आने लगती है । इन्हीं परिवर्तनों से अपराध बढ़ने लगते है । यातायात एवं संचार के विकास के साथ-साथ आधुनिकीकरण, औद्योगीकरण एवं नगरीकरण का विकास होने लगता है इनसे जाति-व्यवस्था, पर विभिन्न धर्मों पर, भाषा पर, रहन-सहन पर गहरा प्रभाव पडता है । इनके सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों तरह के प्रभाव पड़ते हैं । नकारात्मक प्रभाव से समाज में अपराध बढ़ने लगते हैं ।

अपराधों को रोकने में पुलिस की महती भूमिका होती है । सामाजिक अपराधों की प्रकृति अन्य अपराधों से थोड़ी भिन्न होती है । इनके निराकरण में पुलिस की भूमिका भी भिन्न होती है, क्योंकि इन अपराधों को पुरातनपंथी सामाजिक - सांस्कृतिक अस्मिता का प्रतीक बना देते हैं जैसे सत्ती प्रथा,

छुआछूत, बालविवाह इत्यादि । सामाजिक अपराधों को रोकने के लिए पुलिस ने भी अन्य तरीके अपनाये हैं और इनके प्रभाव भी परिलक्षित हुए हैं ।

समाज एक जटिल प्रमेय है जिसे सिद्ध करना कठिन है स्थूलत: हम समाज को मानव के अन्योन्याश्रित संबंधों का जाल कह सकते हैं । मानव समाज की एक बडी विशेषता इसके घटकों की पारस्परिक निर्भरता और उनके बीच अनवरत चलने बाली अन्त: क्रिया है । इस अन्तक्रिया से समाज निरंतर परिवर्तित होता रहता है और इन्ही अनवरत परिवर्तनों के फलस्वरूप मानव समाज एक घुमन्तु समुदाय से औद्योगिक समुदाय के रूप में रूपान्तरित हो गया है । परन्तु समाज का प्रत्येक परिवर्तन विकासोन्मुख नहीं होता, कुछ परिवर्तन समाज के आदर्श में न्यूनाधिक विचलन को भी इंगित करते हैं । वस्तुत: सामाजिक समस्याएं एवं सामाजिक अपराध समाज के तय आदर्श व मापदंडों में विचलन से उत्पन्न होते हैं ।

सामाजिक समस्याएँ एवं सामाजिक परिवर्तन- जुआखोरी, नशाखोरी, पारिवारिक हिंसा, बाल विवाह, छुआछुत, वैश्यावृति, आदर्श व्यवस्था से एक विपथन हैं और इसीलिए ये सामाजिक अपराधों की श्रेणी में रखे जाते हैं । उपर्युक्त अपराध सामाजिक अपराध इसलिए भी हैं क्योंकि ये संपूर्ण समाज को प्रभावित करते हैं । नशा, लैंगिक अपराध, वर्गीय विभेदीकरण इत्यादि कहीं न कहीं राष्ट्रीय जीवन में प्रत्येक घटक की पूर्ण सहभागिता में बाधक बनते हैं फलस्वरूप संपूर्ण सामुदायिक जीवन का ह्रास होता है । अपनी इस व्यापक प्रभावान्वित के कारण ही ये सामाजिक अपराध कहलाते है ।

6.2 सामाजिक परिवर्तन व प्रक्रियाएं

जैसा कि पूर्व में स्पष्ट किया गया है कि सामाजिक परिवर्तन के क्रम में ही बह स्थिति उत्पन्न होती है जो सामाजिक अपराधों को जन्म देती है । जब कोई समाज तेज आर्थिक, राजनीतिक परिवर्तनों से गुजरता है तो समाज के विभिन्न घटकों पर इन परिवर्तनों का अलग-अलग प्रभाव पडता है, कुछ इन पीरवेशगत परिवर्तनों से तालमेल बैठा लेते हैं । फलत: एक सांस्कृतिक अंतराल की स्थिति पैदा हो जाती है और कतिपय विघटनकारी शक्तियां जन्म लेती है । बढते यौन अपराध, स्त्रियों पर होने वाले अत्याचार आदि इन्हीं परिस्थितियों का परिणाम है । दूसरे परंपरागत समाजों के आधुनिक समाजों के रूप में रूपान्तरण की प्रक्रिया में धर्म की नियंत्रणकारी भूमिका का ह्रास होता है फलस्वरूप परंपरागत सांस्कृतिक मूल्यों का भी विघटन हो जाता है । सीधा असर समाज की आधारभूत इकाई परिवार पर पडता है । तेजी से बढ़ती पारिवारिक हिंसा, बढते विवाह विच्छेद, संयुक्त परिवारों के छूने से फैला घोर व्यक्तिवाद इसी के परिणाम हैं । इन उपर्युक्त परिस्थितियों ने भी कतिपय सामाजिक अपराधों को जन्म दिया है । नशाखोरी, युवाओं में बढती हिंसक वृति, पतनशील जीवनशैली को कुछ सीमा तक हम परंपरागत पारिवारिक जीवन के अवसान से जोड़ सकते हैं । भारतीय समाज में संरचनात्मक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन के प्रभाव सरूप सामाजिक संबंधों के संजाल में व्यापक बदलाव आया है । जाति, नातेदारी, परिवार और व्यावसायिक समूह संरचनात्मक प्रक्रियाओं से प्रभावित हुए है । भारतीय संयुक्त परिवार का रूपान्तरण एकाकी परिवार के रूप में इन्हीं संरचनात्मक परिवर्तन के परिणामस्वरूप हुआ हैं । पारंपरिक समाज में संयुक्त परिवार अपनी सामूहिक शक्ति के कारण परिवार के सदस्यों, उनकी शिक्षा, व्यवसाय एवं महत्वपूर्ण निर्णयों पर अत्यधिक नियंत्रण रखता है । परन्तु समाज में व्यापक आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक परिवर्तनों के परिणाम स्वरूप संयुक्त परिवार का विघटन एकाकी परिवार में होने लगा है । इस कारण से एकाकी परिवार के रूप में परिवर्तन के बाद ही तमाम कार्य

विशेष संगठनों जैसे स्कूल, आर्थिक संगठन, सरकारी विभाग और दूसरे माध्यमों द्वारा किए जाने लगे हैं । भूमिकाओं की भिन्नताओं के परिणाम स्वरूप संरचनात्मक परिवर्तन सामाजिक जीवन के लगभग सभी क्षेत्रों में महसूस किये जा रहे हैं । इस परिवर्तन का समाज पर सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभाव दिखता है । सामाजिक परिवर्तन की संरचनात्मक प्रक्रिया के सन्दर्भ में औद्योगीकरण, पाश्चिमीकरण और आधुनिकीकरण के कारण समाज में व्यापक बदलाव आया है । औद्योगीकरण के उपरान्त हुई आर्थिक प्रगति ने सामाजिक व्यवस्था, शक्ति, संबंधों एवं स्थिति में अत्यधिक संरचनात्मक परिवर्तन किए है । महिलाओं की भागीदारी न केवल अब परिवार एवं बच्चों के पालन-पोषण तक सीमित है अपितु परिवार के अलावा विभिन्न प्रकार के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक संगठनों मे उपस्थिति दर्ज करा रही है । यातायात एवं संचार के विकास के परिणामस्वरूप समाज के विभिन्न वर्गों में सकारात्मक एवं नकारात्मक अंतरक्रियाएं देखने को मिल रही हैं । भारतीय जाति व्यवस्था में इसका विशेष प्रभाव देखा जा सकता है । नगरीकरण की प्रक्रिया ने भी समाज में विभिन्न धर्म, जाति, भाषा, रहन-सहन के क्षेत्र में लोगों को एक दूसरे से न केवल मिलाया है अपितु समाज की संरचना पर गहरा प्रभाव छोडा है । नगरीकरण ने व्यवसायिक विविधता के परिणामस्वरूप संयुक्त परिवार के ढांचे में परिवर्तन किया है । पांरपरिक परिवार नियमों में ढील आई है तथा अंतवैयक्तिक संबंध अधिक औपचारिक होते जा रहे है । शहर का निवासी ऐसे संजाल में सहभागी होता है जिसमें कई जाति के लोग शामिल होते हैं । विवाह और संपत्ति के हस्तान्तरण के मामलों में न्यायिक सुधार से परिवार के पारंपरिक ढांचे का आधार प्रभावित हुआ है । उसने परिवार में समानता के सिद्धान्त को लागू किया है, जिससे महिलाओं की स्थिति छुरी है । इसी प्रकार जाति ने कई प्रकार्यात्मक भूमिकाएँ प्राप्त की है तथा सहभागी चरित्र ग्रहण किया ह। दलितों में नई चेतना जागी है । राजनीति में जातियों की बढ़ती भागीदारी इस ओर संकेत करती है । साथ ही भूमि सुधारों के कारण कृषि संबंधी सामाजिक सरंचना में भी सरंचनात्मक सुधार हुआ है ।भारत में आधुनिकीकरण ने पारंपरिक संस्थाओं को पूरी तरह नहीं त्यागा है । योगेन्द्र सिंह नेमाडर्नाइजेशन इन इण्डियन ट्रेडिशन में एक सत्य को सही ढंग से उजागर किया है । बे लिखते है पारंपरिक संस्थाओं का स्वरूप अक्षुण्ण हो सकता है परन्तु आधुनिकीकरण को समाहित करने के लिये उनमें तात्विक रूप से भारी बदलाव आ सकता हैं । इस अर्थ में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया ने भारत में एक विशिष्ट रूप धारण किया है । पारंपरिक संस्थाओं ने परिवर्तन की प्रक्रिया के दौरान अनुकूलन की क्षमता को प्रदर्शित किया है ।

6.3 भारत में सामाजिक व्यवस्थापन

ऐतिहासिक दृष्टि से प्राचीन भारत में समानता के सिद्धान्त पर आधारित कोई सार्वजनिक न्यायिक व्यवस्था नहीं थी । प्राचीन भारत में कानून और धर्म के बीच गहरा संबंध था । कानून के नियम धर्म के नियमों से भिन्न नहीं थे । यह कहा जाता था कि सभी कानून धर्मशास्त्रों में निहित हैं । न्यायिक व्यवस्था जातियों और वर्गो की सामाजिक स्थिति पर आधारित था । भारतीय दंड संहिता एवं सिविल दंड प्रक्रिया के निर्माण ने एक मजबूर न्यायिक व्यवस्था को जन्म दिया। यह कानून व्यवस्था सिर्फ आपराधिक न्याय तक ही सीमित नहीं थी इसने लोगों के घरेलू एवं व्यक्तिगत जीवन को भी अपनी सीमा में समेट लिया हैं । कई सामाजिक कानून प्रयोग में आए जो सामूहिक सौदेबाजी, सामाजिक सुरक्षा और रोजगार अनुबंध जैसे क्षेत्रों को अपने में समाहित करते थे । प्रथागत कानूनों को तार्किक रूप देने के क्रम में कानूनों को निरंतर वर्गीकृत रूप देने की परंपरा शुरू हुई । इसने कानून और धर्म

के बीच अंतराल को बढाया । उन्नीसवीं शताब्दी में भारतीय समाज अमानवीय प्रथाओं एवं रीति-रिवाजों में पूरी तरह जकडा हुआ था । पुरे देश में छुआछुत की प्रथा का बोलबाला था । महिलाओं की स्थिति सर्वाधिक निम्न थी । बाल-विवाह, विधवा विवाह निषेध तथा सती प्रथा जैसी कुरीतियों ने औरतों को जीवनपर्यन्त पीड़ा एवं अपमान सहने के लिए बाध्य किया परन्तु इन अमानवीय रीति-रिवाजों को समाज सुधारकों ने चुनौती दी और भारतीय अंग्रेजी सरकार ने समाज सुधार से संबंधित कई कानून बनाए ।

भारत में सामाजिक परिवर्तन की प्रकृति एवं विस्तार पर स्वतंत्रता के पश्चात् हुए क्रांतिकारी सामाजिक विधानों का बडा प्रभाव पड़ा है । वे अर्थव्यवस्था, राज्य व्यवस्था, व्यापार तथा वाणिज्य से लेकर विवाह, परिवार और उत्तराधिकार तक के क्षेत्र को अपने में समाहित करते हैं । वास्तव में मानव जीवन का ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है जो विधानों द्वारा प्रभावित न होता हो परन्तु आजादी के पश्चात बनाए गए विधानों की संख्या इतनी अधिक है कि उन सभी पर यहां चर्चा नहीं हो सकती इसलिये हमने कुछ प्रमुख विधानों का चयन सामाजिक परिवर्तन में उनकी भूमिका को उभारने के लिये किया है । सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिए कानूनों को पास किया गया है । भारतीय संविधान के सत्रहवें अनुच्छेद के अन्तर्गत छुआछूत का रोक है तथा किसी भी रूप में इसका आचरण दंडनीय है । बाद में एक विस्तृत कानून छुआछूत (अपराध) अधिनियम 1955 पास हुआ । इस कानून को संशोधित करके नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1975 के रूप में लाया गया । इस अधिनियम के अनुसार एक अछूत समझा जाने बाला व्यक्ति धार्मिक स्थलों सहित सभी सार्वजनिक स्थलों पर आ-जा सकता है । यद्यपि यह विधान छुआछूत के अमानवीय रिवाज को पूरी तरह से नहीं मिटा पाया लेकिन इसने निश्चित रूप से जाति प्रथा के पूर्वाग्रह की जड पर चोट की है ।

6.4 सामाजिक व्यवस्थापन की आवश्यकता

विकासोन्मुख देशों में (जिनमें भारत भी एक है) परिवेशगत (आर्थिक-राजनीतिक) परिवर्तनों की गति तेज है फलत: सामाजिक असामंजस्य की परिस्थितियाँ बढ रही हैं और उसी अनुपात में सामाजिक अपराध बढ रहे है । इस संदर्भ में भारत की स्थिति और भी जटिल है । किसी भी अन्य समाज की तुलना में भारतीय समाज ज्यादा बहुलतावादी है । यह वर्गीय ब सांस्कृतिक आधार पर बहुस्तरीय समाज है । जब ऐसे समाज का आधुनिक-औद्योगिक -व्यक्तिवादी -समाज के रूप में रूपान्तरण होता है तो बहुत सारी चुनौतियां सामने आती हैं जाहिर है इनमें से अनेक सामाजिक अपराध के रूप में भी होती है । बहुधा यह प्रश्न उठाया जाता है कि क्या सामाजिक अपराधों पुलिस नियंत्रित कर सकती है और दूसरे इसके लिए सामाजिक अवस्थापन की क्या भूमिका हो सकती है । पहले प्रश्न के उदर में तो यह निःसंदेह कहा जा सकता है कि सामाजिक अपराधों को नियंत्रित किया जा सकता है । विगत 150 बर्षों के काल खंड में हमने अनेक सामाजिक अपराधों को समाज किया है सतीप्रथा, कन्यावध प्रथा इसके ज्वलंत उदाहरण है।

सामाजिक अपराधों के संदर्भ में पुलिस की भूमिका का प्राभावांकन थोडा जटिल प्रश्न है । सामाजिक अपराध अन्य अपराधों से प्रकृत्याभिन्न होते हैं । इनके निराकरण में पुलिस की बह भूमिका या चरित्र नहीं हो सकता, जो अन्य अपराधों के नियंत्रण में सामने आता है अर्थात पुलिस अपने कठोर दमनात्मक रूप में मात्र कानून का सहारा लेकर सामाजिक अपराधों पर नियंत्रण नहीं पा सकती हे । रक्षा तो ऐसा होता है कि सामाजिक विकास में जब हम किसी पुरानी प्रथा को अमानवीय मानकर उसे अपराध के रूप में देखते है, समाज के कुछ पुरातनपंथी वर्ग उसे सांस्कृतिक अस्मिता का प्रतीक बना

देते हे । भारत में सतीप्रथा, छुआछूत, बाल-विवाह जैसे सामाजिक अपराधों का प्रभावी हल संपूर्ण समाज को साथ लेकर चलने में ही संभव है । यहां कानून को थोपने की तुलना में सहमति ब समझाइए को ज्यादा प्राथमिकता दी जानी चाहिए । हमें नहीं भूलना चाहिये कि लोकमान्य तिलक ने 19 दीं शताब्दी के अंत में सामाजिक अपराधों के विषय में यही मत व्यक्त किया था और कालान्तर में रानाडे जेसे समाज सुधारक भी इस मत से सहमत पाये गये थे । फिर सामाजिक अपराधों के परिप्रेक्ष्य में विधि की क्रियान्वयन पुलिस की क्या भूमिका हो सकती है? क्या परंपरागत नियंत्रणकारी, नियमनकारी भूमिका से काम चल सकता है? यहां विदितथ्य है कि पॉलिसी (राजव्यवस्था) में पुलिस का आविर्भाव राज्य की सुरक्षात्मक ब दण्डात्मक गतिविधियों को संपन्न करने के लिए हुआ था।

इसी परिपाटी को इंगित करते हुए एवं भारतीय संविधान मे परिलक्षित कल्याणकारी राज्य की परिकल्पना को मूर्त रूप देने के लिए केन्द्र सरकार एवं विभिन्न राज्य सरकारों ने सामाजिक व्यवस्थापन की दिशा में कई कानून बनाए । भारतीय संविधान में परिलक्षित समानता, स्वतंत्रता व न्याय की राजनीतिक एवं सामाजिक विचारधारा को समाज में मूर्त ब यथार्थ रूप देने के लिए ऐसे कई कदम उठाए गए जिनका प्रभाव न केवल दूरगामी सामाजिक परिवर्तन के रूप में देखा जा सकता है बल्कि समाज में प्रचलित सामाजिक कुरीतियों एवं वर्ग एवं जातिगत आधारित विषमताओं को समाप्त करने के लिए भी प्रयोग में लाया गया । इन प्रयासों ने महिलाओं एवं बच्चों की स्थिति में बहुत सुधार किया । विशेष विवाह अधिनियम 1954, हिन्दु विवाह अधिनियम 1955, हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956 तथा दहेज विरोधी अधिनियम 1961 ने हिन्दू समाज में संरचनात्मक परिवर्तन शुरू किए । इनमे से बच्चों के अधिकारों का संरक्षण एवं कल्याण के लिए भी कई विधानों को पारित किया गया । इनमें से मुख्य कानून है:- हिन्दू एडीप्टेशन एड मेन्टिनेंस एक्ट 1956, बाल मजदूरी (रोक एवं व्यवस्थापन) एक्ट, 1988 विकलांग व्यक्ति (समान अवसर, अधिकारों की रक्षा तथा पूर्ण सहभागिता) एक्ट 1996, बाल अपराध न्याय एक्ट, 2000 इत्यादि ।

20 दी शताब्दी में जहां राज्य का रूपान्तरण लोककल्याणकारी राज्य के रूप में हो गया वहीं पुलिस को भी लोक-पुलिस का रूप बदलना पडा । इससे न केवल पुलिस का कार्यक्षेत्र व्यापक हुआ वहीं परिवर्तन भी हुआ, अब उसे लोक सेवा के रूप में देखा जाने लगा । वस्तुत: आधुनिक राज्यों की पुलिस नियंत्रणकारी-नियमनकारी की परंपरागत भूमिका से नेतृत्वकर्ता की नवीन भूमिका में समा गई है और सामाजिक अपराधों पर वही पुलिस प्रभावी नियंत्रण लगा सकती है जो कानून की पालना करवाने से पहले शिक्षक परामर्शदात्री व चेतना संवाहक की व्यापक भूमिका में उतरने को तैयार हों विगत कुछ दशकों में भारतीय पुलिस की कार्यशैली में आमूल-चूल परिवर्तन आया है । और कुछ सीमा तक अपराधों के नियंत्रण के लिए पुलिस ने नवीन उपागमों को अपनाया है वरन् जन सहभागिता-संवाद आदि की अनौपचारिक प्रविधियों का भी प्रभावी उपयोग किया है ।

हाल ही की कुछ नवीन प्रवृत्तियॉ सामाजिक अपराधों की रोकथाम में पुलिस के नवोन्मेष की ओर इशारा करती है । अभी कुछ माह पूर्व ही राजस्थान में कन्या भ्रूण हत्या की समस्या ज्वलंत हो उठी तो यह देखा गया कि विभिन्न जिला पुलिस मुख्यालयों की ओर से संवाद-संचार की एक दीर्घ श्रृंखला आयोजित की गई । दौसा जिला पुलिस ने जुलाई- अगस्त में सम्पूर्ण जिले में परिसंवाद आयोजित किए और इन परिसंवादों को बुकलेट के रूप में छपवाया । कुछ वर्ष पूर्व ऐसा ही सराहनीय कार्य बीकानेर रेंज में किया गया वहां उन्होंने मुस्लिम परिवार में गरीब लड़कियों के वृद्धों से विवाह की प्रथा को रोकने

के लिए सामाजिक संवाद का सहारा लिया था । राजस्थान में प्रत्येक थाने में महिला डेस्क और बडे शहरों में महिला-पुलिस आने की स्थापना-लैंगिक अपराधों के प्रति नवीन संवेदनशील दृष्टिकोण का परिचायक है। अभी हाल ही में उपाधीक्षक स्तर के अधिकारी को परामर्शदाता के रूप में जिला मुख्यालयों पर तैनात किया जा रहा है । जाहिर है कि यह पारिवारिक व सामुदायिक हिंसा व तनावों को नियंत्रित करने के लिये अपनाये जा रहे नवीन उपागमों का एक हिस्सा है जहां आपसी संवाद से विवादित मुद्दों को हल करने पर जोर दिया जा रहा है । राजस्थान पुलिस ने तो एक साहसिक कदम के तहत दूरदर्शन केन्द्र जयपुर के सहयोग से एक साप्ताहिक कार्यक्रम का संचालन भी किया है। 'पुलिस-पब्लिक' नामक इस कार्यक्रम में पुलिस के बडे अधिकारी उपस्थित रहते हैं और सामान्य जन की समस्याओं व संदेह का निवारण करते है। प्रत्येक शुक्रवार को प्रसारित इस कार्यक्रम के माध्यम से नशावादी, बाल-अपराध आदि के शमन हेतु पुलिस द्वारा किये जा रहे सामुदायिक प्रयासों की भी चर्चा की जाती है ।
भारतीय संविधान के अन्तर्गत सामाजिक व्यवस्थापन की प्रक्रिया के तहत अनुसूचित-जाति व अनुसूचित- जनजाति के लिए कई कल्याणकारी कदम उठाए गए हैं । इन कल्याणकारी कदमों ने पारम्परिक अर्थव्यवस्था, सांस्कृतिक जीवन तथा राजनीतिक अवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन किए हैं। चूंकि इन प्रयासों के लागू होने में पुलिस का एक महत्वपूर्ण योगदान था । इसलिए किसी भी पुलिस संगठन के लिए यह एक चुनौती थी कि सामाजिक व्यवस्थापन की प्रक्रिया को सोहार्दपूर्ण एवं सांमजस्यकारी वातावरण में प्राप्त किया जा सके और भारत जैसे विभिन्न वर्मा, पंथों, जाति-जनजाति, भाषाओं बाले राष्ट्र में पुलिस के लिए यह कार्य अति संवेदनशील एवं जटिल हो जाता है । यह इसलिए क्योंकि पुलिस का कार्य रक्षात्मक होता है एवं पुलिस की आवश्यकता तब होती है जब राज्य की सका को सीमित करना होता है । इस परिस्थिति में विभिन्न पुलिस संगठनों द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रयास एवं योजनाएं पुलिस-पब्लिक संबंध बढाने की दिशा में किए गए । इस दिशा में पुलिस ने विभिन्न सामाजिक संगठनों के सहयोग से महिलाओं, बच्चों, युवाओं एवं समाज के कमजोर वर्गों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की योजनाऐ तैयार की, जिनके प्रभाव से सामाजिक अपराधों की रोकथाम की जा सके । इसी के साथ बढते नगरीकरण ने भी बड़े शहरों एवं कस्बों में भी सामाजिक व्यवस्थाओं एवं कुरीतियों को जन्म दिया है । भूमण्डलीकरण एवं बढते पश्चिमीकरण ने शहरी वर्ग में भिन्न प्रकार की समस्याओं एवं बुराईयों को जन्म दिया है । इस परिस्थिति में पुलिस के लिए नियंत्रण एवं व्यवस्थापक का कार्य और ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाता है । यही कारण है कि पुलिस न केवल अब विधान आधारित कार्य एवं शक्तियों का प्रयोग करती है बल्कि जनभागीदारी एवं जनसंचार के विभिन्न साधनों का प्रयोग करते हुए समाज में व्यवस्थापन एवं सामंजस्य कार्य करने का प्रयास कर रही है । आज भारतीय पुलिस नागरिकों को केन्द्र बिन्दु मानकर अपने सभी कार्यो को उसके कल्याण एवं सेवा के लिए करने का प्रयास कर रही है । हालांकि यह भारत जैसे बहुलवादी राष्ट्र-राज्य में एक चुनौतिपूर्ण एवं संवेदनशील कार्य है।

भारतीय पुलिस जितना जाति-धर्म, पंथ, नस्ल आदि आधारित भेदो से ऊपर उठकर संविधान के अन्तर्गत कार्य की ओर अग्रसर रहेगी उतना ही सामाजिक व्यवस्था के अपने दायित्व को सफलतापूर्वक प्राप्त कर सकेगी ।

6.5 समस्याएं और व्यवस्थापन

दुर्भाग्य से स्वंतत्रता के उपरांत भारतीय पुलिस को चारित्रिक रूपान्तरण का ठीक से अवसर ही नहीं मिला । स्वतंत्रता के बाद भी तात्कालिक रूप से कुछ ऐसी स्थितियां बनी कि पुलिस राज्य की संरक्षा-सुरक्षा में ही जुटी रही और उसका चरित्र स्थूलता ब्रिटिश कालीन ही बना रहा । इसके लिये मोटे तौर पर विभाजन के बाद उत्पन्न सांप्रदायिक तनाव, भाषा विवाद कुछ क्षेत्रों में उठे अतिवादी क्रांतिकारी आंदोलन पडौसी देशों से युद्ध आदि जिम्मेदार हैं । चूंकि आरंभ से ही पुलिस उक्त विघटनकारी ताकतों से जूझती रही तो जनता के सामने उसका दमनकारी रूप ही आ गया ।

सामाजिक समस्याओं के संदर्भ में छवि की बडी महत्वपूर्ण भूमिका होती है जहां विधि की पालना से पहले जनमत बनाने ब मार्ग निर्देशित करने की आवश्यकता हो वहां तो बही पुलिस बल सफल होगा जिसकी छवि दोस्ताना हो ।

क्या हम यह हासिल कर पाये हैं? सामान्य जन में खासतौर से ग्रामीण क्षेत्रों में पुलिस की छवि क्या है? जन समुदाय का एक बड़ा हिस्सा अब भी पुलिस को पूर्वाग्रही और कई बार तो शोषक भी समझता है । दूसरी और थानाध्यक्ष

/उपनिरीक्षक आदि जो जन सामान्य के समक्ष लगातार बने रहने बाले जिम्मेदार पुलिस अधिकारी है उनकी छवि अब भी सरकार की है तो उनके द्वारा नई भूमिका का निर्वहन संभव नहीं है क्योंकि इस प्रभुत्ववादी छवि से एक खास समाजशास्त्रीय व्यवधान पैदा होता है और जन सामान्य से संवाद वह का स्तर विकसित नहीं हो पाता जिसकी सामाजिक समस्याओं के संबंध में आवश्यकता है ।

समाज में सामाजिक परिवर्तन की अविरल धारा बहाने के लिए पुलिस को अपनी छवि में मूलभूत बदलाव लाना होगा क्योंकि तीव्र औद्योगीकरण और नगरीकरण के कारण भारतीय समाज में नियंत्रण और नियमन की पारंपरिक शक्तियों धर्म जाति परिवार का तेजी से ह्रास हुआ है विकास के साथ-साथ भारतीय समाज पर परंपराओं और प्रथाओं का दबाव भी कम हुआ है फलत: पुलिस का कार्यक्षेत्र वहां तक बढ गया है जहां कभी परिवार जाति और धर्म की नियमनकारी उपस्थिति थी ।

पुलिस एक सीमा तक इन सब का सफलतापूर्वक समाधान कर सकती है पर उसके लिये पुलिस को अपने स्वरूप में कुछ अनौपचारिकता और कुछ लचीलापन लाना होगा । सबसे पहले छवि को ही ले जिसकी हम चर्चा कर रहे थे । लोकप्रिय संचार माध्यम पुलिस को किस रूप में प्रस्तुत करते है । यदि हम फिल्मों का विश्लेषण करें तो पायेंगे कि समकालीन फिल्मों में बहुधा पुलिस को अक्षम असफल और निष्क्रिय दिखाया जाता है और कई बार तो असामाजिक तत्वों के सहयोगी के रूप में भी चित्रित किया जाता है । फिल्मों का जन मानस पर गहरा प्रभाव होता है और कहीं न कहीं जनता के बीच पुलिस बल की गरिमा और गंभीरता कम होती है ऐसे में हम पुलिस से उन समस्याओं के सफल निराकरण की उम्मीद नहीं कर ,सकते जिनके लिए उसे जनता के मध्य जाना हो जनता के बीच पुलिस की लोकप्रिय छवि बने इसके लिए स्वयं पुलिस को प्रचार ब जन संपर्क का सहारा लेना चाहिए ।

आज इसकी घोर आवश्यकता है कि पुलिस अपनी उपलब्धियों चुनौतियों और जनता से अपेक्षित सहयोग के मुद्दो का ठीक से प्रसार करें इसके लिए यहां भी अन्य विभागों की तरह जन संपर्क को प्रधानता मिलनी चाहिए । दूसरे लोक कल्याणकारी राज्य की एक प्रमुख अभिकरण होने से पुलिस का न केवल कार्यक्षेत्र व्यापक हो रहा है वरन् कार्य की प्रकृति भी अत्यन्त विविधता लिये हुये है ।

एक और जहां परंपरागत रूप से प्राप्त विधि एवं व्यवस्था की जिम्मेदारी है बही दूसरी और सामाजिक समस्याओं के निवाराणार्थ उसे परामर्शदात्री मार्गदर्शक की भूमिका भी निभानी पड रही है जैसे टूटते वैवाहिक संबंधो के संबध में आजकल पुलिस प्राथमिक रूप से परामर्शदात्री की भूमिका निभाती है ऐसे मे पुलिस के पास कानूनी ढांचे में मंत्रणत काम करने से बडी चुनौती सामने आती है जा उसे धैर्य से बिना उत्तेजित हु ए नीति ब नैतिकता का आधार लेकर एक टूटते संबंध को बचाने हेतु समझाइए का सहारा लेना होता है । बाल अपराध, नशामुक्ति आदि के स्थायी हल हेतु उसे कुछ रचनात्मक प्रयास भी करने होते है । जो गैर सरकारी संगठनों आदि के गठन के रूप में सामने आते है । सामाजिक समस्याओं में पुलिस को एक बिल्कुल ही नये रूप में ढलने की चुनौती दे रही है परन्तु साथ में समस्या यह है कि पुलिस के परंपरागत कार्य विधि व्यवस्था न केवल बढे है वरन् अधिक चुनौतिपूर्ण हु ए हैं।

यहाँ हमें जापान और ब्रिटेन की पुलिस से प्रेरणा लेनी होगी जहां की पुलिस सम सामयिक आवश्यकताओं के अनुरूप ढल चुकी है और विधि व्यवस्था की निकट चुनौतियों के बीच जनता की मित्र मार्गदर्शक आदि के रूप में काम कर रही है । हमारे यहां भी कई चुनौतियों के परिप्रेक्ष्य में पुलिस संस्कृति के किंचित बदलाव की जरूरत है । यह बदलाव भर्ती व प्रशिक्षण के स्तर पर नवीन उपाय अपनाने से ही संभव होगा । हमें निचले स्तर की भर्ती प्रक्रिया में और गंभीर होना होगा ।

आज की बढती हु ई और विविधता पूर्ण जिम्मेदारियों के संदर्भ में पुलिस के कांस्टेबल या सब इंन्सपेक्टर से अपने समकक्ष दूसरे विभागों में कार्यरत कर्मियों से ज्यादा अपेक्षाएं हैं । आज यहां शारीरिक गठन ही नही वरन् भावनात्मक या मानसिक गठन भी मजबूत होना चाहिये क्योंकि उन्हे निरंतर दबाव व प्रलोभनों के बीच काम करना होता है । भर्ती के समय सैन्य कमियो के अनुरूप ही पुलिस कर्मियों का भी गहन एप्लीट्यूट टेस्ट होना चाहिये । यहां हमें इस सिद्वान्त को भी अपनाना होगा कि संपूर्ण रिक्त पदो को मरने से महत्वपूर्ण कम परन्तु उपर्युक्त अभ्यर्थियों की भर्ती है ।

प्रशिक्षण एक ऐसा पहलू है जिसे समय के अनुरूप निरंतर परिमार्जित परिष्कृत करने की आवश्यकता है । गोरे कमेटी की रिपोर्ट पहले भी प्रशिक्षण के अनुरूप पर असंतोष व्यक्त कर चुकी है । सामान्य जन से व्यवहार दबावों का सफलतापूर्वक सामना ये कुछ ऐसे पहलू हैं जहां पुलिस के प्रशिक्षण में मनौवैज्ञानिक समाजशास्त्रिय उपागमों का प्रयोग करना चाहिए। इस लिहाज सेवारत कर्मियों का भी निरंतर आमूखीकरण और पुनश्चर्या किया जाना चाहिये । अपनी जिम्मेदारियों को सम्यकरूप से निभाना पुलिस के लिये तभी संभव है जब कर्मियों की संख्या जन संख्या के अनुरूप हो । जहाँ विकसित यूरोपीय समाजों में पुलिस जनता अनुपात 1:200 है बही भारत में यह 1:600 के आसपास है । ऐसे मे पुलिस से एक साथ अनेक जिम्मेदारियों के उचित निर्वहन की प्रत्याशा बेमानी है ।

6.7 भारतीय पुलिस और व्यस्थापन के उपाय

नई चुनौतियों के अनुरूप भारतीय पुलिस को व्यापक रूपान्तरण की आवश्यकता है फिर भी स्थिति ऐसी निराशाजनक भी नही है । विगत कुछ दशकों में भारतीय पुलिस की कार्यशैली में आमूल-चूल परिवर्तन आया है और कुछ सीमा तक पुलिस ने नवीन उपगमों की अपनाया है । ये बदलाव विशेष तौर से महानगर पुलिस अवस्था में दृष्टिगोचर हो रहे हैं। हमारे द्वारा पूर्व में चर्चित लगभग समान पहलुओं छवि भर्ती प्रशिक्षण पर बहा विशेष ध्यान दिया जा रहा है । पिछले एक दशक में दिल्ली पुलिस ने जन संचार माध्यमों का अच्छा उपयोग किया है और जन मानस में अपनी एक नवीन बेहद सकारात्मक छवि बनाने में कामयाब रही है । यह ज्ञातव्य है कि दिल्ली पुलिस में जन संपर्क का एक स्वतंत्र प्रभाव

काम कर रहा है जिसने जन संवाद स्थापित करने में उल्लेखनीय सफलता पायी है । इसका एक प्रत्यक्ष लाभ यह हुआ है कि कतिपय सामाजिक समस्याओं के संदर्भ में दिल्ली पुलिस का कार्य निष्पादन थोडा बेहतर हो गया है । बाल अपराधियों की समस्या के निराकरणार्थ खोले एनजीओ प्रयास का मुद्दा लो अथवा नशामुक्ति शिविरों का । हम यह पायेगें कि दिल्ली पुलिस कुछ बेहतर परिणामों के साथ सामने आयी है । निश्चित रूप से संख्या बल में बढतोतरी प्रशिक्षण में नवीन तत्वों का समावेश आदि से मी दिल्ली पुलिस लाभान्वित हुई है । सामाजिक समस्याओं के संदर्भ में कुछ नवीन प्रवशत्तियां दूसरे प्रांतो की पुलिस अवस्था में भी नजर आ रही है ।

संचालन भी क्रिया है

पुलिस पब्लिक नामक इस कार्यक्रम में पुलिस के बडे अधिकारी उपस्थित रहते है और सामान्य जन की समस्याओं व सदेह का निवारण करते है । प्रत्येक शुक्रवार को प्रसारित इस कार्यक्रम के माध्यम से नशावादी बात अपराध आदि के शमन हेतु पुलिस द्वारा किये जा रहे सामुदायिक प्रयासों की भी चर्चा की जाती है । अंतत: यह जोर देकर कहा जा सकता है कि एक विकसित और लोक कल्याणकारी राज्य के नागरिकों के सर्वांगीण विकसा पर जोर देता है । फलत: सामाजिक समस्याओं का निवारण राज्य की प्रमुख चिन्ताओं में से एक है हमारे विभिन्न कानून इस ओर संकेत करते है -

1- बाल अधिनियम - 1960

2- नागरिक अधिकार कानून 1976

3- स्त्रियों के अनैतिक व्यापार रोक अधिनियम 1956

4- खतरनाक मादक द्रव्य अधिनियम 1930

5- सुधार विद्यालय अधिनियम 1817

6- सार्वजनिक जुआ अधिनियम 1887

मार्टन बोर्ड ने पुलिस की सामाजिक भूमिका के बारे में कहा है कि समाज कल्याण और मानसिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में पुलिस दल एक अछूता और अद्धितिय मानव संस्थान है जिसकी उपयोगिता सामाजिक परिरक्षा के व्यापक परिप्रेख्य में बहुत महत्वपूर्ण हो सकती है । यदि यह कहा जाय कि पुलिस के महत्वपूर्ण उपस्थिति के बिना समाज का अस्तित्व ही खतरे में पड जाऐगा तो अतिश्योक्ति नहीं होगी ।

6.8 सारांश

प्राचीन भारत में कानून और धर्म के बीच गहरा संबंध था । सभी कानून धर्मशास्त्रों में निहित थे । देश में छूआछूत बाल विवाह, सत्तीप्रथा, विधवाविवाह पर प्रतिबंध इत्यादि प्रथाएँ प्रचलित थीं । स्वतंत्रता के पश्चात् देश का संविधान बना, नये कानून बने और लागू हूए, इनमें अर्थव्यवस्था, राज्य व्यवस्था, व्यापर तथा वाणिज्य से लेकर विवाह, परिवार और उत्तराधिकारी तक के क्षेत्र प्रभावित हुए । औद्योगिकरण पश्चिमीकरण और आधुनिकरण और नगरीकरण के कारण समाज में व्यापक बदलाव आये हैं । संयुक्त का स्थान एकाकी परिवार लेने लगे है । समाज पर धर्म के नियंत्रण की भूमिका में कमी आने लगी है । इसका सीधा प्रभाव समाज की आधारभूत इकाई परिवार पर पड़ता है । इनमें पारिवारिक हिंसा के बढ़ोत्तरी हो रही है । विवाह विच्छेद की घटनाएं बढ़ रही हैं, संयुक्त परिवारों को टुटने से व्यक्तिवाद बढ़ रहा है । इन परिस्थितियों ने सामाजिक अपराधों जैसे - नशाखोरी, युवाओं में बढ़ती हिंसक प्रवृति, यौन अपराध महिलाओं पर अत्याचार इत्यादि को बढ़ावा दिया है ।

अपराधों को रोकने में पुलिस की महती भूमिका होती है । लेकिन सामाजिक अपराधों को रोकने में पुलिस को सामाजिक मान्यताओं को ध्यान रखना पडता है । बालविवाह, सतीप्रथा, विधवा विवाह इत्यादि के मामलों में पुरातनपंथी वर्ग के लोग सांस्कृतिक मान्यताओं का हकला देकर पुलिस के लिए समस्या पैदा कर सकते हैं । इन अपराधों की रोकथाम के लिए कानून को थोपने के स्थान पर समाज को साथ लेकर चलने से ही समाधान संभव है । इसके लिए पुलिस ने नये अन्वेषण करके समाज में परिसंवाद आयोजित किये हैं और इनको छपवाकर बँटवाए, लोगों में जागृति पैदा करने की कोशिश की। राजस्थान पुलिस ने दूरदर्शन केन्द्र जयपुर के सहयोग से "पुलिस पब्लिक नामक एक साप्ताहिक कार्यक्रम का संचालन किया । इस कार्यक्रम में पुलिस के बडे अधिकारी उपस्थित रहते हैं ओर सामान्य जन समस्याओं ब संदेह का निवारण करते हैं और सामान्य जन की समस्याओं व संदेह का निवारण करते हैं । पुलिस को लोक पुलिस का अप धारण करना पडा इससे पुलिस का कार्यक्षेत्र भी बढ़ा है । और पुलिस की छापे में भी कुछ परिवर्तन हुआ है ।

6.9 बोध प्रश्न

(1) टिप्पणी :- निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 200 शब्दों में दीजिए -

1 सामाजिक व्यवस्थापन की आवश्यकता क्यों पड़ी ।

2 सामाजिक समस्याएं और व्यस्थापन पर लेख लिखिए ।

(2) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 100 शब्दों में दीजिए -

1 आर्थिक राजनीतिक परिवर्तनों का समाज के विविध घटनाओं पर पड़ने वाले प्रभाव बताइए।

2 भारतीय पुलिस द्वारा अपनाये गये व्यवस्थापन के उपाय बताइए ।

इकाई -7

सामाजिक समस्याएँ-11 : पुलिस एवं जन सहयोग

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 पुलिस एवं आम जनता: एक संबंध

7.2.1 नागरिक अधिकारों के संदर्भ में पुलिस की भूमिका

7.3 सामुदायिक सहयोग समूह

7.4 पुलिस एवं मानव अधिकार संरक्षण

7.4.1 मानवाधिकार की घोषणा

7.4.2 पुलिस और विधिक ढाँचा

7.4.3 पुलिस मानवाधिकारों का उल्लंघन करने के कारण

7.4.4 पुलिस द्वारा मानवाधिकारों के बोध उल्लंघन से बचने के उपाय

7.5 पुलिस तथा जन अपेक्षाएं

7.6 सारांश

7.7 शब्दावली

7.8 सन्दर्भ ग्रंथ

7.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

7.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप,

1. लोक कल्याणकारी राज्य में पुलिस की भूमिका की व्यख्या कर सकेंगे ।
2. मानवाधिकार हनन के कारण व निवारण की व्याख्या कर सकेंगे ।
3. सामुदायिक सहयोग ग्रुप का महल व भूमिका का वर्णन कर सकेंगे ।
4. जनसहभागिता द्वारा अपराधों की रोकथाम ब नियंत्रण के उपाय जान सकेंगे ।

7.1 प्रस्तावना

"पुलिस शब्द की उत्पति लेटिन भाषा के शब्द "पोलिविया' से हुई है जिसका अर्थ है शासन प्रणाली । सामान्य शब्दों में पुलिस शब्द से अभिप्राय इस व्यवस्था से है जिसके द्वारा राज्य में शान्ति व्यवस्था स्थापित करते हुए राज्य द्वारा पारित नियमों की पालना करवायी जाती है । भारत एक लोक कल्याणकारी राज्य है जो देशवासियों को आर्थिक सामाजिक और राजनैतिक न्याय प्रदान करने हेतु संकल्पित है । राज्य सूची का विषय होने के कारण पुलिस संगठन का गठन राज्य द्वारा अपने निर्धारित मानदण्डों के अनुरूप किया जाता है । सामाजिक परिवर्तन के विभिन्न आयामों के अन्तर्गत विकास के साथ साथ जहाँ एक तरफ जीवन स्तर में सुधार हुआ है तो दूसरी ओर जन अपेक्षाएं भी बढी हैं । यह जन आकांक्षाएं समय समय पर हड़ताल बंद चक्काजाम, घेराव, जुलूस इत्यादि के रूप में दृष्टिगोचर

होती है । इस कारण आज पुलिस की भूमिका केवल शान्ति व्यवस्था बनाए रखने तक सीमित नहीं है बल्कि उसे राज्य के एक लोक कल्याणकारी अभिकरण के रूप मे कार्य करना पड़ता है ।

वर्तमान पुलिस व्यवस्था विदेशी शासन द्वारा लागू की गई व्यवस्था है । परतंत्र भारत में अंग्रेजो की पुलिस द्वारा अमानवीय व्यवहार किया जाता था परन्तु स्वतंत्रता के पश्चात् पुलिस को लोक कल्याणकारी जनतंत्र के रूप मे कार्य करना है । पुलिस शब्द के एक एक वर्ण का अपने आप में एक विशिष्ट अर्थ है ।

P	पी-से	Politeness	पोलाईटनेस	अर्थात नम
O	ओ-से	Obedient	ओबीडीयन्ट	अर्थात आज्ञाकारी
L	एल-से	Legal Advisor	लीगल एडवाईजर	अर्थात विधि सलाहकार
I	आई-से	Intelligent	इन्टेलीजेन्ट	अर्थात बुद्धिमान
C	सी' से	courageous	करेजियस	अर्थात साहसी
E	ई से	Energetic	इनरजेटिक	अर्थात शक्तिशाली

इन विशेषताओं पर खरा न उत्तर पाने के कारण ही पुलिस के प्रति आम जनता में नकारात्मक सोच उत्पन्न होती है। पुलिस शान्ति व व्यवस्था बनाए रखने के लिए जो कार्य करती है उसकी सकारात्मक सोच बनानी होगी । प्राय: समाचार पत्रों, मीडिया व फिल्मों में पुलिस की नकारात्मक छवि बनायी जाती है । पुलिसकर्मी को अपराधी व निरपराध व्यक्ति के साथ व्यवहार में भिन्नता रखनी चाहिए । पुलिस को सामुदायिक सहयोग ग्रुप, स्वयं सेवी संस्थाओं से भी समय समय पर सहयोग लेना चाहिए । साथ ही पुलिसकर्मियों में मानवीय संवेदना उत्पन्न करना अति आवश्यक है ।

प्रत्येक संगठन विभिन्न घटकों से मिलकर गठित होता है । पुलिस संगठन का बुनियादी घटक व्यक्ति है जो योग्यतानुसार प्रशिक्षित प्राप्त करके पुलिसकर्मी के रूप में नियुक्त होता है । इस संगठन मे चार मूलभूत व्याधियां व्याप्त है इन्हे ए, बी, सी, डी, के रूप में दर्शया जा सकता है ।

A-Alcoholism	शराब का अत्यधिक प्रचलन
B-Behaviour Pattern	व्यवहार प्रतिमान (व्यवहार में कर्कष्ता, सौहार्द का अभाव
C-Character and corruption	लिप्सायुक्त आचरण
D-Desire system	पदस्थापन में अवांछनीय राजनैतिक हस्तक्षेप

पुलिस संगठन में बाज़ इन व्याधियों के कारण विभाग में निष्क्रियता, दायित्व निर्वहन में रूचि का अभाव तथा कार्य संस्कृति कम होती जा रही हे । इससे जनता में यह धारणा कि पुलिस सहायता से कार्य सिद्ध होगा, कम होती जा रही है । इन व्याधियो को दूर करने के लिए पुलिस कर्मियों को उचित मार्गदर्शन व प्रशिक्षण की आवश्यकता हे । इससे पुलिस अपराधियों की पहचान कर उनके द्वारा फैलाए जा रहे अनाचार ब अपराध पर काबू पा सकती है ।

राजस्थान पुलिस का उद्भव विशेष रूप से सन् 1857 के बाद हुआ । प्रारंभ में पुलिस संगठन के सरूप में रियासतकालीन परम्पराओं की झलक दृष्टिगोचर होती थी । और पुलिस का क्रूर स्वरूप सामने आया, किन्तु धीरे-धीरे पुलिस ने अपना स्वरूप बदला । पुलिस को भी यह आभास हुआ कि जनता से बेहतर समन्वय से आमजन की अपेक्षा पूर्ण होती है तथा महत्वपूर्ण सूचनाएं भी प्राप्त होती हैं । पुलिस का सर्वाधिक महत्वपूर्ण लक्ष्य है जन साधारण में पुलिस के प्रति आस्था पैदा करना । लोगों

मे यह विश्वास उत्पन्न करना कि पुलिस हमारे सहयोग व सुरक्षा के लिए है । आजकल पुलिस सामुदायिक सहभागिता समितियों का गठन करके समाज के विभिन्न वर्गो से रचनात्मक प्रगति एवं सकारात्मक सोच बाले शक्तियों को शामिल कर के नए उपयोग कर रही है । इससे नागरिकों को पुलिस की सीमाओं को समझने का अवसर मिलेगा तथा पुलिस भी जन साधारण की समस्याओं के प्रति संवदेनशील होगी।

इस इकाई में पुलिस व जनता के संबंधो का विवेचन किया गया है:-

पुलिस एवं समाज एक दूसरे की सहयोगी इकाइयाँ हैं । इनके आपसी सहयोग से बेहतर जिन्दगी जीने की स्थितियॉ बनती हैं । पुलिस एवं समाज एक दूसरे से गहराई तक जुड़े हुए हैं तथा अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं । पुलिस को नागरिकों के अधिकारों के प्रहरी, रक्षक एवं संवाहक के रूप में पहचाना जाता है । नागरिक - अधिकारों के संदर्भ में पुलिस की भूमिका को महत्वपूर्ण माना जाता है । इससे पहले कि हम इस भूमिका की चर्चा करें, यह उचित प्रतीत होता है कि नागरिक अधिकारों के बारे में थोड़ी बात कर ली जाए ।

अधिकार सामाजिक जीवन की अनिवार्य आवश्यकताएँ हैं । अधिकार दे अवसर हैं, जिनके बिना मनुष्य जीवन के वास्तविक लाभों से वंचित हो जाता है । अधिकारों के महल को प्रतिपादित करते हुए प्रसिद्ध विचारक लास्की ने कहा है कि अच्छे या बुरे राज्य की पहचान उसके द्वारा दिये जाने बाले अधिकारों की गुणवत्ता पर निर्भर करती है । अधिकारों को जीवन की न्यूनतम, प्राथमिक एवं उच्चतम आवश्यकताओं के रूप में भी पहचाना गया है । प्रसिद्ध विद्वान हाब हाउस का कथन है कि अधिकार बही है जैसा कि हम अन्यों से अपने प्रति आशा करते हैं । और जैसा कि अन्य हमसे आशा करते है । अरस्तु ने अधिकारों के महत्व को बहुत ही खूबसूरती से प्रतिपादित करते हुए कहा है किजीवन केवल जीना भर नहीं है बल्कि अच्छी तरह से जीवन बसर करना है । अधिकार अच्छी तरह से जीवन बसर करने की अनिवार्य स्थितियाँ हैं। दूसरे शब्दों में अधिकार सामाजिक जीवन की वे व्यवस्थाएँ हैं, जिनके बिना सामान्यत: कोई भी आदमी अपने पूर्ण विकास की उच्चतम स्थिति तक नहीं पहुँच सकता या फिर यह कहा जा सकता है कि अधिकार प्रत्येक व्यक्ति के आत-विकास एवं सम्पूर्ण प्रगति की आवश्यक शर्त ई ।

भारत में नागरिक अधिकारों की संवैधानिक और कानूनी व्यवस्था पर्याप्त रूप से संतोषजनक है । संविधान के भाग 3 में अनुच्छेद 12 से अनुच्छेद 35 तक मौलिक अधिकारों की विस्तार से चर्चा की गई है । इन मूल अधिकारों को ऐसे व्यक्ति की प्रेरणा पर प्रवर्तित किया जा सकता है, जिसके मूल अधिकार का राज्य अर्थात् कार्यपालिका या विधायिका के किसी कार्य द्वारा उल्लघंन हुआ है । इन अधिकारो के प्रवर्तन के लिए संवैधानिक उपचारों जैसे बंदी प्रत्यक्षीकरण यानी हैबियस कॉर्पस, परमादश यानी मैडमेस, प्रतिबंध यानी प्रोहिबिशन उत्प्रेषण यानी सरश्योररी और अधिकार पश्च्छा यानी को वारंटो की रिटों की भी व्यवस्था की गई है । मूल अधिकारों के विरूद्ध किसी भी कार्य या कार्यपालिका के आदेश को उच्चतम न्यायालय द्वारा शून्य घोषित किया जा सकता है ।

मौलिक अधिकारों के अतिरिक्त दीवानी एवं आपराधिक कानूनों के अन्तर्गत भी अनेक प्रकार के अधिकार नागरिकों को प्राप्त है । दीवानी-विधि यानी सिविल लॉ तथा आपराधिक विधि यानी क्रिमीनल ला के अन्तर्गत बनाए गए अधिनियमों में भी नागरिकों के अधिकारों के बारे में समुचित प्रावधान किए गए हैं । नागरिक अधिकार चाहें बे संविधान के अधीन दिए गए हों या फिर दीवानी या आपराधिक कानूनों के अन्तर्गत, उनकी सुरक्षा संरक्षा एवं पालना के संदर्भ में पुलिस की भूमिका सदा ही महत्वपूर्ण होती है ।

7.2 पुलिस व आम जनता - एक संबंध

पुलिस एवं आमजन के बीच एक नाजुक संबंध है पुलिस की कार्यविधि के प्रति आम व्यक्ति के मन मे वितश्ष्णा व अविश्वास का भाव रहता है । अत: पुलिस बल के व्यवहार व मानसिकता में आमूलचूल परिवर्तन की आवश्यकता है । प्रत्येक पुलिस कर्मी को तिरंगे के सामने ली गई शपथ के अनुसार स्थाई पूर्ण निष्ठा व तत्परता से काम करना चाहिए ताकि जनता की अपेक्षाएं पूर्ण हो सके। सहभागिता किसी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था की सफलता की कुन्जी है । किसी भी व्यवस्था के लक्ष्यों को पाने के लिए उस व्यवस्था के विभिन्न अवयवों में सहभागिता आवश्यक है । प्रभावशाली ढंग से सहभागिता द्वारा जन आस्था अर्जित कर समाज में शान्ति व्यवस्था स्थापित करने का लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है । पुलिस सामान्यत: तभी क्रियाशील होती है जब कोई घटना घट जाती है जबकि समुदाय का विश्वास अर्जित करने के लिए पुलिस की भूमिका घटना पर आश्रित न होकर समस्या पर आश्रित होना चाहिए । पुलिस को event dependent न होकर Problem dependent होना चाहिए अर्थात Police should be Proacture in spite of being reactive.

वर्तमान जटिल सामाजिक-सांस्कृतिक परिदृश्य में गांवों व शहरों में छोटे विशद भी गंभीर रूप धारण कर लेते हैं । ऐसे विवादों को बही के लोग मिलजुल कर निपटा लें, इस प्रकार की व्यवस्था का विकास करना आवश्यक है । यह व्यवस्था मौहल्ला सुरक्षा समितियां, ग्राम सुरक्षा समितियाँ, सामुदय समन्वय समूह व पारिवारिक परामर्श केन्द्र इत्यादि का गठन कर सहभागिता के माध्यम से सुनिश्चित की जा सकती है ताकि गांव के पंच, सरपंच, प्रतिष्ठित नागरिक समस्या से पीडित लोगों के विवादों का निपटारा करने में पुलिस का सहयोग कर सके ।

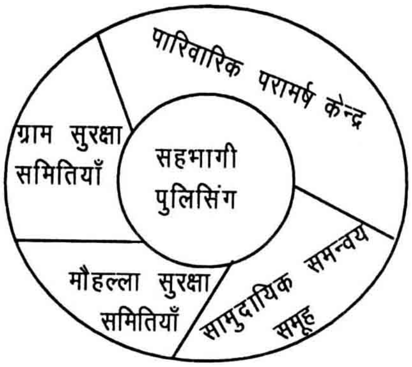

पुलिस को हमेशा दो पक्षों का सामना करना पडता है, एक पक्ष जो शिकायत करता है तथा दूसरा पक्ष जिसके विरूद्ध शिकायत की जाती है । ऐसी स्थिति में पुलिस को एक विभिन्न चुनौती का सामना करना पडता है क्योंकि केवल फैसला किसी एक पक्ष के हित में होता है तथा दूसरा पक्ष पुलिस पर आरोप लगाता है परन्तु जनता यह नहीं जानती कि पुलिस के कार्यो में अनेक मजबूरियां हैं, अनेक कानूनी मुद्दे है जो पुलिस के कार्य को कठिन बना देते हैं ।

प्राय: यह देखा गया है कि जन-सहयोग के अभाव में पुलिस को विभिन्न कार्यो में कामयाबी नहीं मिल पाती। पुलिस के प्रत्येक कार्यक्षेत्र में जन सहयोग वांछनीय होता है । विडम्बना इस बात की है कि आम जनता पुलिस को स्वेच्छा से सहयोग प्रदान हीं करती । वांछित सहयोग नहीं मिलने की स्थिति में पुलिस व जनता के मध्य सबंध अपर्याप्त बने रहने की प्रबल संभावना रहती है । परिणामस्वरूप दोनों के बीच समन्वय स्थापित नहीं हो पाता जबकि पुलिस आम नागरिक की सुरक्षा

के लिए अपराधी को अपनी जान पर खेलकर पकड़ती हैं । अदालत में अपराधी गवाही के अभाव में बच निकलता है, इसके विपरीत शिकायतकर्ता यह समझता है कि पुलिस का रवैया उसके प्रति उदासीन रहा है । दोष मुक्त हो जाने के बाद अपराधी समाज में दोबारा अपराध करने के लिए स्वतंत्र हो जाता है । आम नागरिक समाज कटको के खिलाफ लड़ाई लड़ने के लिए तथा शांति बनाए रखने के लिए पुलिस से सुरक्षा व मदद की अपेक्षा रखता है परन्तु स्वतंत्र व निडर होकर चश्मदीद गवाही देने से कतराता है । अत: पुलिसकर्मी भी जनता से अपेक्षाएं रखते हैं जो उन्हें पूरी करनी चाहिए।

प्रचार, प्रसार के समस्त साधन पुलिस की छवि सुधारने की क्षमता रखते है । परन्तु मीडिया भी प्रतियोगिता के चलते अपराध के समाचार तो बड़े-बड़े अक्षरों मे प्रकाशित करती है लेकिन पुलिस उपलब्धियां को छोटा स्थान मिलता है । पुलिस व जनता के मध्य संबंधो में सुधार तभी आएगा जब दोनो एक दूसरे के लिए सामानान्तर सहयोग देते रहे तथा पारस्परिक अच्छा व्यवहार करते रहें ।

इस प्रकार व्यापक सुधार एवं अन्य उपायों के माध्यम से पुलिस व जनता के सम्बन्ध में तुलनात्मक परिवर्तन लाए जा सकते हैं । यह भी जरूरी है कि जनता पुलिस पर आरोप लगाने से पूर्व आत्म-निरीक्षण करे, पुलिस के प्रति अपनी धारणा को बदले, अपने कर्तव्य को समझे और जहां जैसा सहयोग आवश्यक हो प्रदान करे ।

7.2.1 नागरिक अधिकारों के संदर्भ में पुलिस की भूमिका

आपराधिक एवं सामान्य न्याय-व्यवस्था की संरचना एवं संचालन का पुलिस एक महत्वपूर्ण अंग है । यही कारण है कि नागरिकों के अधिकारों से जुड़े प्रकरण चाहें बे संविधान से संबन्धित हों या फिर दीवानी या आपराधिक कानूनों से सम्बन्धित हों, पुलिस का सहयोग एवं भूमिका सभी मामलों में महत्वपूर्ण होती है । आपराधिक न्याय-व्यवस्था के अन्तर्गत तो यह भूमिका और भी अधिक उल्लेखनीय होती है । आपराधिक कानूनों, अपराध-विधि एवं आपराधिक न्याय-व्यवस्था के अन्तर्गत पुलिस भूमिका के संदर्भ में नागरिक अधिकारों की चर्चा विषय-वस्तु को समग्रता प्रदान करने में सक्षम है ।

प्रत्येक अपराध की घटना को पीड़ित नागरिक के किसी न किसी अधिकार की अवहेलना के रूप में समझा जा सकता है । आपराधिक घटनाओं की पड़ताल करना पुलिस का प्राथमिक दायित्व है । इस तरह नागरिक अधिकार की अवहेलना का सीधा सम्बन्ध पुलिस से हो जाता है पुलिस तत्काल, त्वरित एक् प्रभावी कार्यवाही कर दोषी व्यक्ति को न्यायिक प्रक्रिया के सुपुर्द कर पीड़ित नागरिकों को न्याय दिलवाती है तथा उनके अधिकारों की गरिमा को बनाए रखती हैं ।

पुलिस-दिमाग से नागरिकों का सम्पर्क फरियादी, मुल्जिम, गवाह, मुखबिर या सहयोगी के रूप में होता रहता है । फरियादी के रूप में जब भी कोई नागरिक पुलिस से सम्पर्क बनाता है तो यह उस नागरिक का अधिकार है कि पूरी संजीदगी, संवेदनशीलता, धैर्य एवं ध्यान से उसकी तकलीफ एवं समस्या को सुना जाए । फरियादी की रिपोर्ट की प्रकाशित के अनुरूप उसका यह भी अधिकार होता है कि पुलिस उसकी सहायता करें । यह सहायता परामर्श, मार्गदर्शन एवं पुलिस इमदाद के रूप में हो सकती है तो मुकदमा दर्ज कर लिया जाना चाहिए । इस प्रकार की घटनाओं को संज्ञेय, काबिल दस्तनदाजी या कॉगनेजेबिल अपराध कहा जाता है । अपराध की घटनाएँ दो तरह की होती हैं संज्ञेय और असंज्ञेय । संज्ञेय अपराधों में पुलिस मुकदमा दर्ज कर तफतीश करती है । असंज्ञेय आपराधिक घटनाओं को रोजनामचे में दर्ज किया जाकर फरियादी को अदालत में सीधे कार्यवाही के लिए परामर्श दी जाती है।

कुछ प्रकरणों में पुलिस अदालत में शिकायत भी दर्ज कर सकती है । जिन मामलों में पुलिस ने मुकदमे दर्ज किए हैं उन सब में नागरिकों का यह अधिकार है कि उनसे सम्बन्धित प्रकरणों में तत्काल, तटस्थ एवं शीघ्र कार्यवाही अमल में लाई जाकर दोषी व्यक्तियों को कानून के हवाले किया जाए । नागरिकों का यह भी अधिकार है कि उन्हें शीघ्र सुलभ एवं सस्ता न्याय मिले । न्यायिक प्रक्रिया को शीघ्र और प्रभावी बनाने में पुलिस की कारगर भूमिका होती है । गबाहों एवं मुल्जिमानों को गवाही एवं न्यायिक प्रक्रिया के लिए उपलब्ध करवाने का दायित्व पुलिस का होता है । अपने इस दायित्व का निर्वाह कर पुलिस नागरिकों के शीघ्र न्याय प्राप्त करने के नागरिक अधिकार को अमलीजामा पहना सकती है ।

चाहे शांतिभंग होने की स्थिति हो या फिर अपराध घटित होने की सम्भावना, दोनों ही स्थितियों में, आम नागरिक का यह अधिकार है कि उन्हें इन स्थितियों से बचाया जाए । साथ ही अपराधों की रोकथाम कर समाज में शांति एवं व्यवस्था की स्थापना की जाए । नागरिकों के इन अधिकारों की रक्षा करना पुलिस का बुनियादी दायित्व है । फरियादियों और आम नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करके तथा उनके अधिकारों पर हो रहे अतिक्रमणों एवं हमलों से उन्हें सुरक्षा देकर पुलिस नागरिकों के अधिकारों की रक्षा कर सकती है और उनकी सच्ची मित्र बन सकती है ।

फरियादी के अलावा नागरिक मुल्जिम की हैसियत से भी पुलिस के सम्पर्क में आते हैं । पुलिस अभिरक्षा में लिए गए व्यक्तियों के भारत में सुपरिभाषित अधिकार हैं । न्यायालय समय समय पर इस संबंध में दिशा निर्देश भी जारी करते रहते हैं । माननीय उच्चतम न्यायालय ने पुलिस अभिरक्षा में लिए गए नागरिकों के अधिकारों के बारे में विस्तार से चर्चा की हे । देश के सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयानुसार मुल्जिमान एवं पुलिस अभिरक्षा में लिए गए नागरिकों के निम्नांकित अधिकार हैं -

पुलिस को नागरिकों को गिरफ्तार करने एवं उनकी स्वतंत्रता पर सार्वजनिक हित में रोक लगाने का अधिकार है । पुलिस को इस अधिकार का प्रयोग पूरे संयम एवं नियंत्रण के साथ करना चाहिए क्योंकि उनका यह कार्य नागरिकों के मूल अधिकारों पर अंकुश लगाता है । इसी प्रकार जमानत पर रिहा करने, घर की तलाशी, व्यक्तिगत तलाशी एव पूछताछ जैसे अनेक ऐसे पुलिस दायित्व है जिनका निर्वाह प्रकारान्तर में नागरिकों के अधिकारों पर अंकुश लगाता है । अत: यह जरूरी है कि पुलिस पूरी संजीदगी, शालीनता एवं विवेक से इन दायित्वों का निर्वाह करे ताकि बे नागरिकों के अधिकारों के हनन के आरापों से बच सकें ।

7.3 सामुदायिक सहयोग समूह

सामुदायिक सहयोग समूह एक ऐसा समूह है जो कि सामुदायिक पुलिस प्रणाली का एक स्तम्भ कहा जा सकता है । यह संयुक्त राष्ट्र संघ के यू.एन.डी.पी. स्कंध का एक विशिष्ट प्रोजेक्ट है जो कि जनता एवं पुलिस के मध्य वर्षो से चली आ रही दीवार को पाटने एवं समन्वय स्थापित करने का अद्वितीय प्रयास है ।

सी.एल.जी के उद्देश्य :

1. पुलिस एवं समुदाय के बीच आपसी व्यवहार एव पारस्परिक समक्ष की स्थिति में सुधार । पुलिसिंग का काम समुदाय के साथ साझेदारी करके किया जाए तथा ऐसे लोगों के एक ग्रुप का गठन किया जाए जो समुदाय से सम्पर्क में मददगार हो ।

2. जनता के बीच काम कर रहे पुलिस कर्मियों के काम का तरीका लोगों के प्रति रवैया और धारणाओं को बदलना। चेंज ऐजेटों की मदद से उनमें समुदाय के प्रति जिम्मेदारी और मित्रता की भावना का विकास करना ।
3. पुलिसकर्मियों से अच्छा काम लेने के लिए उनके काम करने ब रहने की जगहों और स्थितियों में सुधार लाना।
4. थानो मे उन साधनों ब सामानो को उपलब्ध कराना जिनकी मदद से पुलिस अपने काम को ज्यादा तत्परता व बेहतर ढंग से अंजाम दे सके ।

सामुदायिक सहयोग समूह का सदस्य कौन बन सकता है -

एक गृहणी ।
स्थानिय स्कूल महाविद्यालय/ शैक्षणिक संस्थाओं के प्रधानाचार्य ।
मंदिर, मस्जिद, चर्च, गुरूद्वारे, समितियो के सदस्य ।
उद्योगपति- कारखाना मौलिक ।
मीडिया से जुडे स्थानीय लोग ।
वरिष्ठ नागरिक/भूतपूर्व सैनिक/ सेवानिवृत्त सरकारी कर्मचारी ।
व्यवसाय संघों/ वाहन चालक संघों/ विद्यार्थी संघों /व्यापार संघो के सदस्य ।
गैर सरकारी संस्थाओं. क्लबों, सामाजिक संगठनों के सदस्य ।
डाक्टरी और वकालत के पेशे से जुड़े लोग ।
गरीब तबके के प्रतिनिधिगण ।
बीट अधिकारी (सिपाही) और थानाधिकारी ।

इसके 12-15 तक सदस्य संख्या हो सकती है । एक बार मनोनीत होने के बाद 2 वर्षो तक व्यक्ति सी.एल.जी का सदस्य रह सकता है ।

सामुदायिक सहयोग ग्रुप के सदस्यों के चयन की कसौटी -

इस समूह के सदस्य के रूप में उनको मनोनीत किया जाए जो
जिम्मेदार नागरिक हों व उस क्षेत्र के निवासी हों ।

- जो दूरदर्शी हों ब स्थानीय लोगों की भलाई के लिए वचनबद्ध हों ।
- जिसका कोई आपराधिक रिकॉर्ड न हो ।
- जो राजनीति मे सक्रियता से न जुडे हों ।
- जो किसी भी प्रकार की यूनियन के पदाधिकारी न हों ।
- जो रूपये एवं संपत्ति के किसी ऐसे विवाद में संलिप्त न हो जिसमें पुलिस के दखल की सभांवना हो ।
- जो अपराधियों को शरण न देते हो ।

सी.एल.जी प्रोजेक्ट की स्ट्रेटेजी :-

1. कुछ पुलिसकर्मियों का चेंज एजेंट के रूप में तब
2. उन्हें समुदाय के साथ साझेदारी कर पुलिस के तरीकों की ट्रेनिग देना ।
3. चेंज ऐजेंट काम के दौरान अपने साथियों को कैसे ट्रेंनिग दे इनके तरीके सिखाना और इसके लिए पाठ्यक्रम ब साधन देना ।

4. पुलिस व समुदाय के बीच पारस्परिक व्यवहार के नियम स्वरूप और उसके तरीके क्या हों यह तय करना ।
5. थाने पर सी.एल.जी की कार्य प्रणाली व उसके सदस्यो के चुनाव के लिए समुचित नियमों का विधान करना ।
6. थाना, बीट और जिला स्तर पर सी.एल.जी का गठन करना उनकी मीटिंग कर उन्हे काम पर लगाना आदि ।
7. लोगों को अपराध संहिता के अन्तर्गत उनके अधिकारों की जानकारी देना, कानून व्यवस्था के दौरान उनका कर्तव्य उन्हें समझाना, पुलिस की कार्यप्रणाली, पुलिस पर कानून के बंधनों व कानून के अंदर पुलिस के अधिकारों व क्षमताओं की सीमाओं के बारे में बताना समुदाय को उन आर्थिक दिक्कतों से अवगत कराना जो पुलिस की कार्य शैली पर प्रभाव डालते हैं ।
8. पुलिस थानों को उनके आकार, शहरी करण, अपराधों की संख्या और संवेदनशीलता के अनुसार अलग-अलग प्रकार के समूहों में रखना ।
9. इस परियोजना के परिणामों को अन्य पुलिस थानो मे लाग करना । विभिन्न स्थलों पर पुलिस अधिकारियों के प्रशिक्षण पाठयक्रम का संशोधन करना तथा प्रशिक्षण प्रक्रिया को एक नई दिशा देना ।
10. पुलिस-समुदाय संबंधो, पुलिस का उत्तरदायित्व एवं पुलिस के कामों मे पारदर्शिता से संबंधित औपचारिक नीतियों और नियमावली का प्रचार करना ।

चेंज एजेन्ट कौन हो :

एक विशेष रूप से चुना गया पुलिस अधिकारी जिसे निम्नलिखित में ट्रेनिग दी गई हो -

समुदाय व पुलिस संबंधों की बुनियादी बातो को समझने की ।

अपने नेतृत्व गुणों का विकास कर उसके साथियों के लिए रोल माडॉल बनने की ।

मार्गदर्शन, प्रशिक्षण व उदाहरण के जरिए अपने साथियों में बदलाव लाने की ।

चेंज ऐजेंटो को आर.पी.ए. जयपुर में प्रशिक्षण दिया गया जिसमें सदस्यों को सामान्य जन के प्रति पुलिस के बर्ताव का अनुभव कराया गया उन्हें व्यवहार-कुशलता, बेहतर थाना प्रबंधन, अपराध की जांच में वैज्ञानिक तरीके इस्तेमाल करने के महत्व को समझाया गया ।

इस प्रशिक्षण के दौरान चुने गए चेंज एजेन्टों ने स्वयं यह महसूस किया कि पुलिस के लिए अपने बर्ताव में परिवर्तन लाना प्रासगिंक और जरूरी है । प्रशिक्षणार्थियों ने विभिन्न थानों और दूसरी जगहों पर सादे कपड़ो मे जाकर खुद पुलिस के कठोर व्यवहार का अनुभव किया ।

उक्त चेंज एजेटों द्वारा निम्नलिखित योजना तैयार की गई जिससे पुलिस ब जनता के मध्य संबंधो मे सुधार हो सकता है ।

1. पुलिस अधिकारियों को आचार संहिता का स्वयं कडाई से पालन करना चाहिए ।
2. शिकायत कर्ता को सहानुभूति पूर्वक सुनना और उसकी शिकायत पर तुरन्त कार्यवाही करनी चाहिए
3. यह निश्चित करना चाहिए कि शिकायतें दर्ज हों व एफआईआर की काँपी शिकायत कर्ता को दी जाए ।
4. अपनी आलोचना को धैर्य से सुनना व जहाँ जरूरी हो अपने आपको सुधारना ।
5. अच्छी कार्यशैली बना कर अपने साथियों को प्रेरित किया जाना चाहिए ।
6. अपराध की जांच के लिए वैज्ञानिक तरीकों का उपयोग करना चाहिए ।

7. यदि आवश्यक हो तो एक शिकायत बॉक्स स्थापित करना चाहिए ताकि शिकायतों पर निष्ठापूर्वक कार्यवाही की जा सके ।
8. पुलिस व्यवस्था में लोगों की साझेदारी के लिए नए कार्यक्रमों की खोज करनी चाहिए । कार्ययोजना की चर्चा के लिए नियमित बैठके होनी चाहिए । प्रत्येक पुलिस थाने पर सहयोग समूहों का गठन किया जाना चाहिए ।

सामुदायिक सहयोग समूह के तर्ज पर ही सामुदायिक पुलिस अधिकारी नियुक्त किया जाता है जो पुलिसकर्मी नहीं होता परन्तु जनता व पुलिस के मध्य एक कड़ी का काम करता है । बह लोगों की शिकायतें सुन कर उन्हें पुलिस की सहायता से न्याय दिलवाने का प्रयास करता है ।

इसी प्रकार ग्राम सुरक्षा पार्टी का उदाहरण है जिसमें प्रत्येक घर का एक सदस्य उक्त पार्टी में होता है जो पुलिस थाने से सम्पर्क कर लोगो की समस्याओं को सुलझाते है । असम राज्य में ग्राम सुरक्षा पार्टी का प्रचलन अधिक है । पुलिस मित्र योजना के अन्तर्गत भी लोगों द्वारा पुलिस की हर संभव मदद की जाती है । यह हैदराबाद में प्रचलित है ।

इसी प्रकार संयुक्त पेट्रोलिंग समितियां शांति समितियां व मौहल्ला समितियों आदि पुलिस ब जनता के मध्य समन्वय स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका को निभाती हैं ।

बोध प्रश्न - 1

1. स्वतंत्राता के पश्चात पुलिस की कार्यप्रणाली में किस प्रकार का बदलाव आया है?
2. सामुदायिक सहयोग समूह से आप क्या समझते है ? जनता व पुलिस के समन्वय के लिए यह प्रयोग आवश्यक है?

7.4 पुलिस एवं मानवाधिकार संरक्षण

समाज के सभी वर्गो में मानवाधिकारों के प्रति जागरूकता निरन्तर बढ़ रही है । कल्याणकारी राज्य की धारणा के तहत जनता के अधिकारों की रक्षा को सरकार की सफलता की कसौटी माना जाने लगा है । सरकार के अन्य अंगों के साथ ही पुलिस संगठनो पर भी मानवाधिकारों की रक्षा का दायित्व बढता जा रहा है ।

7.4.1 मानवाधिकार की धारणा

मनुष्य इस संसार में जब जन्म लेता है तो उसका यह हक है कि वह अपना सांसारिक जीवन संतोषजनक ढंग से, सुरक्षा से और आनन्दपूर्वक बिताए । समाज और सरकार उसे सभी प्रकार की बुनियादी सुविधाएं प्रदान करें । संक्षेप में कुछ अधिकार हैं :-

- मनुष्य जीवन सुरक्षित रहे ।
- अपने गौरव को बनाए हुए और आत्म सम्मान के साथ स्वावलम्बन से जीवित रहें ।
- उसे कोई मानसिक या शारीरिक पीड़ा न दे और उसके साथ निर्दय, अमानुषिक और अपमानजनक व्यवहार न हो ।

उसके हकों पर कोई हमला न हो ।

अपने दोस्तो, रिश्तेदारों बुजुर्गो ब बच्चो की रक्षा ब देखभाल करने का उसे पूरा हक हो । अपने देश की सीमाओं के अन्तर्गत वह जहाँ चाहें घूम सकें ।

उसे किसी प्रकार का कष्ट न हो ।

उसके साथ धर्म, भाषा, जाति रंग लिंग इत्यादि के आधार पर कोई भेदभाव न हो ।

वह सम्पत्ति प्राप्त कर सके और उसकी रक्षा करने मे सक्षम हो सके ।

देश के संविधान और कानून में जो अधिकार उसे दिए गए हैं उनका पालन हो ।

व्यक्ति की इस बुनियादी आजादी की रक्षा पुलिसकर्मी ही करते है । व्यक्ति के जीवन, स्वतंत्रता. समानता व गरिमा से सबंधित ये सभी अधिकार भारतीय संविधान द्वारा प्रत्याभूत है ।

10 दिसम्बर, 1948 को जारी की गई मानवाधिकारों की सार्वमांग घोषणा (Universal Declaration) इस विषय की अधिकृत घोषणा है । दुनियाभर में 10 दिसम्बर को प्रतिवर्ष मानवाधिकार दिवस के रूप में मनाया जाता है ।

पुलिस का काम आतंकवादियों तथा अपराधियों द्वारा किए जाने बाले मानवाधिकारों के उल्लंघन को रोकना है और इन अधिकारों की रक्षा करना है । पुलिस मानवाधिकारों का आदर व रक्षा करती है परन्तु कभी कभी इन अधिकारों का उल्लंघन भी कर जाते हैं जो गलत है तथा रोष उत्पन्न करता है । आमतौर पर पुलिसकर्मी निम्नलिखित गलतियां करते है:-

1. रोजाना की ड्यूटी के दौरान जनता से दुर व्यवाहार करना जबरदस्ती रिश्वत लेना, मारना पीटना
2. जलूसों. जलसों के दौरान जरूरत से ज्यादा ताकत का इस्तेमाल करना ।
3. गिरफ्तार हुए लोगों को मार देना और यह कहना कि
    1. अपराधी मुठभेड़ में मारा गया ।
    2. कैद से भागते वक्त मारा गया ।
4. भागते हुए अपराधी पर बगैर चेतावनी गोली चलाना
5. तलाशी के समय या छापे के वक्त गिरफ्तारी के बाद महिलाओं से अभद्र व्यवहार करना ।
6. किसी भी नागरिक के धर्म, रीति-रिवाज इत्यादि में हस्तक्षेप करना ।
7. हिरासत में रखे लोगों को दैनिक जरूरतों से वंचित रखना ।

पुलिस को चाहिए कि वह कानून के दायरे में रह कर कार्य करें ।

7.4.2 पुलिस और विधिक ढांचा

1. विधि के समक्ष समानता - अनुच्छेद - 14
2. अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता - अनुच्छेद - 19
3. अपराध के लिए दोषी ठहराने के संबंध में सुरक्षा- अनु. 20
4. स्व अभियोग के खिलाफ अधिकार - अनु. 20(3)
5. जीवन और वैयक्तिक स्वतंत्रता की सुरक्षा - अनु. 21
6. गिरफ़्तारी व विरोध के विरूद्ध सुरक्षा - अनु 22
7. विधि सहायता का अधिकार - अनु. 39 (क)
8. सांविधिक उपाय हेतु सर्वोच्च न्यायालय में जाने का अधिकार अनु. 32
9. याचिका जारी करने हेतु उच्च न्यायालय में जाने का अधिकार अनु. 226 दण्ड प्रक्रिया संहिता

1. गिरफ्तारी के आधारों की सूचना धारा 50, 55, 75
2. मजिस्ट्रेट के सामने तुरन्त प्रस्तुत करना धारा 56, 76
3. 24 घंटे से अधिक रोक कर न रखा जाना - धारा 57, 76
4. जमानत का अधिकार धारा 50 (2)

5. वैधानिक व्यवसायी या चिकित्सा व्यवसायी द्वारा जांच करवाने का अधिकार - धारा 54

भारतीय दण्ड संहिता

1. सस्वीकृति उद्दपित करने हेतु चोट पहुँचाना - धारा 330, 331
2. संस्वीकृति उद्दापित करने हेतु गलत परिरोध - धारा 348

पुलिस मैनुअल राज्यों और केन्द्रीय पुलिस बलों की मैनुअलों के द्वारा काफी विस्तार से हिदायते दी गई है ताकि पुलिस द्वारा मानवाधिकारों की अवहेलना से बचा जा सके ।

1. गिरफ्तारी के समय कम से कम ताकत का इस्तेमाल करें ।
2. संदिग्ध व्यक्ति से पूछताछ उचित तरीके से करनी चहिए ।

पुलिस कर्मियों के लिए आचार संहिता बनाई गई है जिसमे उन्हे कैसे कार्य करना चाहिए? तथा ' कैसा होना चाहिए इत्यादि बाते बताई गई है ।

7.4.3 पुलिस मानवाधिकारों का उल्लंघन क्यों करती है

1. जब कोई भी जुर्म होता है तो पुलिस पर दबाव पडता है कि फौरन अपराधी को पकड़े और इस दवाब में पुलिसकर्मी कई गलतियां कर बैठते हैं उसे गलत आदमी को पकड़ना, मारपीट करना ।
2. बहुत ज्यादा काम का होना ब आराम न मिलना ।
3. प्रशिक्षण की कमी का होना ।
4. उच्चाधिकारियों से ठीक समय पर मशविरा न मिलना ।
5. पुलिस कर्मियों के कल्याण और मनोबल की अनदेखी होना ।
6. अपराधियों /आंतकवादियो द्वारा उन पर हमला होना ।
7. पर्याप्त साधनों की कमी होना ।
8. राजनीतिज्ञों का हस्तक्षेप करना उनके हाथों तंग होना या उनसे बढ़ावा मिलना ।

7.4.4 पुलिस द्वारा मानवाधिकारों के उल्लंघन से बचने के उपाय निम्न हैं :-

1. पुलिस बलों को मानवाधिकारों के बारे में पूर्ण प्रशिक्षण मिलना चाहिए । प्रशिक्षण केन्द्रों मे ही उन्हें मानवाधिकारों के संबंध में सांविधानिक व कानूनी प्रावधानों से अवगत करना चाहिए ।
2. पुलिसकर्मियों को यह समझाना चहिए (उच्चधिकारियों द्वारा) कि बे मानव मनोविज्ञान को जाने व कानूनी दायरे में रहकर ही काम करें ।
3. तनाव की स्थिति में अपने पर काबू रखने का खास प्रशिक्षण योग अभ्यास द्वारा होना चाहिए।
4. पुलिस पर अनुचित दबाव नही डालना चाहिए व उनके काम में किसी को भी हस्तक्षेप नही करना चाहिए ।
5. पुलिस को कार्य करने के लिए वैज्ञानिक उपकरण मिलने चाहिए ताकि वे वैज्ञानिक तरीके से अनुसंधान कर सकें व अभियुक्तों से जोर जबरदस्ती न करें ।
6. पुलिसकर्मियों के आराम, कल्याण और मनोबल का पूरा ध्यान रखना चाहिए ।
7. पुलिसकर्मियों की संख्या काम की अधिकता हो तो बढ़ाई जानी चाहिए ।
8. गलती करने वाले कर्मियों की जांच होनी चाहिए व गलती साबित होने पर सजा मिलनी चाहिए ।

9. मानवाधिकारों के बारे में उच्च न्यायालयों व उच्चतम न्यायालय के फैसलों का पुलिस में प्रचार होना चाहिए।

पुलिस की सूचना मांगे जाने पर जनता को सूचना देने की विधि विकसित करनी होगी। प्रशिक्षण काल में ही मानवाधिकार साक्षरता को बढ़ावा देना चाहिए तथा एक ऐसी स्थिति का निर्माण हो जिसमे खुद पुलिसकर्मियों के मानवाधिकारों का सम्मान हो ताकि बे भी जनता के मानवाधिकारों के प्रति संवेदनशील बन सकें।

7.5 पुलिस एवं जन अपेक्षाऐं

जनता पुलिस से क्या चाहती है? इसका भारतीय प्रबंध संस्थान बंगलौर द्वारा एक अध्ययन करवाया गया। इस अध्ययन में यह पता लगाया गया कि अलग-अलग स्थितियों मे लोग पुलिस से कैसे व्यवहार की उम्मीद रखते हैं?

लोगों से बातचीत के दौरान पुलिसकर्मी का आचरण -

आचरण	अपेक्षित	स्वीकार्य	अस्वीकार्य
आगंतुकों का स्वागत करते समय	मुस्कान, आंखें मिला के बात करना	आंखो से देखते हुए बात करना	बिना देखे बात करना।
आगंतुकों की पहचान के लिए पूछताछ	ऐसे प्रश्न जो पहचान से सीधे संबंधित हों	बोध प्रश्न जिनका व्यक्ति की पहचान से संबंध न हों	व्यक्तिगत से असंबंधित प्रश्न
आगंतुकों से दूरी बनाए रहने की कोशिश	बैठने के लिए कहना व बाते सुनना	थोड़े फासले से उनकी बातें सुनना	दूर खडे होने के लिए कहना
आपके सामाजिक स्तर के बारे में पूछना	केवल संबंधित प्रश्न पूछना	नम्रता से पूछना	अपमानजनक सवाल पूछना
आवाज की टोन	मश्दुल, कड़क नहीं	संतुलित व नम्र	आक्रमक, तेज
अंगो की भाषा	खुला सहेज व्यवहार	सामान्य हाव भाव	शत्रुतापूर्ण
बोलने का लहजा	मददपूर्ण	व्यवहारिकता के अनुरूप	उपहास पूर्ण
समय की पाबंदी	जनता से जरूर मिलना	थोड़ी बहुत देरी से मिलना	बहुत प्रतीक्षा के बात
वर्दी तथा व्यक्तिगत सज्जा	बहुत साफ	समान्य साफ व दाढ़ी बनी हुई	गंदी वर्दी, नेम प्लेट न होना।

पुलिस रेस्पांस : अपेक्षित स्वीकार्य अस्वीकार्य

आचरण	अपेक्षित	स्वीकार्य	अस्वीकार्य
पीड़ित से बात का ढंग	खुला सकारात्मक	खुलापन एवं हद तक	गोपनीयता का दिखावा, अस्पष्ट इरादे दिखाना
पीड़ित की बाते समझते समय	ध्यान से बाते सुनना	एकाग्रता से सुनना व बीच में तभी बोलना जब जरूरी हो	बाते सुनते समय दूसरों से भी बात करना, रोक टोक करना
फोन सुनते समय	3-4 घंटियों में फोन उठा लेना अभिवादन करना, अपना परिचय देना	उचित समय के अंदर फोन उठा लेना, नम्रता से बात करना	फोन अटेंड नहीं करना फोन सुनते समय दूसरों से भी बाते करना, ऊंची आवाज में डांट कर बोलना
शोध स्थल पर पहुँचना	सूचना मिलते ही तुरंत पहुंचना	जितनी जल्दी हो सके पहुँचना	दूसरे काम कटे हुए देर से पहुँचना
पीड़ितों के बयान लेना	सहानुभूति, धैर्य और समझदारी के साथ	व्यवहार कौशल से और सटीक	उदासीन, उपेक्षा, दिखाना, ज्यादा समय न देना
पीड़ित से पूछताछ के	लोगों का विश्वास जीत		बात को संक्षेप में खत्म करने की

दौरान	लेने वाला व्यवहार, धैर्य से समझाकर उत्तर देना	उपयुक्त न्याय सम्मत कार्य करना, कानूनी अधिकारों को औपचारिकता से प्रयोग करना	कोशिश लापरवाही शक्तियों का दुरूपयोग डराने धमकाने की कोशिश
लोगों की पूछताछ का उत्तर देते समय	लोगों का विश्वास जीत लेने वाला व्यवहार, धैर्य से समझाकर उत्तर देना	संक्षिप्त लेकिन सही उत्तर देना	उदासीन व्यवहार गलत या भ्रामक उत्तर देना
वी.आई.पी. ड्यूटी देते समय भीड़ नियंत्रण के दौरान	लोगों की असुविधा की परवाह करना, मित्रतापूर्ण	रोक टोक आवश्यकता से अधिक न करना	जोर जबरदस्ती वाला व्यवहार, अभद्र व्यवहार

पुलिस कार्य में पारदर्शिता : अपेक्षित स्वीकार्य अस्वीकार्य

आचरण	अपेक्षित	स्वीकार्य	अस्वीकार्य
सूचना प्रदान करना	सूचना देना, गोपनीयता नहीं	केवल बहुत जरूरी सूचना ही उपलब्ध कराना	बाटो को गुप्त रखना, गलत व भ्रामक सूचना देना
सूक्ष्म विवेक	आवश्यकता पड़ने पर कुछ कहना	गोपनीय/जिससे केस पर असर पड़ता हो, ऐसी बातें नहीं बताना	सूचना को लीक करना, गोपनीय बाते खोल देना
प्रलेखों की कॉपी देना	स्वयं सभी प्रलेखों की कॉपियाँ देना	जनता से कहना कि वे खुद अपनी प्रतियाँ बनाए या बाद में आने को कहना	कॉपिया देने से मना करना, बाद में लेना और ताल देना
तलाशी के समय वारंट दिखाना	कहा न गया हो फिर भी वारन्ट दिखाना	मांगने पर वारन्ट दिखाना व उसकी कॉपी देना	वारन्ट दिखने से मना करना व पढ़ने भी न देना
जमानत के सिलसिले में	कानून के अन्तर्गत अधिकारों को व्यक्ति को बताना, बिना बात रिमाण्ड में न रखना	प्रथम बार में ही जमानती मामलों में जमानत पर रिहा कर देना	जमानत योग्य अपराध में भी रिहा न करना, हथकड़ी लगाना, तंग करना
आरोपी को टेलीफोन आदि कि सुविधा देना	रिश्तेदारों/ वकील को सूचना देने के लिए फोन करने देना। पानी,खाना शौचालय आदि कि सुविधा देना	पानी, खाने कि सुविधाएँ मांगने पर दे देना	सभी सुविधाओं के लिए मना करना

इस अध्ययन के परिणामों से यह स्पष्ट हो जाता है कि जनता पुलिस से उचित सहयोग की अपेक्षा रखती है। जनतांत्रिक सरकार तभी सफल हो सकती है जब जनता का उसे पूरा - पूरा सहयोग प्राप्त हो तथा जनता पुलिस के मध्य उचित समन्वय स्थापित हो । जन सम्पर्क बढ़ाने की संस्कृति का विकास करना एक और उपाय है । पुलिस को कार्य प्रणाली में पारदर्शिता लाने और मांगे जाने पर सूचना देने की विधि और विकसित करनी होगी । पुलिस को पूर्णतया उत्तरदायी बनाने हेतु भी विभिन्न नए प्रयोग करने की आवश्यकता है ।

बोध प्रश्न

1. पुलिस मानवाधिकारों की अवहेलना किन परिस्थितियों में करती है? तथा मानवाधिकारों के हनन से बचने के क्या क्या उपाय हैं?
2. जनता पुलिस से क्या क्या अपेक्षाएं रखती हे?

7.6 सारांश

वर्तमान परिस्थितियों के संदर्भ में राजस्थान पुलिस का सर्वाधिक महत्वपूर्ण लक्ष्य यह है कि जन साधारण में पुलिस के प्रति आस्था बने । लोगों में यह विश्वास जागे कि पुलिस हमारे सहयोग

व सुरक्षा के लिए है । सम्पूर्ण राज्य में पुलिस समुदाय सहभागिता समितियों का गठन किया गया है । जिसमें समाज के विभिन्न वर्गो से रचनात्मक प्रवृति एवं सकारात्मक सोच वाले व्यक्तियों को शामिल किया गया हे । इससे नागरिकों को पुलिस की सीमाओं को समझने का अवसर मिलेगा । साथ ही पुलिस भी जनसाधारण की कठिनाइयों के प्रति संवेदनशील होगी ।

7.7 शब्दावली

1. F.I.R. - First Information Report प्रथम सूचना प्रतिवेदन वह रिपोर्ट जो शिकायतकर्ता सर्वप्रथम पुलिस थाने पर जाकर दर्ज कराता है ।
2. Proactive Policing किसी भी घटना के घटित होने से पूर्व ही पुलिस द्वारा जो एहतियात के तौर पर कार्यवाही की जाती है ।
3. बीट:- किसी भी थाना क्षेत्र का एक भाग जिस पर एक कॉस्टेबल /अन्य अधिकारी नियुक्त होता है जो इस क्षेत्र विशेष से, शिकायत आने पर कार्यवाही करता है । उसे इस क्षेत्र की सम्पूर्ण जानकारी होती है तथा किस प्रकृति के लोग वहाँ निवास करते हैं, उस क्षेत्र के प्रभावशाली व्यक्तियों से भी वह सम्पर्क रखता है ताकि समस्या आने पर उन लोगों से मशवरा करके समस्या का निदान किया जा सके ।
4. RPA (Rajasthan Police Academy) राजस्थान पुलिस अकादमी जयपुर में स्थित है यहां पर राजस्थान पुलिस के प्रशिक्षणार्थियों को प्रशिक्षण दिया जाता है । यह एक प्रशिक्षण संस्थान है जहाँ समय समय पर भिन्न भिन्न प्रकार क ट्रेनिंग कोर्सेज का आयोजन किया जाता है ।
5. CLG (community Liasion Group) सामुदायिक सहयोग समूह/ ये प्रत्येक थाना स्तर पर गठित किए जाते हैं ताकि जनता व पुलिस में बेहतर समन्वय स्थापित हो सके ।

7.8 संदर्भ ग्रंथ

1. Rechhoya, P.N.- “ Laws relating to terrorism and disturbances”, Kute Publication, Jaipur 1987.
2. बोहरा भूषण लाल - मानव अधिकार और पुलिस बल के.के. पब्लिकेशन्स नई दिल्ली ।
3. Sarolia Shankar “Indian Police issues and perspectives Gaurav Pub Lisher 1987
4. Diaz, S.M. ‘’New dimensions to Police and Function’’ , Gaurav Publicashers Jaipur, 1977

7.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

अपने उत्तर में निम्नलिखित बिन्दुओ को सम्मिलित कीजिए -

1. स्वतंत्र भारत में कल्याणकारी राज्य की अवधारणा का जन्म ।
   पुलिस का भिन्न स्वरूप ।
   लोगो की पुलिस से बढती अपेक्षाऐं ।
   पुलिस के जनसहभागिता उपायों की लोगों पर प्रतिक्रिया ।
2. यह लोगो का एक समूह है?

सी.एल.जी का स्वरूप व महत्व की व्याख्या करें ।

सी.एल.जी से होने बाले लाभ का वर्णन करे ।

3. मानवाधिकार की परिभाषा?

मानवाधिकारों के बारे में प्रशिक्षण की आवश्यकता पुलिस को संवदेन शील बनाए जाने के लिए उपयों का वर्णन करे ।

पुलिसकर्मियों द्वारा जिन समस्याओं का सामना करना पडता है उनको सुलझाने के उपाय ।

4. जनता व पुलिस को आमने सामने लाने बाली परिस्थितियों का वर्णन करे ।

पारदर्शिता व उत्तरदायित्व बढाए जाने के आय जैसे प्रबंधन तकनीकों, का उपयोग, उचित प्रशिक्षण, महिलाओं की पुलिस के विभिन्न स्तरों पर भर्ती करने की संस्तुति का विकास ।

इकाई 8

एन. जी. ओ द्वारा सामाजिक समस्याओं का रेखांकन, संभावनाएं एवं सीमाएं

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य
8.1 प्रस्तावना
8.2 राज्य और गैर सरकारी संगठन
8.3 एन.जी.ओ का परिचय
8.4 एन.जी.ओ. की कार्यप्रणाली
8.4.1 एनजीओ. के आकार तथा क्षेत्रीय आधार
8.5 सामाजिक समस्याओं का अर्थ
8.5.1 राजस्थान की सामाजिक समस्याएं
8.6 समाज में एनजीओ की भूमिका
8.6.1 एनजीओ द्वारा रेखांकन
8.7 राजस्थान में एनजीओ
8.8 राजस्थान में एनजीओ के कार्यो की संभावनाएं
8.9 राजस्थान में एनजीओ की सीमाएं
8.10 सारांश
8.11 सन्दर्भ ग्रंथ
8.12 शब्दावली

8.0 उद्देश्य

इस अध्ययन के पश्चात् आप,

1. शासन तथा गैर सरकारी संगठनों के समन्वय का परिचय प्राप्त कर सकेंगे
2. एनजीओ. का अर्थ तथा विशेषताएं समझ सकेंगे
3. सामाजिक समस्याओं का अर्थ जान पायेंगे
4. राजस्थान में प्रमुख एनजीओ तथा उनके कायों का परिचय प्राप्त सकेंगे
5. राजस्थान के कार्यो में एनजीओ. की भूमिकाओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे
6. राजस्थान में एनजीओ के कार्यो की सीमाओं का विवेचन कर सकेंगे

8.1 प्रस्तावना

किसी भी कल्याणकारी राज्य में जन-कल्याण की बहु त सी जिम्मेदारियां राज्य की होती हैं। राज्य न केवल कल्याणकारी कार्यक्रमों को निर्धारित करता है वरन् आर्थिक कार्यक्रमों को भी संचालित करता है । हमारा संविधान इसका बड़ा उदाहरण है । देश में व्याप्त गैर बराबरी को समाप्त करने, कमजोर

वर्गो की प्रस्थिति बदलने, मूलभूत अधिकार देने और नागरिक प्रशासन के विकेन्द्रीकरण की व्यवस्था आदि के प्रावधानों ने केवल सामाजिक समस्याओं को रेखांकित किया है साथ ही उन कार्यक्रमों को भी प्रायोजित किया है, जो सामाजिक समस्याओं के उन्मूलन में सहायक हैं । सामाजिक समस्याओं के प्रति राज्य की संवेदना उन कानूनों में भी अभिव्यक्त होती है जो संसद अथवा विधान सभाओं द्वारा बनाए गये हैं। अस्पृश्यता उन्मूलन अधिनियम, दहेज उन्मूलन विधेयक, विवाह अधिनियम, लड़कियों का संपत्ति का अधिकार तथा बालाश्रम कानून कुछ ऐसे उदाहरण हैं जिन्होंने सामाजिक समस्याओं का सामना करने के लिये कानूनी सहारा दिया है। सामाजिक समस्याओं के प्रति राज्य की संवेदना तथा प्रक्रिया उसके इन्हीं प्रयासों में झलकती है ।

8.2 राज्य और गैर सरकारी संगठन

आधुनिक समाज में राज्य के कार्य और कार्य-प्रणाली के संबंध में अनेक प्रश्न उठ रहे हैं । यह कहा गया है कि राज्य के कार्यक्रम को प्रभावी करने की अपनी सीमाएं हैं । प्रजातंत्र के स्वरूप में जन-भागीदारी, जन सहयोग तथा राज्य से परे स्वयं के प्रयत्न भी आवश्यक हैं । इसका अर्थ यह नहीं है कि राज्य तथा जन प्रयासों के बीच किसी प्रकार के तनाव अथवा संघर्ष की सृष्टि की जाय । इन प्रयासों को राज्य की सहायता अथवा राज्य प्रयासों के पूरक के रूप में देखने का प्रयास भी किया गया है । पर यह भी सब है कि ऐसे जन प्रयासों ने राज्य के आन्दोलन भी चलाए हैं । इन्हीं आन्दोलनों के कारण । राज्य ने इन्हें अपने विरूद्ध माना और कानून-व्यवस्था का मामला समझते हुए उन पर कानूनी कार्यवाही भी की । इसीलिये घनश्याम शाह ने लिखा है कि ऐसे प्रयासों को प्राय: शासन ने अपने विरूद्ध माना है । अत: जन प्रयासों का यह स्वरूप दोतरफा रहा है । एक और बे सामाजिक समस्याओं से जूझने के लिये राज्य के पूरक रहे हैं, दूसरी और आन्दोलनकारी । पिछली दो दशाब्दियों में विश्व स्तर पर जो भी नये आन्दोलन आयोजित किये गये हैं, उनमें ऐसे संगठनों की विशद भूमिका रही है। इसीलिए भूमंडलीकरण का एक पक्ष ऐसे प्रयासों तथा संगठनों का विस्तार भी रहा है । चाहे महिलाओं के विषय हों, या पर्यावरण तथा हरित उपलब्धता के प्रश्न ऐसे संगठनों की भूमिका प्रबल रही है ।

8.3 एन.जी.ओ. का परिचय

ऐसे प्रयासों तथा संगठनों के सन्दर्भ में पहला प्रश्न तो यही है कि एनजीओ. अथवा गैर सरकारी संगठन को अवधारणात्मक रूप में कैसे देखा जा सकता है । एक प्रकार से ऐसे संगठन सामुदायिक संगठन (Community Organizations) हैं दूसरे शब्दों में ऐसे संगठन हैं जो समुदाय के सदस्यों द्वारा स्वेच्छा से स्थापित किए गये है । विस्तृत रूप में ये संगठन स्वैच्छिकता की विचारधारा के हिस्से रजनी कोठारी ने ऐसे संगठनों की विशेष प्रकृति को देखते हुए इन्हें गैर दलीय राजनैतिक संगठन(Non Party Political Organisation) भी कहा है । फिर भी इन संगठनों का स्वेच्छिकता तथा समुदाय के समदरूपों द्वारा इनकी स्थापना मूल आधार है । प्रोनोगस्त का मत है कि संगठनों की अवधारणात्मक परिभाषाएं तो कई हो सकती हैं पर इन संगठनों का शैक्षणिक आधार चिन्हित किया जा सकता है । उनके अनुसार :

1. स्वैच्छिक संगठन कई व्यक्तियों द्वारा निर्मित संगठन है ।
2. जो भी समूह निर्मित होते हैं वे आधिकारिक हैं तथा दीर्घकालीन समय के लिए स्थापित किये गये है ।

3. संगठन लगातार गतिविधियों को आयोजित करते हैं । गतिविधियाँ उन उद्देश्यों के साथ जुडी रहती हैं जिनके लिये संगठन का निर्माण किया गया है ।
4. ऐसे संगठन गैर लाभ की प्रवृति के होते हैं । संगठन धन अर्जित तो करते हैं पर उस धन का प्रयोग मात्र उद्धेश्यात्मक गतिविधियों के लिये ही प्रयोग किया जाता है ।
5. ऐसे संगठन अपनी गतिविधियों के लिये दूसरे संगठनों के ज्ञान, धन, कार्य साधनों तथा संस्थागत ताने-बाने की भागीदारी कर सकते है । इस दृष्टि से विभिन्न संगठन मिलजुल कर किसी बडे उद्देश्य की पूर्ति कर सकते हैं।
6. सामूहिक हितों की पूर्ति के लिये संगठनों का साझा मोर्चा बनना समसामयिक घटना नहीं है ।
7. पूर्व कालीन समय में काम करने वालों के साथ-साथ ऐसे भी लोग सम्मिलित होते हैं जो अपने व्यवसाय तथा घरेलू कार्य से बचे समय में काम करते हैं ।
8. अपने आस पास के ऐसे संगठनों के नाम याद कीजिये जो आपके इलाके में सामाजिक कार्य कर रहे हैं पर सरकारी नहीं हैं ।

आधुनिक समय में ऐसे संगठनों की संरचना अधिकांशत: विकासोन्मुखी होती है । ये नये प्रकार के सामाजिक आन्दोलन हैं जो विकल्पों की चर्चा करते हैं । ऐसे विकल्प जो सामाजिक समस्याओं का उन्मूलन करें तथा जो कुछ समाज में समस्याएं पैदा होती हैं, उसके स्थान पर नयाविकल्प दें । कुदाल आयोग ने गरीबी उन्मूलन के लिये ऐसे संगठनों को राज्य, कारपोरेट सेक्टर के साथ तीसरा सेक्टर माना था ।

8.4 एनजीओ. की कार्य प्रणालियां

इससे पहले कि राजस्थान में एनजीओ. की सामाजिक समस्याओं के रेखांकन की भूमिका के संबंध में विवेचना की जाय, उन कार्य प्रणालियों को देखना भी आवश्यक है जो एनजीओ. अपने उद्देश्यों के लिये अपनाती है । सामाजिक संरचना और सामाजिक समस्याओं के विस्तृत आधारों को देखते हुए इन संगठनों की कार्य-प्रणालियों में भी विविधता है । कार्य प्रणालियों के ये सरूप निम्न रूपों में देखे जा सकते हैं :-

1. पारंपरिक रूप से लोगों को दान देना या धार्मिक सामाजिक कार्यो के लिये सहायता करना । मेघावी छात्रों को छात्रवृति, विधवाओं को सहायता देना तथा रोगियों के इलाज की व्यवस्था इस प्रकार के संगठन करते हैं ।
2. सामाजिक समस्याओं अथवा व्याधियों पर शोध, सर्वेक्षण, मूल्यांकन, सामाजिक प्रगति के कार्यो पर निगाह रखने का कार्य, जानकारी एकत्र करना और उन आकडों का संग्रह करना जो भविष्य के काम के लिये उपयोगी हो ।
3. जन- संचार साधनों के लिये साहित्य तैयार करना । संगठन स्वयं भी प्रकाशन अथवा जागरूकता पैदा करने के लिये साहित्य तैयार कर सकता है । प्रचार का उद्देश्य न केवल लोगों में जागरूकता उत्पन्न करना है, साथ ही उन विकल्पों को भी प्रस्तुत करना है, जिन्हें अपनाया जा सकता है ।
4. जमीनी स्तर पर पहुंच कर ग्रामीण/नगरवासियों से मिलना तथा शासन और स्थानीय नेतृत्व के बीच मध्यस्थता का कार्य करना । ऐसे संगठन ब शासकीय संस्थाओं के प्रतिनिधियों को प्रशिक्षण देने का कार्य भी करते हैं ।

5. परिवर्तन के नये माध्यमों, विचारधाराओं जैसे मानव अधिकार, पर्यावरण आदि विषयों पर संवाद स्थापित करना। संवाद का उद्देश्य उन प्रजातांत्रिक प्रक्रियाओं को स्थापित करना है जिसके माध्यम से जन-सहभागिता में वृद्धि हो सके।
6. एक दबाव समूह के रूप में कार्य । इसका संबंध छोटे-छोटे आन्दोलनों से भी है, जिनका उद्देश्य जन-कल्याण के लिये दबाव बनाना है ।
7. शिक्षा के लिये बड़ी शैक्षणिक संस्थाओं को खोलना तथा बडे अस्पताल खोल कर चिकित्सा का प्रबंध करना ऐसे संगठनों का प्रमुख कार्य है ।

8.4.1 एनजीओ. के आकार तथा क्षेत्रीय आधार

यह स्पष्ट है कि एन.जी.ओ. के उद्देश्य तथा कार्य-प्रणालियाँ बहु आयामी हैं । उनके द्वारा छुए जाने बाले सामाजिक प्रसंग भी बहु आयामी हैं । कार्यप्रणालियों की दृष्टि से ये संगठन सेवा के वाहक हैं । किसी मुद्दे के प्रचार प्रसार के वाहक हैं, और जमीनी स्तर पर जन-संगठन हैं जो कल्याण करने अथवा कल्याण की बाध्यता बनाने का काम करते हैं । ऐसे संगठन वृहद (Macro) तथा लघु (Micro) स्तर-दोनों पर ही हो सकते हैं । विश्व स्तर के एनजीओ. भी मौजूद है और लघु स्तर पर एक गांव मोहल्ले में काम करने वाले एनजीओ. भी ।

8.5 सामाजिक समस्याओं का अर्थ

यदि सामाजिक समस्याओं को परिभाषित किया जाये तो ये दे समस्याएं हैं जो वृहद् स्तर को प्रभावित करती हैं अथवा दूसरे शब्दों में ये वे समस्याएं हैं जिनको समाज के अधिकांश सदस्य समस्या के रूप में अनुभव करते हैं और बहु मत से इन समस्याओं के निवारण में विश्वास रखते हैं । गरीबी, बेकारी, अशिक्षा, छुआछूत, आर्थिक शोषण और गैर बराबरी, जातिवाद, हिंसा का अधिक प्रयोग, अपराधों में वृद्धि, वेश्यावृति आदि । सभी को समाज में बुराई के रूप में जाना जाता है । पर्यावरण संतुलन में कमी, मानक अधिकारों का हनन, सामाजिक मूल्यों में हास और किसानों की आर्थिक स्थिति सभी कुछ किसी न किसी रूप में सामाजिक समस्याओं के रूप में स्वीकार की जाती हैं । भारतीय स्वाधीनता के बाद प्रजातांत्रिक अपराध बढ़े हैं और इन अपराधों से प्रजातंत्र की कार्यशैली पर प्रश्न चिन्ह लगे हैं ।

8.5.1 राजस्थान की सामाजिक समस्याएं

राजस्थान का सामाजिक परिवेश समस्याओं से अछूता नहीं है । राजस्थान पहले से ही सामंती सामाजिक व्यवस्था का हिस्सा था । अधिकांश जमीन जागीरदारों के हाथों में थी । समाज का सोच रूढ़िगत व्यवस्थाओं के साथ जुडा हु आ था। बालविवाह, सती प्रथा, मादक द्रव्यों का सेवन समस्याएं थी । एक भूमि होने के कारण किसान और गरीब रहे परिणाम सरूप गरीबी भी बहु त अधिक थी । पर्दा प्रथा, बाल-विवाह आदि कुरीतियां सर्वत्र काज थीं । स्त्री-शिक्षा का भी नितान्त अभाव रहा । स्त्री शिक्षा का प्रतिशत 1980 में मात्र तेरह प्रतिशत का था । आदिवासी तथा अनुसूचित जनजातियों के सदस्य गहन आंतरिक एवं बाहरी सामाजिक समस्याओं से ग्रसित थे ।

वर्तमान में भी समाज के सामने अनेक समस्याएं हैं जिनका निकला आवश्यक है । यदि इन समस्याओं का विस्तार से वर्णन किया जाय तो बहु त से सामाजिक समूह इन समस्याओं से प्रमाणित हैं । इन समस्याओं के निवारण के लिये सरकारी प्रयत्नों के साथ-साथ जन प्रयत्न भी आवश्यक है।

एनजीओ. इस प्रकार से इन सामाजिक समस्याओं के निवारण के लिये जन हस्तक्षेप के प्रतीक हैं । इस दृष्टि से यह समझना आवश्यक है कि समाज में एन.जी.ओ. की भूमिकाएं क्या हे?

8.6 समाज में एनजीओ. की भूमिका

किसी भी समाज में एनजीओ. की निम्न भूमिकाएं महत्वपूर्ण है -

1. समाज के उचित मुद्दों और कारकों के लिये हस्तक्षेप की भूमिका । इस भूमिका का अर्थ है- इन कारकों के लिये प्रशिक्षण, लोगों का संगठन और प्रभावशाली कदम ।
2. वैकल्पिक रणनीति तथा कार्यक्रमों का प्रस्तुतीकरण । यदि वर्तमान अवस्थाओं से समस्याओं का निवारण नहीं है तो उसका विकल्प तैयार करना और नये कार्यक्रमों का निर्माण आवश्यक हो जाता है । एनजीओ. इस भूमिका का निर्वहन करते हैं ।
3. जन के लिये क्रियात्मक कदमों को प्रोत्साहन, निर्माण तथा उसकी क्रियान्विती । यह कार्य सैद्धान्तिक प्रशिक्षण से भिन्न है । व्यावहारिक दृष्टि से जब तक सैद्धान्तिक आधारों को क्रियात्मक २यरूपों में न बदला जाय, इस प्रकार के प्रशिक्षण किताबी रह जाते हैं । एनजीओ की एक भूमिका क्रियात्मक व्यवहार की भी है।
4. विकास कार्यक्रमों में सहायता अथवा पूरक कार्यक्रमों के रूप में एनजीओ. के कार्य वस्तुत: विकास की संपूर्णता का प्रतीक हैं । बहुत से एनजीओ. के प्रयास विकासोन्मुखी ही होते है और जमीनी स्तर पर उनकी यह भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है ।
5. क्योंकि एन.जी.ओ. सामान्यजनों में कार्य करते हैं अत: जन-सोच विचार और उससे उपजने बाले कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने में एनजीओ. की भूमिका महत्वपूर्ण है । क्योंकि एनजीओ. औपचारिक व्यवस्थाओं से मुक्त होते हैं इसलिए अनौपचारिक स्तर पर बे किसी भी कार्यक्रम के लिये प्रोत्साहित कर सकते हैं । लोग एनजीओ. के माध्यम से अपना दर्शन तथा अपना आंदोलन खुद तय कर सकते हैं ।
6. कभी-कभी एनजीओ. विस्तृत वैचारिक परिवेश के साथ भी जुड़ने का कार्य करते हैं । गांधीवादी विचारधारा के साथ अनेक संगठन जुडे हुए हैं । ये संगठन गांधीवादी विकास योजनाओं को जन-जन तक पहुँचाते हैं । मार्क्सवादी विचार धारा के आधार पर भी कई संगठन हैं जो अपनी सारी संरचना को उसी वैचारिक भूमिका के आधार पर संयोजित करते हैं ।
7. सामाजिक समस्याओं के विरूद्ध संघर्ष के प्रति प्रतिबद्धता पैदा करने का कार्य भी एनजीओ. की महत्वपूर्ण भूमिकाओं में से है । बिना जन प्रतिबद्धताओं के सामाजिक पूंजी का निर्माण नहीं होता तथा जन-भागीदारी भी पैदा नहीं होती । एनजीओ. द्वारा पैदा की गई प्रतिबद्धताएं इसी महत्वपूर्ण भूमिका की कडी हैं ।
8. नव सामाजिक रूपान्तरण के लिये भी एनजीओ. की भूमिका महत्वपूर्ण है । महिलाओं की प्रस्थिति के प्रश्न अछूतों के प्रति व्यवहार, आदिवासियों के विस्थापन के प्रश्न, जनजागरण जमीन के प्रश्न आदि सामाजिक रूपान्तरण के प्रश्न हैं ।
9. समाज में उपलख स्रोतों की उत्पति तथा नये स्रोतों की सृष्टि में भी एन.जी.ओ. की महत्वपूर्ण भूमिका है । नये प्रोत्साहन तथा विकास के लिये नये प्रतिमानों की रचना जमीनी स्तर के कार्य अनुभवों से ही पैदा होती है । एनजीओ. इन स्रोतों पर नियंत्रण तथा रचना के लिये महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं ।

10. एनजीओ. समाज के लिये तथा समस्याओं के प्रति संघर्ष के लिये जन-शक्ति तथा प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं को भी तैयार करते हैं । ये कार्यकर्ता विकास और कार्यक्रमों के लिये महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकते हैं ।

8.61 एन.जी.ओ. के द्वारा रेखांकन.

सामाजिक संस्थाओं का रेखांकन :

एन.जी.ओ. के संबंध में जो कुछ भी विवेचना अभी तक की गई, उसमें बहुत कुछ सामाजिक समस्याओं के रेखांकन के बारे में कहा गया है । यह रेखांकन एनजीओ. के सामाजिक संगठन, कार्यप्रणाली तथा कार्यशैली के माध्यम से देखा जा सकता है । एनजीओ. के संबंध जमीनी संभावनाओं से उपजते हैं उनका संदर्भ व्यापक सामाजिक परिवेश तथा समस्याओं से ही होता है । एनजीओ. की एक महत्वपूर्ण भूमिका उन तथ्यों के एकत्रीकरण से है जो सामाजिक समस्या की प्रकृति, विस्तार तथा उसकी गंभीरता का आभास देते हैं । यह जानकारी मात्र संख्यात्मक (Quantitative) नहीं होती । ऐसी जानकारियाँ गुणात्मक (Qualitative) भी होती हैं । सामाजिक समस्याओं की गंभीरता का आभास गुणात्मक तथ्यों से अधिक होता है । एनजीओ. के प्रशिक्षित कार्यकर्ता तथा समाज वैज्ञानिकों के सहयोग से सामाजिक समस्याएं न केवल चिन्हित होतो हैं, आवश्यक कदमों के उठाने में सहायता भी मिलती है ।

बोध प्रश्न

1. समाज सुधार के लिये स्वयं नियोजित संगठन क्या कार्य कर सकते है?
2. एन.जी.ओ. को कैसे परिभाषित कर सकते है?
3. एन.जी.ओ. द्वारा किये जाने वाले कार्यों के प्रकार क्या है?
4. सामाजिक समस्याओं के निवारण में एन.जी.ओ. की क्या भूमिकाएं हो सकती हैं?

8.7 राजस्थान में एनजीओ. की भूमिका

राजस्थान में पहले से ऐसे संगठन रहे हैं । धार्मिक, सामाजिक आधार पर लोगों की विशेष रूप से निर्धन लोगों की सहायता करना इन संगठनों का उद्देश्य था । बाल-विवाह, सती प्रथा, दहेज आदि सामाजिक समस्याओं के विरूद्ध संघर्ष करने के लिये भी संगठन बने थे । देसी रियासतों की सामंती व्यवस्था के कारण ऐसे संगठनों का कार्य करना बहुत कठिन था । खास तौर से राजस्थान में स्वाधीनता संघर्ष के दौरान प्रजामंडलों की स्थापना के बाद यह काम कठिन हो गया था । स्वयं प्रजा मंडलों ने राजनीतिक कार्यो के साथ-साथ सामाजिक कुरीतियों के विरूद्ध भी संगठनात्मक प्रयत्न किये थे । पर इन सभी संगठनों को सन्देह की दृष्टि से देखा जाता था । पर इसी समय में कुछ अच्छी शिक्षण संस्थाएं स्थापित हुई । उदयपुर में राजस्थान विद्यापीठ, विद्या भवन, वनस्थली में वनस्थली विद्यापीठ ऐसी ही संस्थाएं थीं । इन संस्थाओं का उद्देश्य शिक्षा का प्रसार करना था । प्रौढ़ शिक्षा के माध्यम से बडी आयु के लोगों को भी शिक्षा दी गई । आज भी ये संस्थाएं कार्य कर रही हैं और शिक्षा के क्षेत्र में इन संस्थाओं के योगदान को सराहा गया है ।

आज के राजस्थान में एनजीओ. की संख्या बहुत बडी है । इन संस्थाओं के दायरे भी अलग-अलग हैं । शिक्षा, बालिका-शिक्षा, बालकल्याण, मानव अधिकार, आदिवासी कल्याण, अस्पृश्यता निवारण दस्तकारी प्रोत्साहन, चिकित्सा सुविधा, जाति अथवा धर्म कल्याण विशेष, पंचायती राज,

महिला-कल्याण, महिला-अधिकारी, किसान-कल्याण, किसान-अधिकारी, संस्कृति रक्षा, मंचीय कलाओं, शोध एवं सर्वेक्षण, विभिन्न सामाजिक समस्याओं के निवारण आदि से संबंधित अनेक एनजीओ. राजस्थान में कार्यरत हैं । पर्यावरण सुरक्षा, बन संरक्षण, जीव-संरक्षण आदि विषयों पर भी एनजीओ. स्थापित हुए हैं । इन संस्थाओं की राजस्थान तथा देश के बडे संगठनों के साथ संबद्धता हैं ।

कुछ प्रमुख एनजीओ. की चर्चा की जा सकती है । राजस्थान बंधुआ मजदूर मुक्ति मोर्चा, राजस्थान की हाली प्रथा तथा गरीब किसानों के शोषण के विरूद्ध संगठन हैं अजमेर की गरीब नवाज महिला एवं बाल कल्याण समिति' विशेष रूप से मुस्लिम समाज में काम करती है । 'मजदूर किसान शक्ति संगठन, जवाजा मजदूरों के हक तथा न्यूनतम मजदूरी के प्रश्नों पर केन्द्रित है । समाज कार्य एवं अनुसंधान केन्द्र शिक्षा कर्मी तथा महिला विकास के कार्यक्रम चलाता है । पेयजल उपलब्ध कराने की योजना भी इसकी विशेषता है । उदयपुर के आदिवासी बहुल क्षेत्र में कार्यरत 'आस्था प्रदेश की एक प्रमुख एनजीओ. है । संस्था का मुख्य कार्य संगठन बना कर आदिवासियों द्वारा जन जंगल जमीन के अधिकारों के लिये चेतना जगाना है । उदयपुर की ही सेवा मन्दिर गृह कलह तथा समाज से निकाल दी गई महिलाओं को संरक्षण देती है । हाड़ौती शिल्प संस्थान का उद्देश्य प्रदेश में शिल्प तथा हस्तकलाओं को संरक्षण तथा प्रोत्साहित करना है । चित्तौड़गढ़ की प्रयास संस्था क्षेत्र के मीलों और मीणों के साथ कार्यरत है ।

पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टी राजस्थान में नागरिक तथा मानव अधिकारों की सुरक्षा का कार्य करता है । राजस्थान किसान संगठन, राजस्थान के विभिन्न भागों में किसानों के अधिकारों को सुरक्षित रखने का कार्य करता हैं उदयपुर की 'विज्ञान समिति' तथा जयपुर की राजस्थान विज्ञान सोसायटी' का उद्देश्य, राजस्थान में विज्ञान के व्यावहारिक प्रयोग, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में प्रोत्साहन देना है । उदयपुर का नारायण सेवा संस्थान' विकलांगों के पुनर्स्थापन के लिये महत्वपूर्ण संस्था मानी जाती है ।

राजस्थान में विभिन्न जिलों में बडे पैमाने पर महिला कल्याण के लिये अनेक एनजीओ. हैं। इसी प्रकार बन संरक्षण के लिये भी अनेक एनजीओ. कार्यरत हैं । उदयपुर की राजीव सेवा समिति वन संरक्षण के लिये प्रयासरत महत्वपूर्ण संस्था है । इन एनजीओ. को सरकार, वर्ल्ड बैंक, एशियन डवलपमेंट बैंक आदि अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं से वित्तीय सहायता प्राप्त हुई हैं ।

8.8 राजस्थान में एनजीओ. के कार्यो की संभावनाएं

एन.जी.ओ. मूलत: स्वैच्छिकता की विचारधारा से जन्में है । स्वैच्छिकता एक विचार भी है, और एक तरीका भी । लेकिन विचार और तरीके दोनों पर बहस छिड़ी हुई है । तीन पंचवर्षीय योजनाओं से पहले की योजना में एनजीओ. को गरीबी निवारण के लिए एक महत्वपूर्ण पूरक माना गया था । कुदाज आयोग की रिपोर्ट में यह कहा गया कि सरकार अकेले गरीबी का उन्मूलन नहीं कर सकती । एन.जी. ओ को इस दिशा में एक तीसरे सेक्टर की तरह काम करना चाहिए। वालंटरी सेक्टर एक तीसरे सेक्टर के रूप में स्वीकार किया जाने लगा । यह संभावना वक्त की जाने लगी कि विकास और प्रगति के लिये एनजीओ. एक तीसरे खंभे के रूप में काम कर सकते हैं । राष्ट्रीय स्तर पर एक एनजीओ. की काउंसिल बनाया जाना चाहिए और कार्यक्रमों के लिये आचार संहिता का निर्माण किया जाना चाहिये। इन अपेक्षाओं ने कई प्रश्न पैदा कर दिये हैं । क्या एनजीओ. भारतीय संस्कृति, मनोविज्ञान तथा अध्यात्मक के अनुपूरक है? क्या सामाजिक समस्याओं के निवारण में एनजीओ. शक्तिशाली वाहक

हो सकते हैं? इस देश के प्रजातांत्रिक राजनीतिक परिवेश में क्या एनजीओ. अपने आपको बचाये रख सकते हैं?

जो लोग शासन चलाते हैं उनके और एनजीओ. के बीच के रिश्ते संदेहास्पद हैं । सरकार एन.जी.ओ. को हमेशा संदेह की दृष्टि से देखती है । यह भी कहा गया है कि एनजीओ. भारत में उभरते मध्यम वर्ग की देन है मध्यम वर्ग ही सामाजिक समस्याओं को परिभाषित करता है और नौकरशाही के माध्यम से संस्थानों के स्वरूप को तय करते हैं । एनजीओ. के कार्य कलापों में मध्यम वर्ग की भूमिका कभी - कमी एक वर्ग विशेष का चिन्तन भी है जो' अन्य वर्गो के हितो से मेल नहीं खाता।

एन.जी.ओ. की भूमिकाओं को कई स्थानों पर रेखांकित भी किया गया है । एनजीओ. के कार्यो तथा सुझावों की आन्दोलनात्मक गूँज संसद तक भी पहुंची है । सूचनाके अधिकार का महत्वपूर्ण कानून एनजीओ. की गतिविधियों के कारण ही अमल में आया और भारतीय प्रजातंत्र में पारदर्शिता तथा नागरिक अधिकारों के लिए महत्वपूर्ण कदम माना गया । विस्थापितों के पुनर्वास के लिये सर्वोच्च न्यायालय भी कई बार विचार कर चुका है । शिक्षा के अधिकारों की चर्चा और संविधान में संशोधन का आधार भी एन.जी.ओ. द्वारा तैयार की गयी कई रिपोर्ट तथा चर्चाएं थीं जो जमीनी तथा बौद्धिक स्तर पर तैयार की गई । इस समस्याओं के लिये सारे देश में जनमत तैयार करने में एनजीओ. की था एक भूमिका थी ।

भारत जैसे देश में जहाँ आर्थिक एवं राजनीतिक दबाव बहुत अधिक है । एनजी.ओ.की जन तथा सरकार के बीच महत्वपूर्ण कड़ी बनने कि संभावनाएं बहुत अधिक हैं । सरकार का औपचारिक ढाँचा विकास कार्यक्रमों के लिये प्राय: बाधक माना जाता है । राजस्थान जैसे प्रदेश में जो पिछड़ा हुआ है, मानवीय दबाव बहुत अधिक है । विकास कार्यक्रमों तैयार करने और उन्हें प्रभावी करने में स्वेच्छिकता तथा एन.जी.ओ. दोनों ही अच्छा कार्य कर सकते हैं । आजादी के संघर्ष के दौरान और उसके बाद स्वतंत्र भारत में गांधीवादी संस्थाओं ने आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्र में रचनात्मक योगदान दिया था । एन.जी. ओ के कार्य कलापों से ये संभावनाएं विकसित हुई है जिसमें सामाजिक समस्याओं के निवारण में एन.जी.ओ. समन्वयात्मक आधार पर कार्य कर सकते हैं । वैसे भी नवधारणाएं इस बात की और संकेत करती हैं कि सिविल सोसायटी की साझेदारी समाज में समस्याओं के निवारण तथा समस्याओं के निराकरण के लिये बेहतर कदम है । जनसहयोग तथा सामाजिक पूंजी के निर्माण के लिये केरल में अच्छे प्रयोग सिद्ध हुए हैं ।

8.9 राजस्थान मे एन.जी.ओ. की सीमाएँ

राजस्थान की क्षेत्रिय विभिन्नताओं तथा सामाजिक संरचनाओं को देखते हुए एनजीओ. के कार्यक्रमों की अपनी सीमाएं हैं । स्वयं एनजीओ. की स्थापनाओं और कार्य प्रणालियों की व्यापक आलोचनाएं हुई हैं । एनजीओ. के वित्तीय संकट बहुत हैं जिनके लिये उन्हे सरकार तथा अन्य विदेशी स्रोतों से धन जुटाना पडता है । धन जुटाने के प्रयासों के दो रूप हैं । एनजीओ. कमी-कभी अपनी संस्थाओं को व्यक्तिगत लाभ सूचक बना लेती है । गैर लाभकारी संस्थाओं की अवधारणा यहां समाप्त हो जाती है । जो दानदाता धन देते हैं, उनकी एनजीओ. द्वारा काम करने के लिये अपने प्रतिबंध होते हैं यदि गतिविधियों के लिये धन स्वीकार करना है तो एनजीओ. के लिये इन प्रतिबंधों का मानना आवश्यक है । परिणाम यह होता है कि न चाहते हुए भी एनजीओ. दूसरी को संस्थाओं के दबाव में काम करना पडता है ।

अधिकांश एनजीओ. ग्रामीण एवं आदिवासी क्षेत्रों में कार्यरत हैं । ग्रामीण तथा आदिवासी क्षेत्रों में एनजीओ. की बहुलता तथा उद्देश्यों की विविधता क्षेत्रवासियों की समझ में जटिलता उत्पन्न करती है । एक ही उद्देश्य के लिये संस्थाओं की विविधता अनेक प्रश्न पैदा कर देती है । वैसे भी समाज में जिन लोगों के लिये एनजीओ. काम कर रहे हैं, उनकी समझ में एक सामाजिक समस्या के लिये संस्थाओं की बहुलता कोई प्रभाव नहीं डाल पाती ।

सामान्यजन में यह भी विश्वास है कि विकास कार्यो को करने की शक्ति केवल सरकार के द्वारा ही संभव है । एन.जी.ओ. इस दृष्टि से अक्षम हैं । कभी-कमी प्रारंभ से ही यह अविश्वास एनजीओ. के कार्यो के लिये कष्टकारी हो जाता है । सामाजिक समस्या में एनजीओ. की भूमिका की विश्वसनीयता तथा सामाजिक समस्याओं के ताने बाने को भेदने की क्षमता की विश्वसनीयता - दोनों ही एनजीओ. की कार्यक्षमता पर प्रभाव डाल सकती हैं ।

बहुत से कार्यो के लिये अब सरकारें एनजीओ. से साझेदारी मांगने लगी हैं । इस साझेदारी के लिये समझौते होते हैं । इन समझौतों की शर्त और कार्य प्रणालियां संबंध में प्राय: एनजीओ. का सरकारीकरण कर देते हैं । यही सरकारीकरण एनजीओ. और राज्य के कार्यो में अंतर नहीं करता । इन अंतरों के प्रभाव में कार्यप्रणाली भी विकृत हो जाती है ।

एन.जी.ओ. की एक सीमा सामाजिक समस्याओं के निवारण के लिये प्रतिबद्ध कार्यकर्ताओं की भी है । गांधीवादी विचारधारा में, ऐसे प्रतिबद्ध कार्यकर्ताओं की कोई कमी नहीं थी । पर वर्तमान में एनजीओ. में नौकरी एक व्यवसाय हो गयी है । एनजीओ. के लिये एक बड़ी सीमा उस कुशल कार्य-संचालन की भी है जो सामाजिक समस्याओं के निवारण में प्रभावशाली तरीके से काम कर सके । किसी भी संगठन के अपने तनाव होते हैं । इन तनावों का प्रबंधन आवश्यक है ।

8.10 सारांश

राजस्थान में काफी संख्या में ग्रामों और शहरों में एनजीओ. कार्यरत हैं । राजस्थान की सामाजिक समस्याओं के निवारण में उनका योगदान है । बहुत से एनजीओ. सामाजिक कुरीतियों तथा विश्वास के विरूद्ध काम कर रहे हैं । इन प्रयत्नों के परिणाम भी निकले हैं, पर अभी भी एनजीओ. की सामाजिक परिवर्तन की शक्ति बनना शेष है ।

बोध प्रश्न 2

1. किस प्रकार की समस्याओं को एन जी ओ द्वारा रेखांकित किया गया है ।
2. राजस्थान मे कुछ प्रमुख एन जी ओ के नाम बताइए।
3. राजस्थान की नारी कल्याण जन अधिकार आदिवासी कल्याण के लिए कार्यरत एन जी ओ को बताइये।
4. राजस्थान की सामाजिक समस्याओं को दूर करने में एनजीओ. की भूमिका एवं संभावनाएं बताइये ।
5. राजस्थान में एनजीओ. द्वारा किये जाने बाले कार्यो की सीमाएं क्या हैं

8.11 सन्दर्भ ग्रंथ

1. Kavi Raj Sandipto, Khilnavi sumil civil society (combridge) 2002
2. रे पेत्रास, मेयर: एनजीओ राहुल फाउण्डेशन

3. अंजरी भी उत्रास: जयपुर
4. सेमीनार संख्या 365 बालंटरी आपशन
5. सेमीनार संख्या 468 - न्यू सोशल मूवमेंट
6. मनोरंजन मोहन्वी, पार्थनाथ मुखर्जी पीपुल्स राइट्स सेज - 2003
7. राम आहूजा, भारत में सामाजिक समस्या, रावत 1990

8.12 शब्दावली

आधुनिक समाज	आधुनिकता के आधार पर परिवर्तनशील समाज
प्रजातंत्र	जन-भागीदारी के आधार पर स्थापित शासन-व्यवस्था
एन.जी.ओ.	स्वैच्छिक आधार पर संयोजित संगठन
सामाजिक समस्या	समाज के अधिकांश सदस्यों द्वारा अनुभव की जाने बाली व्याधि जिसको समाज समाप्त करना चाहता है ।
रेखांकन	चिन्हित करना

इकाई 9

सामाजिक परिवर्तन : अवधारणात्मक विवेचन

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य
9.1 प्रस्तावना
9.2 सामाजिक परिवर्तन का अर्थ एवं परिभाषा
9.3 सामाजिक परिवर्तन की विशेषताएं
9.4 सांस्कृतिक परिवर्तन व सामाजिक परिवर्तन में अन्तर
9.5 सामाजिक परिवर्तन से सम्बंधित अवधारणाएं ।
9.6 सामाजिक परिवर्तन के कारक
9.7 सामाजिक परिवर्तन के प्रतिमान
9.8 सारांश
9.9 बोध प्रश्न
9.10 सन्दर्भ ग्रंथ

9.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप पाठक सामाजिक परिवर्तन की अवधारणा को समझ पायेंगे।

1. सामाजिक परिवर्तन व सांस्कृतिक परिवर्तन में अन्तर समझ पायेंगे ।
2. सामाजिक परिवर्तन से जुडी अवधारणाओं को स्पष्ट कर सकेंगे ।
3. सामाजिक परिवर्तन करने वाले कारक ब राजस्थान में हु ए परिवर्तनों के बारे में जानकारी कर प्राप्त पायेंगे ।

9.1 प्रस्तावना

19वीं शताब्दी के साहित्य एवं चिन्तन के अनेक रूपों में सामाजिक परिवर्तन के विश्लेषण की चेष्टा की गई है । सामाजिक परिवर्तन की व्याख्या में हीगल और कांट ने वैचारिक तथा बौद्धिक कारकों पर विशेष बल दिया । मार्क्स ने आर्थिक कारक को आधारभूत तल माना है, स्पेन्सर ने परिवर्तन की प्रक्रिया को उद्‌विकास के माध्यम से समझाया है, तथा दुर्खीम ने श्रम विभाजन को आधारभूत कारण माना है ।

परिवर्तन के तीन घटक बताये जा सकते हैं -

(i) वस्तु (Object or thing) : परिवर्तन का सम्बन्ध किसी न किसी विषय अथवा "वस्तु" से होता है । विषय वस्तु को बताये बिना हम परिवर्तन का अध्ययन नहीं कर सकते । यह स्पष्ट एवं सुनिश्चित होना चाहिये कि परिवर्तन किस विषय अथवा वस्तु में देखा जा रहा है ।

(ii) समय (Time) : परिवर्तन के लिये समय अन्तराल का होना आवश्यक है एक ही समाज में परिवर्तन की चर्चा नहीं की जा सकती ।

(iii) भिन्नता (Variation) वस्तु के रंग रूप, आकार-प्रकार. संरचना कार्य अथवा अन्य पक्षों में समय के साथ कितनी भिन्नता आई हैं उसके आधार पर परिवर्तन को देखा जा सकता है ।

परिवर्तन क्या है? (What is change)

सामान्य अर्थों में 'परिवर्तन' का तात्पर्य 'बंदलाव' से लगाया जाता है, अर्थात् किसी व्यक्ति, क्रिया या वस्तु की पहले की अवस्था में बदलाव आ जाना ।

फिचर : सोशियोलोजी ने परिवर्तन के बारे में लिखा हैं कि 'संक्षेप में परिवर्तन पहले की अवस्था या अस्तित्व के प्रकार में अन्तर को कहते हैं । "

परिवर्तन की प्रकश्ति को निम्नलिखित विशेषताओं द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है -

1. परिवर्तन किसी भी भौतिक या अभौतिक वस्तु की निश्चित दिशा में बदलाव की स्थिति है । जब कभी परिवर्तन की बात की जाती है तो हम किसी न किसी वस्तु की बात करते हैं । जैसे- व्यवहार में परिवर्तन, खानपान में परिवर्तन, वेशभूषा में परिवर्तन, मनोवृत्तियों में परिवर्तन, इनमें व्यवहार खान-पान, वेशभूषा, मनोवृत्तियाँ वस्तु हैं। इनके बिना परिवर्तन की व्याख्या नहीं की जा सकती
2. परिवर्तन या तो वस्तु की स्वयं की प्रकृति के किन्हीं नियमों द्वारा या समाज द्वारा जानबूझ कर, योजनाबद्ध ढंग से किया जा सकता है ।
3. परिवर्तन में कभी तो सिर्फ वस्तु के एक पक्ष में ही बदलाव आता है और कभी-कभी सम्पूर्ण ढाँचा ही बदल जाता है।
4. परिवर्तन के लिये दो समय का होना आवश्यक है, एक ही समय में बदलाव नहीं हो सकता । जैसे कि हम कहते हैं कि स्त्रियों की प्रस्थिति में बदलाव आया है । इस बदलाव में समय निश्चित लगा है ।
5. परिवर्तन एक सार्वभौमिक प्रक्रिया है अर्थात् यह सभी समाजों में पायी जाती है ।
6. परिवर्तन सार्वकालिक प्रक्रिया है, अर्थात् यह सभी कालों (भूत, वर्तमान, भविष्य) में किसी न किसी रूप में रहती है।

9.2 अर्थ एवं परिभाषा

सामाजिक परिवर्तन एक प्रक्रिया है । सामाजिक परिवर्तन का तात्पर्य समाज में होने बाले परिवर्तनों से है । इसमें एक निश्चित समयावधि में घटनाओं की एक श्रृंखला होती हैं । इसमें निरन्तरता की भावना विद्यमान होती है और यह कार्य-व्यापार के उस क्रम को व्यक्त करती है जो सामाजिक परिवर्तन के कारक होते हैं ।

सन् 1922 से पहले उद्भव विकास प्रगति और सामाजिक परिवर्तन तीनों अवधारणाओं को प्राय: एक ही अर्थ में ग्रहण किया जाता था । लेकिन इन तीनों के बीच स्पष्ट भेद ऑग्बर्न ने अपनी पुस्तक सोशियल चेन्ज (1922) में किया।

मैकाइवर एवं पेज :- सोसाइटी पृ. सं. 511) ने सामाजिक परिवर्तन के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा है " मजशास्त्री होने के नाते हमारी रूचि प्रत्यक्ष रूप से सामाजिक संबंधो में हैं । केवल इन सामाजिक संबंधो में होने वाले परिवर्तन को ही हम सामाजिक परिवर्तन कहते हैं । इस परिभाषा में मैकाइवर एवं पेज सामाजिक परिवर्तन की व्याख्या सामाजिक संबंधो के सन्दर्भ में करते हैं । इन सामाजिक संबंधो में किसी प्रकार का परिवर्तन होगा तो उसे सामाजिक परिवर्तन कहेंगे।

किंग्सले डेविस :- ह्यूमन सोसाइटी पृ. सं. 662) कहते हैं कि 'सामाजिक परिवर्तन से हम केवल उन्हीं परिवर्तनों को समझते हैं, जो सामाजिक संगठन अर्थात् समाज के ढाँचे और प्रकार्यों में घटित होते हैं ।"

जॉनसन :- सोशियोलोजी- ए सिस्टिमेटिक इन्ट्रोडेक्शन पृ. सं. 674) के अनुसार "अपने मूल अर्थ में सामाजिक परिवर्तन का अर्थ सामाजिक ढाँचे में परिवर्तन है ।" अर्थात सामाजिक मूल्यों, संस्थाओं, व्यक्तियों एवं उनकी अभिवृतियों एवं योग्यताओं में होने वाले परिवर्तन को सामाजिक परिवर्तन कहते है ।

गिलिन एवं गिलिन :- कल्चरल सोशियोलोजी पृ. सं. 561 -582) के अनुसार " सामाजिक परिवर्तन जीवन की स्वीकृत विधियों में होने वाले परिवर्तन को कहते हैं । चाहे ये परिवर्तन भौगोलिक दशाओं के परिवर्तन से हुए हों या सांस्कृतिक साधनों जनसंख्या की रचना या विचारधारा के परिवर्तन से या प्रसार से अथवा समूह के भीतर ही आविष्कारों के फलस्वरूप हुए हों ।" प्रत्येक समाज में लोग जीवन जीने के लिये कुछ मान्यता प्राप्त रीतियों या तरीकों को अपनाते हैं । अगर रीतियों या तरीकों में कोई परिवर्तन होता है तो उसे सामाजिक परिवर्तन कहते हैं ।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि सामाजिक परिवर्तन का तात्पर्य सामाजिक संस्थाओं नियमों, सामाजिक संबंधो, मूल्यों, विचारों, सामाजिक संरचना एवं प्रकार्यों में होने वाले परिवर्तन से हैं ।

9.3 विशेषताएँ (Characteristics)

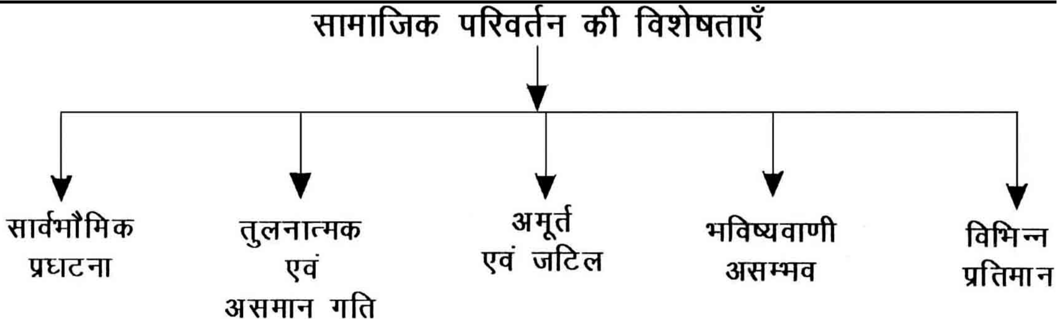

1. सार्वभौमिक प्रघटना (Universal Phenomenon)

विश्व के प्रत्येक समाज में परिवर्तन अवश्यम्भावी है और इसी कारण से सामाजिक परिवर्तन को सार्वभौमिक कहा जा सकता है । विभिन्न समाजों में परिवर्तन की गति एवं स्वरूप भिन्न हो सकता है क्योंकि कोई भी दो समाज एक जैसे नहीं होते उनके इतिहास संस्कृति प्रकृति आदि में इतनी भिन्नता होती है कि कोई एक दूसरे के प्रतिरूप नहीं हो सकता आदिम समाजों में परिवर्तन की गति अत्यधिक धीमी होती है दूसरी ओर सच समाजों में परिवर्तन की गति अत्यधिक तीव्र होती है ।

2. तुलनात्मक एवं असमान गीत (Comparative and Unequal speed)

ग्रामीण समाजों में परिवर्तन मन्द गति से आता है जबकि शहरी समाज में परिवर्तन तीव्र गति से आता है। इन दोनों स्थानों में परिवर्तन को तुलना द्वारा ही बता सकते हैं कि किस स्थान पर कितना परिवर्तन आया । सामाजिक परिवर्तन देश काल, परिस्थितियों से भी घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है अर्थात् हर देश की परिस्थितियाँ असमान होती है अत: हर देश में सामाजिक परिवर्तन भी असमान गीत से होता है जिसे तुलनात्मक रूप से जाना जा सकता है ।

3. अमूर्त एवं जटिल (Abstract & Complex Phenomenon)

सामाजिक सम्बन्धों की अमूर्तता के कारण ही सामाजिक परिवर्तन भी अमूर्त माना जाता है दो समाजों में हुए परिवर्तन की तुलना के आधार पर यह स्पष्ट हो सकता है कि परिवर्तन हुआ है किन्तु कितना या किस स्तर का? इसका माप-तोल संभव नहीं होता । उदाहरणार्थ - आज के विचार, मूल्य परम्पराएं रीति-रिवाज प्राचीन समय से भिन्नता लिये हुए हैं लेकिन कितना अन्तर है इसको मापा नहीं जा सकता क्योंकि परिवर्तन गुणात्मक रूप में होता है ।

4. भविष्यवाणी असंभव (Prediction is Impossible)

परिवर्तन किस दिशा में होगा? किस स्थान पर होगा? किस रूप में होगा? यह कहा नहीं जा सकता यदि आज एक समाज के संबंध दूसरे समाज से अच्छे हैं तो कल उनमें तनाव या संघर्ष भी हो सकता है ।

औद्योगीकरण और नगरीकरण ने संयुक्त परिवार, विवाह, जाति प्रथा आदि अनेक क्षेत्रों को प्रभावित किया है जिसके सम्पूर्ण प्रभाव के विषय में निश्चित भविष्य वाणी नहीं की जा सकती, केवल पूर्वानुमान लगाया जा सकता है ।

5. विभिन्न प्रतिमान (Various Pattern)

सामाजिक परिवर्तन सदैव एक ही प्रकार का नहीं होता है, अपितु परिवर्तन के विभिन्न प्रतिमान होते हैं, जैसे रेखीय प्रतिमान, चक्रीय प्रतिमान, उतार चढ़ाव का प्रतिमान । शिक्षा' विज्ञान एवं कला आदि के क्षेत्र में रेखीय प्रतिमान को देखा जा सकता है जबकि फैशन के क्षेत्र में चक्रीय प्रतिमान एवं आर्थिक क्षेत्र में उतार चढ़ाव के प्रतिमान को देखा जा सकता है ।

9.4 सांस्कृतिक परिवर्तन व सामाजिक परिवर्तन में अन्तर

1. सामाजिक परिवर्तन केवल सामाजिक सम्बन्धों में होने बाले परिवर्तन हैं जबकि सांस्कृतिक परिवर्तन के अन्तर्गत कला, साहित्य, धर्म आदि में होने बाले परिवर्तनों को लिया जाता है ।
2. सामाजिक परिवर्तन के फलस्वरूप समाज का ढाँचा कुछ न कुछ अवश्य ही बदल जाता है जबकि सांस्कृतिक परिवर्तन के फलस्वरूप सांस्कृतिक के विभिन्न पक्षों में परिवर्तन होते हैं ।
3. सामाजिक परिवर्तन की गति सांस्कृतिक परिवर्तन की अपेक्षा तेज होती है क्योंकि सामाजिक सम्बन्धों में जितनी तीव्रता से परिवर्तन हो सकते हैं उतनी शीघ्रता से कला धर्म और दर्शन, विज्ञान और परम्परा आदि में नहीं हो सकते ।

सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन दो अलग-अलग तरह के परिवर्तन हैं, लेकिन भिन्नता का अर्थ यह नहीं है कि दोनों में कोई संबंध है ही नहीं । वास्तव में दोनों का एक दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध है और एक का प्रभाव दूसरे पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अवश्य ही पडता है ।

9.5 सामाजिक परिवर्तन से संबन्धित अवधारणाएं (Concept Related to change)

सामाजिक परिवर्तन से मिलते जुलती कुछ महत्वपूर्ण अवधारणाएं हैं जो निम्न प्रकार हैं-

अवधारणाएं

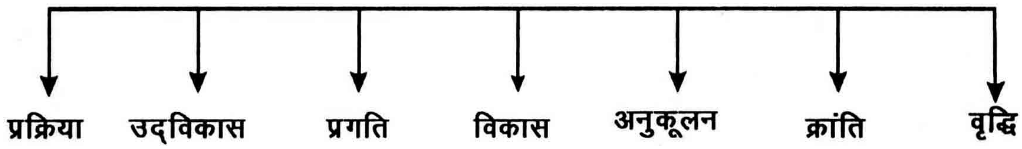

1. **प्रक्रिया (Process) :-** जब एक के बाद दूसरी क्रिया शरम होती है और परिवर्तन का क्रम कुछ काल तक चलता रहता है। इस प्रकार का परिवर्तन किसी विशिष्ट दिशा में नहीं होता। ऐसे परिवर्तन को ही प्रक्रिया कहा जाता है । उदाहरणार्थ:- जब हम कहते हैं कि आज समाज आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में है तो हमारा आशय है कि प्राचीन मूल्य, परम्पराएँ आदि निरन्तर परिवर्तित हो रही है ।

2. उद्विकास (Evolution)

उद्विकास का सम्प्रत्यय सर्वप्रथम डार्विन ने दिया था। उन्होंने कहा कि किसी वस्तु का सरलता से जटिलता की ओर जाना उद्विकास है। सरलता से जटिलता की ओर जाने की यह प्रक्रिया कुछ निश्चित चरणों में होती हैं । उद्विकास के रूप में सामाजिक परिवर्तन की व्याख्या सर्वप्रथम हर्बर्ट स्पेन्सर ने की जिसमें उन्होंने डार्विन के इस सिद्धान्त को समाज पर लागू किया । उनके मत में, " उद्विकास किसी तल का समन्वय व उससे सम्बद्ध वह गति है जिसके दौरान वह तत्व एक अनिश्चित असम्बद्ध भिन्नता में बदलता है । ऑगबर्न तथा निमकॉफ (A Handbook of Sociology P- 603) के अनुसार सामाजिक उद्विकास को एक ऐसे परिवर्तन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो एक दिशा में घटित होता है। उद्विकास में किसी वस्तु के आन्तरिक गुणों में परिवर्तन होता है। उद्विकास होने पर हमें वस्तु की संरचना में या कार्य में भी अन्तर दिखाई पडता है ।

3. प्रगति (Progress)

प्रगति में वे परिवर्तन लिए जाते हैं जो समाज के विकास के लिए होते हैं। प्रगति ऐसे परिवर्तन से संबन्धित है जो समाज के उद्देश्यों व, लक्ष्यों के अनुरूप हो । प्रगति समाज की अच्छाई की ओर होने वाले परिवर्तन को कहा जाता है । यह प्राय: नियोजित होती है । प्रगति का सम्बन्ध सामाजिक मूल्यों व आदर्शो से होता है। समाज जिन आदर्शो को अपने लिए उचित मानता है उसी दिशा में होने वाले परिवर्तन प्रगति कहलाते हैं । प्रगति को सभी समाजों पर सार्वभौमिक रूप से लाग नहीं किया जा सकता क्योंकि प्रगति मूल्य, आदर्श व नैतिकता से सम्बन्धित है जो प्रत्येक समाज के लिए भिन्न-भिन्न हो सकती है ।

4. विकास (Development)

विकास से तात्पर्य किसी वस्तु में होने वाले परिवर्तन से है जो श्रेष्ठता की ओर होता है। बालक भी जब शिशु से युवावस्था को प्राप्त करता है जो उसमें शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, सामाजिक, नैतिक सभी प्रकार का परिवर्तन होता है तभी वह समायोजित व्यक्तितत्व को प्राप्त करता है । भारत की तुलना में पश्चिमी समाज इसीलिए विकसित माने जाते हैं क्योंकि बे आर्थिक, तकनीकी, शिक्षा आदि सभी क्षेत्रों में परिवर्तित हो गए हैं । विकास समाज की प्रगति के लिए आवश्यक है । विकास के लिए चार मापदण्ड बताए जा सकते हैं (1) मात्रा में वृद्धि (2) कार्यक्षमता (3) आपसी सहयोग, और (4) स्वतंत्रता।

5. अनुकूलन (Adaptation)

अनुकूलन में एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से अथवा परिस्थिति से अपना समायोजन करने का प्रयत्न करता है । अनुकूलन की प्रक्रिया में दो बातें विशेष हैं - (1) व्यक्ति अपने को परिस्थिति के अनुसार बना ले अथवा (2) परिस्थिति को अपनी आवश्यकता के अनुरूप बना ले । समाज के स्तर पर भी अनुकूलन होता है- अनुकूलन के लिए समायोजन (adjustment), अभियोजन (Accomodation) आत्मसात्करण (Assimilation) तथा एकीकरण हुई (Intergration) आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है जो बताते हैं कि अनुकूलन किस सीमा तक होता है ।

6. क्रान्ति (Revolution)

जब समाज में शोषण, अत्याचार, तनाव व असन्तोष अत्याधिक बढ़ जाता है तो राजनैतिक अवस्था छिन्न-भिन्न हो जाती है और सामाजिक नैतिक मूल्यों में भी गिरावट आ जाती है । समाज में तीव्रता से परिवर्तन आ जाता है ऐसी स्थिति क्रान्ति कहलाती है । क्रान्ति प्राय: आर्थिक व राजनैतिक क्षेत्रों में तीव्रता से आती है । धार्मिक क्रान्ति, औद्योगिक क्रान्ति, राज्य क्रान्ति शब्दों से ही स्पष्ट है कि क्रान्ति संस्कृति के एक विशिष्ट अंग में ही होती

7. वृद्धि (Growth)

वृद्धि वस्तु में परिमाणात्मक परिवर्तन को बताती है । वृद्धि आकार में होने वाले परिवर्तन को कहा जाता है । इसकी एक सीमा होती है, उस सीमा के वाद वृद्धि नहीं होती या रूक जाती है । साथ ही किसी एक दिशा में या क्षेत्र में हुए पखिर्तन को बताती है । उदाहरण के लिए- समाज में जन्म दर एवं मृत्यु दर में हुई वृद्धि को मापा जा सकता है ।

9.6 सामाजिक परिवर्तन के कारक (Factors of Social change)

अनेक समाज विचारकों ने इस तथ्य का अध्ययन किया कि सामाजिक परिवर्तन क्यों होता है? बे कौन से कारक हैं जो सामाजिक परिवर्तन के लिये उत्तरदायी हैं? सामाजिक परिवर्तन के निम्नलिखित कारक हो सकते हैं :-

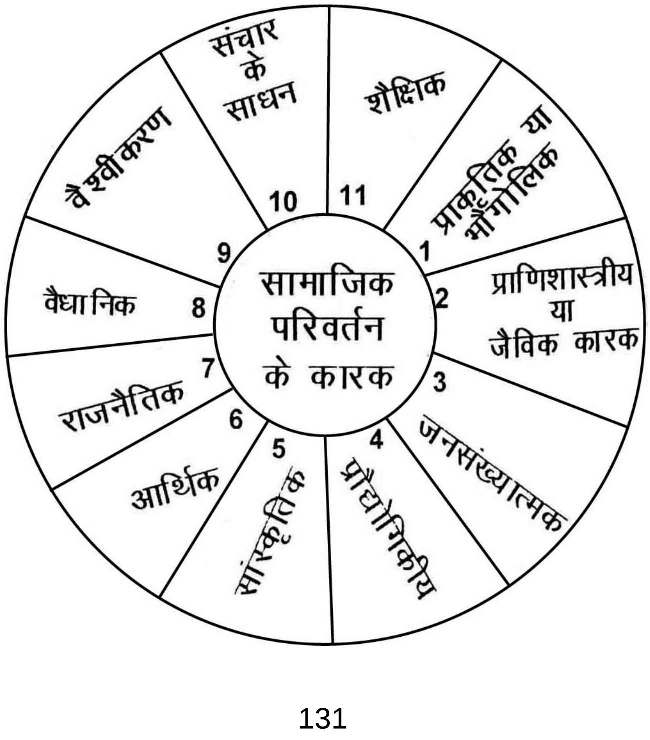

1. प्राकृतिक या भौगोलिक कारक (Natural or and Geographical Factor)

अनेक बार प्रकृति अपने तरीके से सामाजिक परिवर्तन का महत्वपूर्ण कारक बन जाती है । जैसे- भूकम्प, बाढ़, अतिवृष्टि आदि गाँवों को अपनी चपेट में ले लेते हैं जिससे परिवार उजड़ जाते हैं या इधर-उधर अपनी सुरक्षा के लिये चले जाते हैं जिसके कारण उनके वास्तविक सबब भी अदृश्य हो जाते हैं। कालान्तर में वे नये सम्बन्धों का निर्माण कर लेते हैं जिससे परिवार, विवाह, नातेदारी आदि में परिवर्तन आ जाता है । जहाँ प्रकृति का प्रकोप किसी रूप में नहीं होता प्रकृति शान्त रहती है वहाँ पर व्यक्ति प्रगति करते हैं, विज्ञान का विकास होता है नवीन निर्माण होते हैं । समाज सशक्त बनता है, प्रतिस्पर्धा कम होती है ।

राजस्थान में 20 वीं शताब्दी में 1977-82 में इसी सदी का सबसे लम्बे समय के लिये अकाल पड़ा । अकाल के कारण फसल को नुकसान, पशुधन की हानि तथा पानी के स्थानीय स्त्रोत सूख गये। लेकिन भुखमरी से जनहानि नहीं हुई क्योंकि ऋण भोजन, पानी आदि के रूप में प्रभावित क्षेत्रों में जन सहायता की गई । पश्चिमी राजस्थान में अकाल पड़ते रहना आश्चर्यजनक नहीं है लेकिन इसके कारण बहुतायत उत्प्रवास में होता है । जुलाई 2002 में अभूतपूर्व सूखे के कारण राजस्थान के सभी जिलों को अकालग्रस्त घोषित किया गया। राजस्थान नहर आने से। राजस्थान में अकाल का स्थाई हल निकल रहा है । इससे और लोगों को रोजगार मिला है उत्प्रवास रूका है

2. प्राणीशास्त्रीय या जैविक कारक (Biological Factor) -

किसी समाज के लोगों की जन्म एवं मृत्यु दर जनसंख्या की न्यूनता एवं अधिकता औसत आयु आदि प्राणी शास्त्रीय कारणों से प्रभावित होती है । उदाहरणार्थ:- यदि किसी समाज में पुरुषों की औसत आयु कम है तो वही विधवा विवाह के रूप में सामाजिक परिवर्तन आ सकता है, इसके परिणामस्वरूप स्त्री की प्रस्थिति एवं बच्चों की शिक्षा आदि भी प्रभावित होगी ।

यदि किसी समाज में स्त्रियों की संख्या अधिक है तो बहु-पली विवाह की प्रथा हो सकती है। किसी समाज में यदि दुर्बल ब कमजोर व्याक्ति होंगे तो वहाँ नवीन आविष्कार नहीं हो सकेंगे ।

3. जनसंख्यात्मक कारक (demographic Factors)-

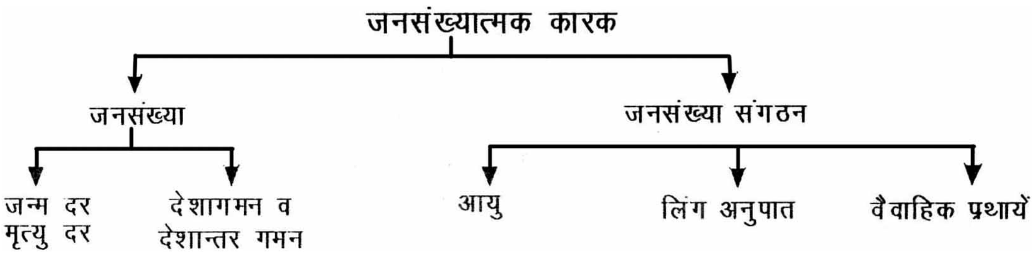

किसी भी राष्ट्र की जनसंख्या अधिक होगी तो बही पर गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा, वेश्यावृत्ति, भिक्षावृति, गन्दी बस्तियों आदि की समस्या बढ़ेगी । इसके परिणामस्वरूप लोगों की मनोवृत्तियों मूल्यों रहन-सहन, आचार-विचार इत्यादि में भी परिवर्तन आएगा । जनसंख्या बढ़ने से उत्प्रवास (Emigration) को बढ़ावा मिलेगा जिससे सांस्कृतिक आदान-प्रदान बढ़ता है । यौन-संतुलन (Sex Ratio) मी परिवर्तन का आधार है । प्रति एक हजार पुरुषों के कितनी स्त्रियाँ हैं, इससे कई प्रकार को स्थितियाँ विकसित होती हैं । यदि स्त्री-पुरुषों का यौन संतुलन बराबर होगा तो बही प्राय: एक विवाह जैसी संस्था का विकास होगा और अगर स्त्रियाँ अधिक होंगी तो बहुपत्नी विवाह का विकास होगा और जहाँ बहुपत्नी विवाह होगा वहाँ पुरुषों का स्वास्थ्य गिरेगा, आर्थिक असंतुलन बढ़ेगा, जनसंख्या अधिक

बढ़ेगी, परिहार में ईर्ष्या, द्वेष झगड़े अधिक होंगे । अगर पुरुषों की संख्या अधिक होगी तो बहुपति विवाह का प्रचलन बढ़ेगा और इससे समाज में कई अन्य प्रकार की समस्याएँ खड़ी होंगी । पिछली एक शताब्दी (1901-2001) में राजस्थान की जनसंख्या लगभग साढ़े पाँच गुणा हो गई है । राजस्थान में स्त्री-पुरूष अनुपात 1901 में 905 तथा 1991 में 910 था जो 2001 में बढ़कर 922 हो गया है। यह एक शुभ संकेत हैं और प्रदेश में महिलाओं की स्थिति में निरंतर सुधार को इंगित करता है ।

4. प्रौद्योगिकीय कारक (Technological Factors) -

पिछले पाँच सौ सालों में जितने भी परिवर्तन आए हैं उसका प्रमुख श्रेय प्रौद्योगिकी को जाता है । प्रौद्योगिकी का अर्थ उन उन्नत प्रविधियों से हैं जो लोगों की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्तिका साधन होती हैं । मैकाइवर एवं पेज ने लिखा है कि 'जब कभी समाज में कोई नयी मशीन का आविष्कार होता है तो उससे समाज में कई तरह के परिवर्तन हो जाते हैं" आग्बर्न ने कहा है कि 'एक रेडियो के आविष्कार ने समाज में लगभग 150 तरह के परिवर्तन लाने में योगदान दिया है ।" उदाहरण के लिए टी.वी., मोबाईल, कम्प्यूटर के आविष्कार ने आज हमारा सामाजिक जीवन इतना बदल दिया कि जिसकी हमने कभी कल्पना भी नहीं की होगी ।

समूचे देश के साथ-साथ राजस्थान में भी विभिन्न इलेक्ट्रोनिक एवं अन्य संचार माध्यमों का अभूतपूर्व विकास हुआ है। चलचित्रों दूरदर्शन उपग्रहों के माध्यम से उपलब्ध अनेकों चैनल, रेडियो इन्टरनेट आदि ने सम्प्रेषण के क्षेत्र में नये आयामों को जन्म दिया है किन्तु इस विस्तार का एक दुःखद पक्ष यह है कि इसने उपभोक्तावाद, हिंसा व यौनाचार आदि को बढावा दिया है । एक सामान्य धारणा है कि इनसे महिलाओं पर वसा ब उत्पीड़न की घटनाओं में वृद्धि हुई है ।

राजस्थान में भी संयुक्त परिवारों का विघटन एवं एकाकी परिवारों की तरफ रूझान बढ़ गया है । उत्प्रवास के कारण ब कार्यक्षेत्र में परिवर्तन के कारण एकाकी परिकर टूटने लगे हैं । एकाकी परिवारों में भी सभी के कार्य के घंटे विभाजित होने लगे हैं बल्कि श्रम विभाजन भी होने लगा है । माता-पिता अपने बच्चों की शिक्षा के प्रति जागरूक हो गये हैं । उन्हें इस बात का एहसास होने लगा है कि अगर वे बच्चों को शिक्षित करेंगे तो उन्हें बेहतर कार्य अवसर मिलेंगे जो उन्हें बेहतर नागरिक बनने में मदद करेंगे ।

महिलाएं दिन प्रतिदिन के जीवन यापन के लिये नौकरी करने लगी हैं । घर के पास कार्य कम होने पर गाँव छोड़कर शहरों में भी जाने लगी हैं । हालांकि कार्य करने की शर्त उनके पक्ष में नहीं हैं कार्य के प्रकार भी उन्हें अधिक श्रम करने पर मजबूर कर रहे हैं । लेकिन वे अपने परिबार की आय बढ़ाने में सहायक हो रही हैं । दोहरी भूमिका के कारण दे मानसिक ब शारीरिक दबाव महसूस कर रही हैं । जनसंचार के साधनों के प्रभाव से दे अपना बजट घर ब भोजन सुरक्षा पर खर्च करने के स्थान पर ऐशो आराम के साधनों पर कर रही हैं ।

प्रौद्योगिकी ने नगरीकरण व औद्योगीकरण को प्रोत्साहित किया है जिसके अनेक परिणाम दिखाई देते है, जैसे- नगरों में अनेक घनी बस्तियाँ बस गई हैं, श्रम विभाजन एवं विशेषीकरण बढ़ा है । श्रमिकों की समस्याओं ने संघर्ष को जन्म दिया है, धर्म के प्रभाव में व नैतिकता में कमी आई है । दुर्घटना बीमारी आदि बढ़े है । आज जीवन इतना यन्त्रवत् हो गया है कि व्यक्ति के पास अपने व अपने परिवार के लिए भी समय नहीं रहा है ।

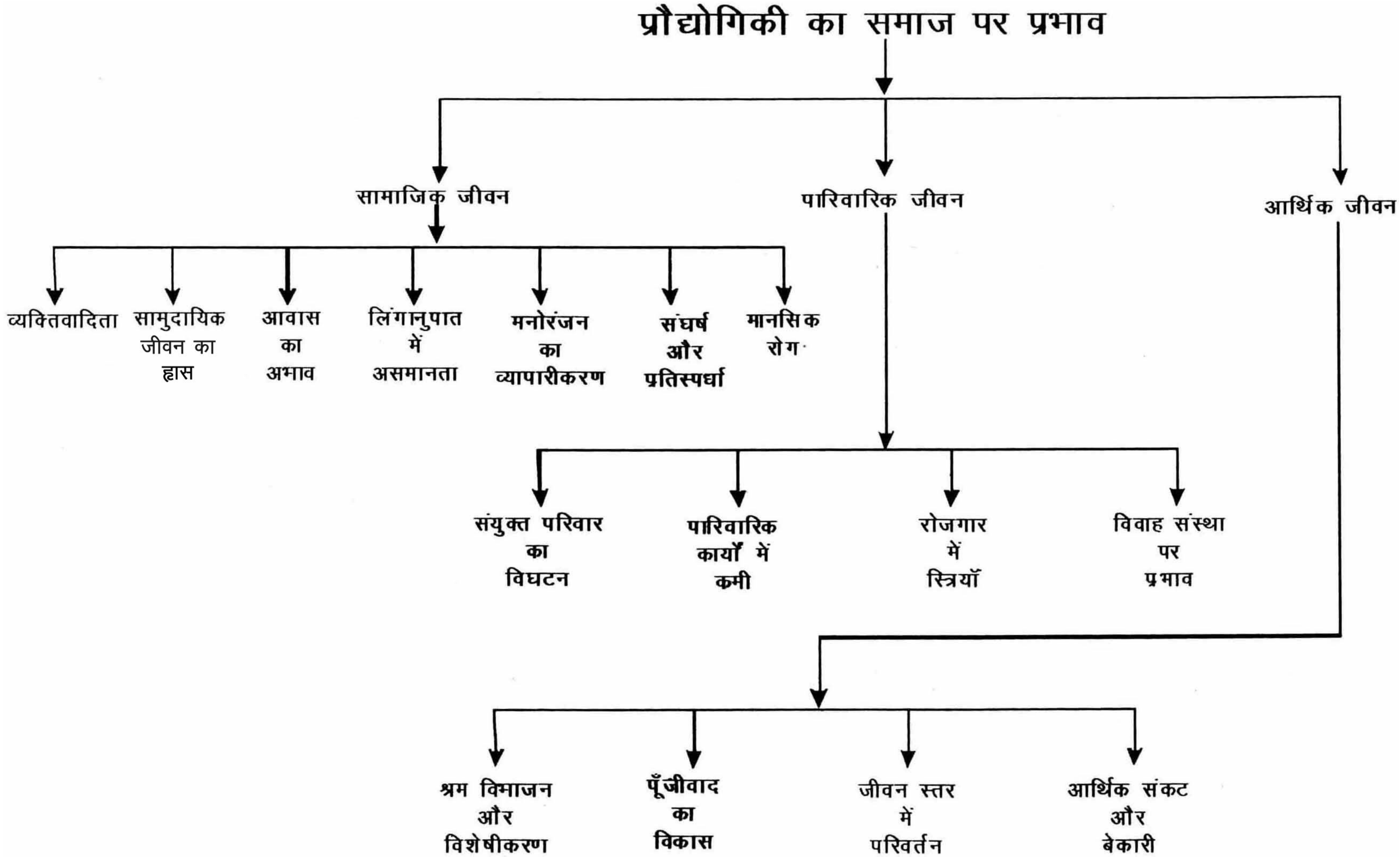
प्रौद्योगिकी का समाज पर प्रभाव
सामाजिक जीवन
पारिवारिक जीवन
आर्थिक जीवन
व्यक्तिवादिता
सामुदायिक जीवन का ह्रास
आवास का अभाव
लिंगानुपात में असमानता
मनोरंजन का व्यापारीकरण
संघर्ष और प्रतिस्पर्धा
मानसिक रोग
संयुक्त परिवार का विघटन
पारिवारिक कार्यों में कमी
रोजगार में स्त्रियाँ
विवाह संस्था पर प्रभाव
श्रम विभाजन और विशेषीकरण
पूँजीवाद का विकास
जीवन स्तर में परिवर्तन
आर्थिक संकट और बेकारी

5. सांस्कृतिक कारक (Cultural factors)

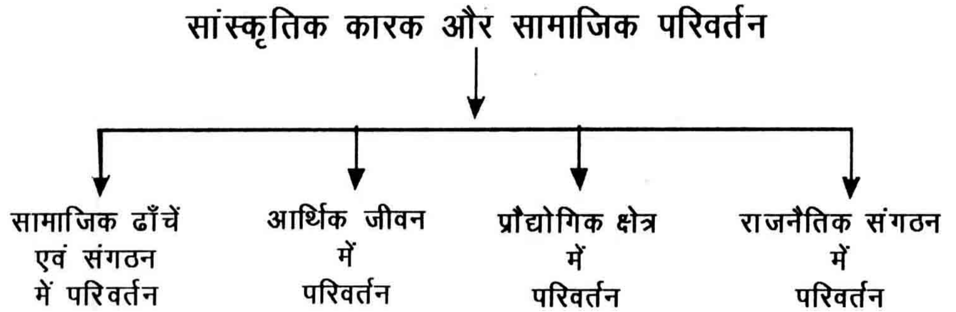

संस्कृति जिसमें हम धर्म, प्रथाएँ, विचार नैतिकता रूढ़ियाँ, मूल्यों तथा विभिन्न संस्थाओं को सम्मिलित करते हैं, सामाजिक परिवर्तन का प्रमुख कारण है । जब कभी संस्कृति में परिवर्तन आता है सांस्कृतिक तल बदल जाते हैं परिणामस्वरूप व्यक्तियों की आदतों और व्यवहारों में परिवर्तन आ जाता है । इस परिवर्तन से सामाजिक सम्बन्धों, प्रस्थितियों, भूमिकाओं तथा सम्पूर्ण सामाजिक संरचना में परिवर्तन आ जाता है । राजस्थान में भी यह स्पष्ट - दिखाई देता है । यहां धार्मिक आस्था कम नहीं हुई है लेकिन धार्मिक क्रियाओं पर समय कम दिया जाने लगा है । लोगों का कार्य दबाव के कारण मन्दिरों की तरफ रूझान कम हुआ है । उदाहरणार्थ - राजस्थान में होने बाली गणगौर पूजा, जो लड़कियों में विशेष तौर पर प्रचलित है, यह मार्च-अप्रैल में 16 दिन की जाती है पर अब लड़कियों के स्कूल जाने व काम पर जाने की वजह से इसका रूझान कम हुआ है ।

राजस्थान में पर्दा प्रथा समाप्ति की ओर जा रहा है । प्रारम्भिक अवस्था में स्त्रियों को घर के बाहर कार्य करने की मनाही थी लेकिन अब उन्हें बाहर जाकर कार्य करने की छूट के कारण घर के बाहर घूँघट प्रथा समाप्त हुई है । अब उनके सार्वजनिक क्षेत्र ब निजी क्षेत्रों में अन्तर किया जाने लगा है । महिलाएं ऐसा मानती हैं कि पर्दा उनके कार्यक्षेत्र में असुविधाजनक है । राजस्थान के प्रचलित पारम्परिक लोक गीतों व लोक नृत्यों के स्थान पर बने टेलीविजन से प्रभावित होकर 'जी गाने' व " जी नाच' को पसन्द करने लगे हैं । यह सार्वभौमिक प्रघटना है जिस पर किसी का नियंत्रण नहीं है।

राजस्थान में गेहूँ को अमीरों का भोजन माना जाता था तथा यह आम भोजन में शामिल नहीं था । प्रारम्भिक अवस्था में समाज के कतिपय लोग ही गेहूँ खरीद सकते थे, लेकिन खरीदने की क्षमता में वृद्धि के साथ-साथ सभी स्थानों पर गेहूँ का प्रयोग होने लगा है । एक और कारक जो भोजन की आदत में परिवर्तन का है वो 'सार्वजनिक वितरण व्यवस्था (PDS) है । विशेष तौर पर मरूस्थलीय ग्रामीण क्षेत्र में लोग सार्वजनिक वितरण व्यवस्था' पर निर्भर रहते हैं । गेहूँ व चावल मुख्य रूप से वितरण व्यवस्था का भाग बन गये हैं । सभी सरकारी योजनाओं विशेषकर "मिड-डे-मील" योजना में भी गेहूँ के प्रयोग से भोजन के प्रतिमानों में परिवर्तन हुआ है।

6. आर्थिक कारक (Economic factors) -

कार्ल मार्क्स ने सामाजिक परिवर्तन के लिए आर्थिक कारक को महत्वपूर्ण माना है । इनका मानना है कि प्रत्येक समाज में दो वर्ग पाये जाते हैं । वर्ग संघर्ष एक समाज अवस्था को समाप्त करता है और उसके स्थान पर दूसरी अवस्था जन्म ले लेती है । मानव के आर्थिक जीवन के विकास की अवस्थाओं का अध्ययन किया जा सकता है । सर्वप्रथम जब मानव शिकारी अवस्था में था तो उसका सामाजिक जीवन नहीं के बराबर था उसका उद्देश्य केवल अपना पेट पालना ही था इसीलिए वह दिन

पर शिकार की तलाश में इधर-उधर घूमता फिरता था । इस अवस्था के बाद चारावाही अवस्था, फिर कृषि अवस्था और आज मानव ने औद्योगिक अवस्था में प्रदेश किया है ।

खुली अर्थव्यवस्था आने से राजस्थान में दो प्रकार का हस्तशिल्प विकसित हुआ है जिसने राजस्थान की आर्थिक स्थिति में बदलाव किया है । एक वो जो विदेशी मुद्रा अर्जित करने में मदद कर रहा है और दूसरा जो स्थानीय लोगों के प्रयोग में आ रहा है । बुनाई, बाँधनी, ब्लॉक प्रिन्टिंग, कशीदाकारी, चमड़े की वस्तुऐं, जू पॉटरी, 'जेवरात व कीमती पत्थरों की गड़ाई, ये मुख्य रूप से घरेलू उद्योग है जो खुली अर्थव्यवस्था का परिणाम है । बीसवीं शताब्दी के बिकास ने महिलाओं की निम्न भूमिका को बदलकर केन्द्रीय मुख्य भूमिका में खड़ा कर दिया है बे घर गृहस्थी संचालन में महत्वपूर्ण हो गई हैं। घर की सुरक्षा में मुख्य भूमिका निभा रही है । रोजगार का मुख्य स्त्रोत असंगठित क्षेत्र बन गया है । एस.एल. राय (1994) के आकलन के अनुसार 1992-93 तक उपभोग व्यय का बाजार साईकिल, रेडियो, टेबल पंखा, सिलाई मशीन, टेलीविजन, प्रेशर कुकर, मिक्सर ग्राइन्डर तक सीमित था जो बढ़कर नेल पॉलिश, लिपस्टिक, फेस क्रीम, शैम्पू दूथपेस्ट व अन्य तक हो गया है । पिछले पाँच वर्षो में घर के सामान के स्थान पर आराम के सामान पर खर्च बढ़ा है ।

राजस्थान सरकार ने पर्यटन को उद्योग घोषित किया है । आज आधुनिक विश्व के मानचित्र में राजस्थान पर्यटन हेतु अपना एक विशिष्ट स्थान रखते हुए विश्व के पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित कर रहा है । भारत में आने बाले विदेशी पर्यटकों की संख्या में से एक तिहाई संख्या पर्यटकों की राजस्थान में आती है । पर्यटन उद्योग से राज्य में विदेशी मुद्रा की उपलब्धता, पर्यटकों की संख्या में वृद्धि, रोजगार के अवसरों में वृद्धि, निर्यात में वृद्धि, हस्तशिल्प का विकास, परिवहन सुविधाओं में वृद्धि हुई है ।

विवाह, आवास, स्वास्थ्य, जनसंख्या, विवाह-विच्छेद, बेकारी, गरीबी, आत्महत्या, मद्यपान आदि समाज की आर्थिक स्थिति से ही सम्बन्धित हैं । आर्थिक परिस्थितियों के कारण राजनैतिक उथल-पुथल, आतंक, क्रान्ति आदि का जन्म होता है । इसके अतिरिक्त सम्पत्ति का वितरण, लोगों का जीवन-स्तर, वर्ग संघर्ष, उत्पादन, व्यापार आदि भी आर्थिक कारण से उत्पन्न होते हैं जो सामाजिक संरचना को प्रभावित करते हैं । कहने का आशय यह है कि समाज की आर्थिक संरचना में परिवर्तन का अर्थ सम्पूर्ण समाज व्यवस्था में परिवर्तन होना है ।

7. राजनैतिक कारक (Political Factor)

जब जब सत्ता अथवा सरकार बदलती है तो वह अपने अनुसार समाज में अनेक परिवर्तन करती है । प्रत्येक राजनैतिक दल की अपनी अपनी राजनैतिक नीतियाँ होती है । भारत में जब अंग्रेज सत्ता छोड़कर गये तो भारतीय सरकार ने समाज में अनेक सुधार किये । छुआछूत की समाप्ति, दास प्रथा की सामाजिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण, राजाओं के अधिकारों की समाप्ति, जागीरदारी प्रथा उन्मूलन आदि कारकों ने सामाजिक जीवन को अनेक रूपों में प्रभावित किया । राजनीतिक घटनाक्रमों अथवा प्रकरणों का प्रभाव सामाजिक परिवर्तन को किस प्रकार जन्म देता है, इस तथ्य को भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास के कुछ उदाहरणों से ज्ञात किया जा सकता है । तिलक और गोखले ने स्वतंत्रता आंदोलन को गति दी । तिलक ने स्वतंत्रता आंदोलन को अधिक व्यापक बनाया । महात्मा गाँधी ने अफ्रीका के अपने अनुभव से भारत में सत्याग्रह प्रारंभ किया । स्वतंत्रता की लड़ाई के समय भारत में अनेक परिवर्तन आये । ये परिवर्तन हरिजनों, मजदूरों, महिलाओं की स्थिति और शिक्षा के विस्तार, नगरीकरण और संप्रेषण के साधनों से सम्बन्धित थे । स्वतंत्रता ने भारत को विभाजित भी किया जिससे

न केवल समाज अपितु भूगोल भी बदला कई मनोवैज्ञानिक कठिनाइयाँ भी पैदा हुई परन्तु आजादी के साथ-साथ युवा पीढ़ी के लिए सामाजिक मूल्यों की प्रतिस्थापना की प्रक्रिया भी प्रारम्भ हो गयी ।

1957 में बलवन्त राय मेहता कमेटी ने पंचायती राज की योजना प्रस्तुत की । राजस्थान भारतीय संघ में ऐसा राज्य है जो पंचायतों की स्थापना करने में सक्रिय एवं प्रथम रहा है । देश में सर्वप्रथम पंचायती राज की स्थापना 2 अक्टूबर, 1959 को गाँधी जयन्ती के अवसर पर देश के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने राजस्थान के जिले "नागौर" में की। 73वे संविधान संशोधन के परिणामस्वरूप राजस्थान राज्य सरदार के पंचायती राज अधिनियम, 1994 के जारी करने से ग्राम स्तर पर ग्राम सभा और ग्राम पंचायत की संरचना और कार्यो में व्यापक परिवर्तन आ गये हैं।

राज्य की विधानसभा से लेकर पंचायतों व नगरपालिकाओं तक के राजनीतिक क्षितिज में महिलाओं की कम भागीदारी की दर से समाज में उनकी वास्तविक स्थिति प्रतिबिम्बित होती है । पंचायती राज संस्थाओं व शहरी निकायों में महिलाओं के लिये 33 प्रतिशत आरक्षण ने महिलाओं को विकास में निर्णायक भूमिका अदा करने का एक महत्वपूर्ण अवसर प्रदान किया है ।

8. वैधानिक कारक (Legal Factors):-

सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में कानूनों का ऐतिहासिक विकास समाज के विकास का द्योतक है । भारतीय समाज जो जाति, परम्पराओं तथा प्रथाओं द्वारा नियंत्रित था, अब औपचारिक कानूनों द्वारा नियंत्रित होता है, अत: व्यक्ति के दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ है तथा जनमत का महत्व भी बढ़ा है । कानून बनने के साथ नयी मान्यताओं व सामाजिक मूल्यों को स्थापित करता है । साथ ही इसके विपरीत कार्य करने बाले के लिए कानून दंड की व्यवस्था भी करता है, परन्तु प्रत्येक निर्मित कानून एक सामाजिक शक्ति नहीं बन जाता, इसके लिए आवश्यक है कि व्यक्ति उसे ग्रहण कर ले, मानसिक रूप से स्वीकार कर लें ।

राजस्थान राज्य महिला आयोग की स्थापना मई 1999 में की गई एवं महिलाओं के लिये सरकारी सेवाओं में 30 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान किया गया । इन्हीं प्रयासों का परिणाम है कि आज राजस्थान की महिलाएं लगभग सभी क्षेत्रों में आगे बढ़ रही हैं । बाल विवाह (प्रतिबंध) अधिनियम, 1978 को लागू करने के बाद राजस्थान में बाल विवाहो में कमी देखी गयी है ।

4 सितंबर 1987 में जब राजस्थान के दिवराला में रूपकंवर सती हुई उस घटना के बाद भारत सरकार ने सती प्रथा विरोधी एक्ट 1987 बनाया, जिसके अन्तर्गत सती प्रथा में सहयोग देने बालों को मृत्यु दण्ड या आजीवन कारावास तथा सती को महिमा मण्डित करने बालों को एक वर्ष की जेल का प्रावधान रखा गया । इस अधिनियम के उपरान्त राजस्थान में महिला उत्पीड़न के विरूद्ध एक सामूहिक सोच का विकास हुआ है ।

9. वैश्वीकरण (Globalisation)

आज सभी विकसित तथा विकासशील देश वैश्वीकरण के लिए प्रयासरत हैं । वैश्वीकरण का आशय किसी देश की अर्थव्यवस्था को शेष विश्व के साथ इस प्रकार से जोड़े जाने से हैं जिससे उत्पादन के साधन यथा पूँजी, श्रम, उत्पादन की तकनीक, कच्चा माल, उत्पादित वस्तुओं आदि का आवागमन भौगोलिक एवं राजनीतिक सीमाओं पर बिना किसी बाधा के स्वतन्त्र रूप से हो ।

भारत सरकार ने 1991 में अपनी आर्थिक नीति में व्यापक परिवर्तन कर देश में निजीकरण/ उदारीकरण/ वैश्वीकरण की नीति को अपनाकर विभिन्न क्षेत्रों में व्यापक स्तर पर आर्थिक सुधार किये । भारत में वैश्वीकरण से कई परिवर्तन हुए हैं:

पूँजी निर्माण से ग्रसित विकासशील एवं पिछडे देशों में विदेशी निवेश टूटने से पूँजी निर्माण की दर बढ़ गयी है । इससे राष्ट्रीय आय एवं रोजगार में वृद्धि हुई है । आर्थिक विकास की प्रक्रिया में तेजी आयी है । प्रौद्योगिक प्रगति में पिछडे विकासशील देश भारत ने वैश्वीकरण के माध्यम से विश्व की आधुनिक तकनीक प्राप्त करके अपनी उत्पादन क्षमताओं का विकास किया है । देश के नागरिक दुनिया के किसी भी भाग में उपलब्ध श्रेष्ठ चिकित्सा सेवा प्राप्त करने में सफल हो रहे हैं । भारत जैसे विकासशील देश में जहाँ उच्च शिक्षित-प्रशिक्षित मानव संसाधन अधिकता में हैं अपनी बैशी मानव संसाधन हेतु विकसित एवं विकासशील देशों में रोजगार की बेहतर संभावनाएँ तलाश सकते है । उदाहरण के लिए भारत के इंजीनियर, डॉक्टर, प्रोफेसर, प्रबंधक संयुक्त राष्ट्र अमेरिका तथा ब्रिटेन जैसे विकसित देशों की अर्थव्यवस्थाओं के आधार हैं । आधार भूत संरचना यथा सड़क एवं राजमार्ग, रेलों, बन्दरगाहों, हवाई अड्डों, विद्युत गृह, तेलशोधन गृहों आदि का विकास किया जा रहा है । वैश्वीकरण की दौड़ में व्यावसायिक उपक्रम एक दूसरे से आगे निकलने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते हैं, फलत: प्रतिस्पर्धी क्षमता का विकास संभव हुआ है ।

राजस्थान में वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप जवाहरात, आभूषण, हस्तकला, वस्त्रों के निर्यात में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। इरिक्सन फोर्ड, रॉयल इनफिल्ड महिन्द्रा, बोस एण्ड लॉम्ब जैसी कई बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने राज्य में उद्योग लगाये हैं।

10. जन संचार के साधन (Media) :-

जन संचार लोगों को नवीन एवं अपरिचित परिस्थितियों से अवगत कराता है तथा नवीनतम आविष्कारों और खोजों को जन-जन तक पहुँचाने का कार्य करता है । विगत वर्षो में जन-संचार के अनेक उपकरणों के आविष्कार हुए हैं जिसके परिणामस्वरूप कम्पयूटर, टेलीविजन, मोबाईल, फैक्स, इन्टरनेट आदि जन-जन के सम्पर्क के माध्यम बनते जा रहे हैं । 1962 के संयुक्त राष्ट्र सर्वेक्षण के अनुसार 70 प्रतिशत जनसंख्या के पास पर्याप्त सूचनाएं एवं जानकारी नहीं है । वे लोग सूचना सम्बन्धी अधिकारों से वंचित होने के कारण अनेक महत्वपूर्ण सूचनाओं से वंचित रहे हैं । इसी कारण संयुक्त राज्य ने अपनी सदस्य सरकारों से निवेदन किया कि वे अपनी आर्थिक योजनाओं में जन-संचार के विकास के लिये प्रावधान रखें। आज यह अनुभव किया जाने लगा है कि निःशुल्क सूचनायें पर्याप्त लक्ष्य ही नहीं हैं बल्कि सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन के साधन भी हैं । राष्ट्रीय प्रगति ज्ञान के विकास पर निर्भर करती है । इसलिये आजकल शिक्षा और जनसंचार को निवेश के रूप में देखा जा रहा है । जनसंचार का कार्य समाज के बड़े जन समुदाय को नवीन सूचनाओं, नवीन विचारों, नवीन अभिव्यक्ति और नवीन आकांक्षाओं से अवगत कराना है जो उन्हें नवीन उपलब्धियों की ओर ले जाते है । युवा अपने गाँव में बैठे हुए जनसंचार के द्वारा जीवन के तरीकों, दूसरे सांस्कृतिक प्रतिमानों का ज्ञान प्राप्त कर लेता हैं और गहन अनुभव के सहारे जीवन यापन करता है । भारत में सामाजिक परिवर्तन में जनसंचार माध्यमों का विशेष महल है, क्योंकि भारत की अधिकांश जनसंख्या निरक्षर और ग्रामीण है, इसलिये सबसे सशक्त जन-संचार का माध्यम दूरदर्शन, चलचित्र और आकाशवाणी है ।

जनसंचार के माध्यमों से प्रसारित होने वाले विज्ञापनों ने बच्चों की जीवन शैली में परिवर्तन किया है । बच्चों द्वारा माता-पिता पर दबाव के कारण राजस्थान में खान-पान में परिवर्तन आया है। बाजरा, मक्का, दही, छाछ के स्थान पर टॉफी, बिस्कुट, आलू की चिप्स, मैगी नूडल्स आदि ने ले लिया है ।

11. शिक्षा (Education)

शिक्षा ने भी सामाजिक परिवर्तनों को अनेक प्रकार से प्रभावित किया है । स्वतंत्रता प्राप्ति के अनन्तर भारत में भावी सामाजिक संरचना का स्वरूप तय किया गया । उसमें शिक्षा व्यवस्था को एक साधन के रूप में स्वीकार किया और उसके माध्यम से सुनियोजित ढंग से सामाजिक परिवर्तन लाये गये । शिक्षा के द्वारा जाति व्यवस्था में परिवर्तन हुए शैक्षिक दृष्टि से पिछडे गये के लिये अनेक योजनाएं बनी, इस कारण आज श्रम विभाजन ब कार्य विभाजन पर आधारित जाति अवस्था समाप्त हो रही है, कोई भी व्यवसाय किसी के लिये सीमित नहीं है । जाति के प्रतिबंधों में परिवर्तन आया है । लोग सामाजिक संस्कारों विवाहो में अन्य जातियों को आमंत्रित करते हैं व स्वयं सम्मिलित होते हैं । अन्तर्जातीय विवाह स्वीकार होने लग गये हैं । आज अस्पृश्यता कानूनी अपराध है, जिसका परिणाम दण्ड हो सकता है । आज स्त्री पुरूष के समान अधिकार प्राप्त कर रही है । सम्पत्ति में उसका अधिकार है, बह पुरुष के समान अर्थोपार्जन कर रही है । स्त्रियाँ आज उच्च शिक्षा प्राप्त कर विभिन्न व्यवसायों में कार्यरत हैं और सम्मानजनक स्थान बनाये हुए हैं । स्वामी-दास सम्बन्धो की समाप्ति हुई है । बंधुआ मजदूर- प्रथा, दास-प्रथा, बैगार-प्रथा जैसी कुप्रथाएँ आज कानूनी अपराध के अन्तर्गत आती हैं ।

शिक्षा ने अनेक सामाजिक परिवर्तनों को जन्म दिया है जिसके प्रभाव समाज की दृष्टि से संगठनकारी अथवा उसे प्रगतिशील बनाने की दिशा में हैं किन्तु कहीं-कहीं इसके विपरीत प्रभाव भी देखे जा सकते हैं जैसे- संयुक्त परिवार का विघटन, विवाह की मान्यताओं में परिवर्तन, व्यक्तियों के पारस्परिक संबंधो में परिवर्तन, चिन्तन, समझ और विश्वास के मानदण्डों में परिवर्तन, सामाजिक संस्थाओं के लक्ष्य, प्रकार्य और प्रभावशीलता में परिवर्तन, व्यक्तियों की आदतों, नैतिकता और चरित्र में परिवर्तन एवं व्यक्तियों की आकांक्षाओं आदि में अनेक परिवर्तन शिक्षा के प्रभाव के फलस्वरूप आये हैं जिन्होंने समाज को अनेक रूपों में परिवर्तित किया है ।

राजस्थान में 3000 व ऊपर की जनसंख्या वाले सभी गाँवों में प्राथमिक स्कूल खोल दिये गये हैं । सभी पंचायत समितियों में एक या अधिक माध्यमिक / उच्चतर माध्यमिक स्कूल खोले गये हैं। राज्य के सभी जिलों में महा विद्यालय स्तरीय शिक्षा की व्यवस्था की गई है। राज्य में तेरह विश्व विद्यालय और कई इंजीनियरिंग कॉलेज शिक्षा में संलग्न हैं । शिक्षा के द्वारा योग्य एवं विशेषीकृत नागरिक तैयार किये जा रहे हैं। राजस्थान में शिक्षा के प्रसार और विस्तार से परिवर्तन की विशिष्ट प्रगति देखी जा सकती है । राजस्थान में 90 के दशक में परम्परागत पाठ्यक्रमों के स्थान पर व्यावसायिक शिक्षा एवं विशेषज्ञी शिक्षा के क्षेत्र (अभियांत्रिकी, चिकित्सा एवं कम्पयूटर) में विशेष रूझान परिलक्षित होता है ।

राजस्थान निर्माण के समय राज्य में साक्षरता का औसत लगभग 9 प्रतिशत था जो कि वर्ष 1981 में बढ़कर 24.38 प्रतिशत, 1991 में 38.81 तथा 2001 में शिक्षा का प्रतिशत 61.03 हो गया है । सम्पूर्ण साक्षरता कार्यक्रम शिक्षाकर्मी, लोक जुंम्बिश, गुरुमित्र, आदि नवाचारों, शिक्षण संस्थाओं की संख्या में वृद्धि, विनियोग में वृद्धि एवं अन्य गुणात्मक सुधारों के कारण पिछले दशक में राज्य की साक्षरता दर में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है ।

9.7 सामाजिक परिवर्तन के प्रतिमान (Major Features of Social Change)

मैकाइबर एवं पेज सोसाइटी पृ. सं. 10-12, ने सामाजिक परिवर्तन के तीन प्रतिमानों का उल्लेख किया है।

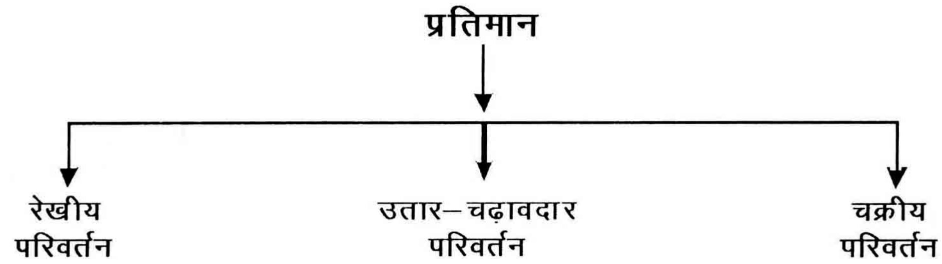

1. रेखीय परिवर्तन (Linear Change) -

सामाजिक परिवर्तन का प्रथम प्रतिमान बह है जोकि एक सिलसिले से क्रम बिकास की ओर एक ही दिशा में निरन्तर बढ़ता जाता है, चाहे ऐसे परिवर्तन का प्रारम्भ एकाएक ही क्यों न हो। एक नवीन आविष्कार समाज में न केवल एकाएक परिवर्तन लाता है अपितु अनेक आगामी परिवर्तन की प्रक्रिया भी उत्पन्न करता है। इस प्रकार समाज में जो परिवर्तन होते है और उन्हें जब हम एक सीधी एवं सरल रेखा से प्रदर्शित करते हैं तो वे रेखीय परिवर्तन कहलाते हैं । इस प्रकार के परिवर्तन विकास की तरफ होते है। साधारणतया उसका कारण उपयोगितावादी होता है । यह परिवर्तन एक सीधी सरल रेखा में होता है। रेखीय परिवर्तन प्रतिमान को निम्नांकित रेखाचित्र से प्रदर्शित किया जा सकता है ।

2. उतार चढावदार परिवर्तन (Boom and Depression Change) -

आर्थिक जगत तथा जनसंख्या के क्षेत्र में निरन्तर हो रहे परिवर्तन को हम इसके अन्तर्गत रख सकते हैं। कोई समाज किसी समय में आर्थिक दृष्टिकोण से समृद्ध होता है, जबकि किसी समय में उसकी स्थिति आर्थिक रूप से बिगड़ जाती है। जनसंख्या के क्षेत्र में भी इसी प्रकार के परिवर्तन दृष्टिगत होते हैं । कभी जन्म-दर के बढ़ जाने के कारण जनसंख्या का घनत्व बढ़ जाता है जबकि कभी जन्म-दर के कम हो जाने के कारण तथा मृत्यु दर के बढ़ जाने के कारण जनसंख्या का घनत्व कम हो जाता है । राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में भी इसी प्रकार के प्रतिमान दिखाई देते हैं। इस प्रकार के परिवर्तन को हम निम्नलिखित रेखाचित्र द्वारा दिखा सकते हैं -

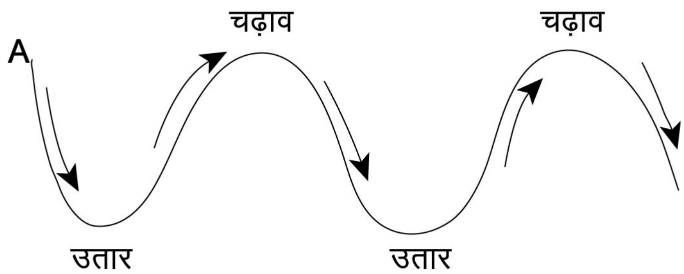

मैकाइवर ने इस प्रकार के प्रतिमानों की व्याख्या करते हुए लिखा है कि 'नगर विकसित होते हैं, उनका ह्रास होता है, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार उन्नत होता है और अवनत हो जाता है, व्यापारिक क्रिया कलाप उन्नत, विकसित एवं अवनत हो जाते हैं।" इस प्रकार के परिवर्तनों में निश्चितता नहीं होती ।

3. चक्रीय परिवर्तन (Cyclic Change)

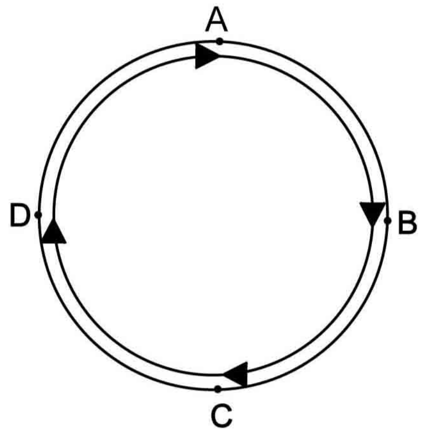

बहुत से परिवर्तन एक चक्र के रूप में चलते हैं । प्राकृतिक वस्तुओं में यह परिवर्तन स्पष्ट रूप से देखा जाता है । सुबह, दोपहर, शाम, रात्रि यह क्रम सदैव ही चलता है । मौसम में भी यह क्रम है । मानव जीवन में भी शिशु तरूण प्रौढ़ अवस्थाओं का वृत्ताकार क्रम चलता रहता है । सभ्यता के उत्थान और पतन में भी हमें ऐसे लक्षण मिलते हैं । फैशन के क्षेत्र में भी परिवर्तन चक्रीय होता है । आज जो फैशन का रूप है, वह एक काल बाद फिर आयेगा । परिवर्तन घड़ी की सुई की दिशा में निरन्तर होता रहता है और कुछ समय के बाद अपनी पूर्वावस्था को प्राप्त करता है । स्पेंगलर ने अपनी पुस्तक पश्चिम के पतन (Decline West) में सभ्यता के परिवर्तन को इसी प्रतिमान के अन्तर्गत रखा है ।

9.8 सारांश

उक्त परिवर्तनों से स्पष्ट है कि राजस्थान में सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं वैधानिक स्तर पर सामाजिक परिवर्तन यद्यपि शनैः-शनैः प्रारम्भ हुए लेकिन इनकी प्रगति ने 90 के दशक में रफ्तार पकड़ी है । 11वी सदी की चौखट पार कर चुका राजस्थान सामाजिक परिवर्तनों के विविध अभीष्टों को आत्मसात् कर रहा है और विकसित राज्यों की श्रेणी में आने के लिए अनवरत प्रयासरत है ।

9.9 बोध प्रश्न

(अ) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 150 शब्दों में दीजिए:-

1. सामाजिक परिवर्तन को परिभाषित कीजिये ।
2. सामाजिक परिवर्तन की विशेषतायें बताइये ।
3. राजस्थान में हुए सामाजिक परिवर्तन का उल्लेख कीजिये ।

(ब) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 500 शब्दों में दीजिए -

1. सामाजिक परिवर्तन के विभिन्न कारक स्पष्ट कीजिये ।
2. सामाजिक परिवर्तन के विभिन्न प्रतिमानों पर प्रकाश डालिये ।
3. राजस्थान में सामाजिक परिवर्तन की समीक्षा कीजिये ।

9.10 सन्दर्भ ग्रंथ

1. मैकाइवर एण्ड पेज सोसाइटी

2. स्कोमर, इरडूमैन, लोडीरक, रूडोल्फ द आइडिया ऑफ राजस्थान
3. रामनाथ शर्मा, राजेन्द्र शर्मा सामाजिक परिवर्तन और सामाजिक नियंत्रण
4. योगेन्द्र सिंह सोशियल स्ट्रीटीफकेशन एण्ड सोशियल चेन्ज इन इण्डिया
5. बिलियम एफ ऑगबर्न सोशियल चेंज

इकाई 10

सामाजिक परिवर्तन: प्रकृति, दिशा एवं नीति

इकाई की रूपरेखा

10.1 उद्देश्य

10.2 प्रस्तावना

10.3 सामाजिक परिवर्तन की प्रकृति

10.4 सामाजिक परिवर्तन की दिशा

10.4.1 संरचनात्मक प्रक्रियाएं

नगरीकरण

औद्योगीकरण

आधुनिकीकरण

10.4.2 सांस्कृतिक प्रक्रियाएं

संस्कृतिकरण

पश्चिमीकरण

लौकिकीकरण/धर्मनिरपेक्षीकरण

- सार्वभौमिकीकरण और स्थानीयकरण

10.4 सामाजिक परिवर्तन- नीतियाँ (राजस्थान के संदर्भ मे)

10.4.1 पंचवर्षीय योजनाएं

10.4.2 ग्रामीण विकास के कार्यक्रम

10.4.3 जनजातियों के विकास हेतु कार्यक्रम

10.4.4 एकीकृत बाल विकास योजना

10.4.5 महिला बिकास कार्यक्रम

10.4.6 राज्य में पर्यटन विकास के नये कार्यक्रम

10.4.7 स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना

10.4.8 सूखा एवं अकाल से निपटने हेतु कार्यक्रम

10.4.9 शिक्षा के बिकास हेतु कार्यक्रम

10.5 सारांश

10.6 सन्दर्भ ग्रंथ

10.7 उपयोगी पुस्तकें

10.1 उद्देश्य

सामाजिक परिवर्तन यद्‌यपि एक सार्वभौमिक एवं सर्वव्यापी नियम है, लेकिन फिर भी स्थिर और गतिशील समाजों में इसकी प्रकृति भिन्न-भिन्न दिखाई देती है । सामाजिक परिवर्तन की दिशा हमें बताती है कि परिवर्तन किस तरफ हो रहा है । आज कोई भी देश यह नहीं चाहता है कि समाज

में मनमाने या अनियोजित तरीके से परिवर्तन आये । प्रत्येक समाज अपने को आज उन्नत करना चाहता है, विकास की ओर आगे बढ़ना चाहता है । इस अध्याय को पढ़कर -

- समाज में सामाजिक परिवर्तन की प्रवृति एवं उसके विस्तार को समझा जा सकता है ।
- परिवर्तन किस दिशा में हो रहा है' इसको जानने के क्रम में विभिन्न प्रक्रियाओं का अध्ययन किया जा सकता है ।

  सामाजिक परिवर्तन की विभिन्न प्रक्रियाओं जैसे नगरीकरण औद्योगीकरण संस्कृतिकरण पश्चिमीकरण आधुनिकीकरण का अध्ययन किया जा सकता है ।

  विभिन्न नीतियों द्वारा इच्छित दिशा में सामाजिक परिवर्तन लाने एवं जन-जीवन को समृद्धिशाली बनाने के प्रयासों का अध्ययन किया जायेगा ।

10.2 प्रस्तावना

परिवर्तन की प्रक्रिया एक अनवरत प्रक्रिया है । समाज का स्वरूप चाहे सभ्य हो या असभ्य, शहरी हो ग्रामीण हो अविकसित या विकासशील, उसमें परिवर्तन की प्रक्रिया अवश्य होती है । सामाजिक परिवर्तन के अध्ययन के बारे में किंग्सले डेविस ने अनेक प्रश्नों का उल्लेख किया है । सामाजिक परिवर्तन की क्या दिशा है? सामाजिक परिवर्तन की दर क्या है , क्या सामाजिक परिवर्तन इच्छित दिशा में नियंत्रित किया जा सकता है? समाज से सम्बन्धित सभी शास्त्रीय सिद्धान्तों में सामाजिक परिवर्तन के बारे में इन प्रश्नों पर प्रकाश डाला गया है । सामाजिक परिवर्तन के स्रोत और कारण क्या है? क्या सामाजिक परिवर्तन की प्रकृति बहुत अधिक निर्धारणवादी है?

इस इकाई में हम सामाजिक परिवर्तन की प्रकृति, सामाजिक परिवर्तन की विभिन्न प्रक्रियायें जो परिवर्तन की दिशा निर्धारित करती हैं तथा सरकार द्वारा बनाई गई नीतियाँ व कार्यक्रम जिनके द्वारा राजस्थान में नियोजित व नियंत्रित तरीके से परिवर्तन कर सामाजिक लक्ष्य को प्राप्त करने के प्रयास किये गये हैं उनका अध्ययन करेंगे ।

10.3 सामाजिक परिवर्तन की प्रकृति (Nature of Social Change)

सामाजिक परिवर्तन यद्यपि एक सर्वव्यापी एवं सार्वभौमिक नियम है, लेकिन फिर भी स्थिर और गतिशील समाजों में इसकी प्रकृति एवं विशेषताएं भिन्न-भिन्न दिखायी देती हैं । स्थिर समाजों में अनेक पीढ़ियों तक व्यक्तियों की स्थिति और भूमिका में कोई परिवर्तन नहीं होता, जबकि गतिशील समाजों में व्यक्तियों के पदों' मनोवृत्तियों व्यवसाय, शिक्षा, सांस्कृतिक नियमों एवं व्यवहारों में तीव्रगति से परिवर्तन होता है, अत: सामाजिक परिवर्तन की प्रकृति की विवेचना यहाँ उपयुक्त होगी ।

(1) सामाजिक परिवर्तन की तीव्रता (The Rapidity of Social Change): संसार में लगभग समस्त राष्ट्रों में सामाजिक परिवर्तन की गीत में होड़ लगी हुई है । जिन समाजों में परिवर्तन तीव्र गति से नहीं होतें, उन्हें हम पिछड़ा हुआ समाज मानते हैं । जैसे-जैसे वैज्ञानिक अनुसंधानों और अन्वेषणों में वृद्धि हो रही है, वैसे-वैसे सामाजिक परिवर्तन की गीत भी तीव्र होती जा रही है । संचार, यातायात आदि के साधनों के विकास ने इस तीव्रता में महत्वपूर्ण योगदान दिया है ।

(2) सामाजिक परिवर्तन की अमूर्तता (Abstraction of Social Change) सामाजिक संबंध चूंकि अमूर्त होते है। अत: उनमें हुए फेरबदल या संशोधनों को निश्चित रूप से नहीं बतलाया जा सकता

। सामाजिक संबंधो की अमूर्तता के कारण ही सामाजिक परिवर्तन भी अमूर्त माना जाता है । सामाजिक परिवर्तन का सम्बन्ध भी सामान्यत: गुणात्मक ही माना जा सकता है ।

(3) सामाजिक परिवर्तन की अनिवार्यता (Essentiality of Social Change): सामाजिक परिवर्तन प्रत्येक समाज में अनिवार्यत होता है । प्रत्येक समाज भी प्रगति का आकांक्षी होता है और प्रगति के लिये आवश्यक है कि समाज की स्थापित संरचना में परिवर्तन किया जाये । यही कारण है कि प्रत्येक समाज सामाजिक परिवर्तन की अनिवार्यता को स्वीकार करता है।

(4) सामाजिक परिवर्तन की तुलनात्मकता (Comparative Nature of Social Change): विभिन्न समाजों में सामाजिक परिवर्तन की गति भिन्न-भिन्न होती है । यही नहीं एक समाज के विभिन्न भागों में भी सामाजिक परिवर्तन की गति भिन्न होती है । अत: इसे जानने के लिए तुलना की आवश्यकता होती है । एक समाज में सामाजिक परिवर्तन को तभी जाना जा सकता है जबकि उसकी तुलना दूसरे समाज से की जाये ।

(5) सामाजिक परिवर्तन के विभिन्न प्रतिमान (Various Pattern of Social Change): सामाजिक परिवर्तन सदैव एक ही प्रकार का नहीं होता है, अपितु परिवर्तन के विभिन्न परिणाम होते हैं, जैसे समरैखिक प्रतिमान, चक्रीय प्रतिमान या उतार चढ़ाव का प्रतिमान ।

(6) भविष्यवाणी में कठिनाई (Difficulty in Social Change): सामाजिक परिवर्तन की दिशा और कारकों के बारे में भविष्यवाणी नहीं की जा सकती । वर्तमान में मानवीय सम्बन्ध जिन रूपों में दिखाई देते हैं, भविष्य में भी वे उन्हीं रूपों में दिखाई देगें, ऐसा कहना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है । यदि आज एक समाज के समाज दूसरे समाज से अच्छे हैं तो कल उनमें तनाव या संघर्ष भी हो सकता है । अत: सामाजिक परिवर्तन हो गया, उसकी गीत तीव्र होगी या मन्द, यह सब अधिकारपूर्वक नहीं कहा जा सकता है । अत: सामाजिक परिवर्तन की भविष्यवाणी, कठिनाई पूर्ण होती है ।

(7) सामाजिक परिवर्तन की सार्वभौमिकता (Universality of Social Change): सामाजिक परिवर्तन का स्वरूप एवं प्रतिमान यद्यपि भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है, लेकिन फिर भी विश्व के प्रत्येक समाज में परिवर्तन अवश्यम्भावी है और इसी कारण से सामाजिक परिवर्तन को सार्वभौमिक कहा जा सकता है ।

10.3 सामाजिक परिवर्तन की दिशा

सामाजिक परिवर्तन एक प्रक्रिया है, इसमें एक निश्चित समयावधि में घटनाओं की एक श्रृंखला होती हैं । यह प्रक्रिया सामाजिक परिवर्तन के दो प्रमुख पक्षों की ओर संकेत करती है इसका स्वरूप और इसकी दिशा । परिवर्तन का स्वरूप जहाँ इसके मूल तत्वों को बताता है, बहीं दिशा यह बताती है कि परिवर्तन किस तरफ हो रहा है । सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को दो वृहद श्रेणियों में रखकर विश्लेषित किया जा सकता है- संरचनात्मक प्रक्रियायें और सांस्कृतिक प्रक्रियायें। परिवर्तन की संरचनात्मक प्रक्रियायें सामाजिक सम्बन्धों के संजाल में होने वाला परिवर्तन है । सामाजिक परिवर्तन की संरचनात्मक प्रक्रिया के सन्दर्भ में नगरीकरण, औद्योगीकरण, आधुनिकीकरण, पश्चिमीकरण की बात की जा सकती है । परिवर्तन की सांस्कृतिक प्रक्रियायें उन विभिन्न तरीकों को दर्शाती हैं जिनके द्वारा भारतीय संस्कृति भारत में प्रारम्भ हुए विभिन्न परिवर्तनों को प्रभावित करती है । भारत में सांस्कृतिक संरचना में परिवर्तन आन्तरिक और बाह्य दोनों प्रकार के स्त्रोतों से हुए हैं ।संस्कशतिक

प्रक्रियाओं के महत्व की चर्चा संस्कृतिकरण, पश्चिमीकरण, लौकिकीकरण, धर्मनिरपेक्षीकरण, सार्वभौमिकीकरण के माध्यम से की जा सकती है।

10.3.1 संरचनात्मक प्रक्रियाएं

(I) नगरीकरण (Urbanization)

भारत में दिन-प्रतिदिन ग्रामीण जनसंख्या नगरों की ओर तेजी से निश्कमण करती जा रही है । अनेक ग्राम भी कस्बों और नगरों में परिवर्तन हो रहे हैं । ग्रामीण कृषि कार्यो को छोड़कर अकृषि कार्यो को अपना रहे हैं । यातायात एवं संचार के साधनों-रेलों, बसों, ट्रेक्टरों, दूरदर्शन, आकाशकणी आदि के प्रभाव से ग्राम और नगरों की जनसंख्या का परस्पर सम्पर्क एवं आवागमन बहुत अधिक बढ़ गया है । इससे भारत के नगरीय समाज की विशेषतायें ग्रामों में पहुँच रही है । ग्राम और नगर की मूलभूत सामाजिक, सांस्कृतिक आदि विशेषताओं में अंतर तीव्र गति से कम होता जा रहा है । ग्रामों में खेती परम्परागत साधनों के स्थान पर आधुनिक उपकरणों, जैसे- बिजली की मोटर, ट्रेक्टर, उन्नत खाद-बीज आदि से हो रही है । शिक्षित ग्रामीणों में नगरीकरण का प्रभाव अधिक देखने को मिलता है । आधुनिक व्यवसाय, नगरीय खान-पान, वेशभूषा, जीवन के तरीकों का प्रभाव ग्रामवासियों पर बहुत पडता जा रहा है । ग्रामवासियों की सोच, दर्शन, धर्म, राजनैतिक गतिविधियाँ, आदि में नगरीकरण का प्रभाव देखा जा सकता है । 1951 से 1991 के बीच नगरीय जनसंख्या में साढ़े तीन गुणा वृद्धि हुई । उच्च सामाजिक प्रस्थिति के लिये शिक्षा, व्यवसाय तथा आय को प्राथमिक तौर पर स्वीकार किया जा रहा है । नगरीकरण द्वारा आने वाले परिवर्तनों ने परिवार के पारम्परिक सरूप, नातेदारी तथा जाति व्यवस्था को पूरी तरह परिवर्तित नहीं किया है । वे अनुकूलन से गुजर रहे हैं। तथा उनके प्रकार्य पूरी तरह से समाप्त नहीं हुए हैं ।

(II) औद्योगीकरण (Industrilisation)

भारत में वस्तुओं का उत्पादन हस्त-उपकरणों के स्थान पर निर्जीव शक्तियों द्वारा संचालित कल-कारखानों एवं मशीनों के द्वारा काफी समय से किया जाने लगा है । यातायात, संचार, परिवहन, खेती एवं कारखानों आदि में शक्ति द्वारा संचालित मशीनों का प्रयोग निरन्तर बढ़ता जा रहा है । भारत में उत्पादन के क्षेत्र में औद्योगीकरण तेजी से हो रहा है । ऊर्जा के नये-नये स्रोतों का जो आविष्कार और प्रयोग हो रहे हैं, इससे मानव श्रम की बचत के साथ-साथ उत्पादन में गुणवत्ता में बहुत अधिक वृद्धि देखी जा सकती है । औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप अंधविश्वासों,रूढ़ियों, परम्पराओं धार्मिक कर्मकाण्डों आदि में परिवर्तन आया है साथ ही औद्योगीकरण ने अनेक सामाजिक समस्याओं जैसे- जनसंख्या में वृद्धि, शराबखोरी, भ्रष्टाचार, वेश्यावृत्ति अपराध, बाल- अपराध, असमानता, मादक पदार्थो का दुरूपयोग, श्रमिक असंतोष आदि में भी वृद्धि की है ।

इसके अतिरिक्त औद्योगीकरण ने घरेलु उत्पादन के तरीकों में भी परिवर्तन किया है । महिलाएं खेतों, कारखानों एवं व्यवसायिक संस्थानों में विभिन्न प्रकार के कार्य करने लगी हैं । महिलाओं की नई आर्थिक भूमिका ने उन्हें नया वातावरण दिया है, जहाँ उन्होंने अपनी परिवर्तित सामाजिक स्थिति को महसूस किया । महिलाओं की इस नई भूमिका ने उन्हें परिवार के अन्दर निर्णय लेने का नया अवसर प्रदान किया है । संयुक्त परिवार का एकाकी परिवार में बिखराव हुआ है । जातियों ने अपने व्यवसाय को छोड़ा है तथा पारम्परिक दायित्वों से अपने को मुक्त किया है । व्यवसायिक विविधता ने तमाम व्यवसायों को जाति के बन्धन से मुक्त कर दिया है । यह गाँवों की अपेक्षा शहरों में अधिक हुआ है।

(III) आधुनिकीकरण (Modernization)

आधुनिकीकरण एक प्रक्रिया होने से पहले एक विचार है इसलिए समाज विज्ञानी इसके अर्थ को लेकर एक मत नहीं हैं। इस विचार के अनुसार आधुनिकीकरण तकनीकी परिचय और उसके प्रयोग के ज्ञान पर आधारित है । आधुनिकीकरण की प्रक्रिया द्वारा जीवन के पुराने प्रतिमानों को छोड़कर नये प्रतिमानों को अपना लिया जाता हैं । इन नये प्रतिमानों व विचारधारा को नई अवस्था एवं नई आर्थिक एवं सामाजिक संगठन की आवश्यकता होती है । यह प्रक्रिया व्यक्ति के जीवन प्रतिमानों को बदल देती है । कई सामाजिक ब राजनीतिक परिस्थितियाँ, आधुनिकीकरण को संभव बनाने के लिये आवश्यक मानी गई हैं । इनमें से कुछ निम्नलिखित हैं -

1) स्कूली शिक्षा के स्तर में बढ़ोतरी
2) संचार तथा यातायात के साधनों की उपलब्धता
3) लोकतांत्रिक राजनीतिक संस्थाएं
4) नगरीय तथा गतिशील जनसंख्या
5) संयुक्त परिवार के स्थान पर एकाकी परिवार
9) जटिल श्रम विभाजन
6) धर्म का सार्वजनिक जीवन में घटता प्रभाव
7) पदार्थों तथा सेवाओं के विनिमय के लिये पारम्परिक तरीकों के स्थान पर विकसित बाजार ।

इस प्रकार आधुनिकीकरण सामाजिक व्यवस्था में इन परिस्थितियों की उपस्थिति का परिणाम है । इनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल सांइसेज' में अपने लेख मार्डनाइजेशन में लर्नर ने आधुनिकीकरण की आस्था इन शब्दों में की है- "आधुनिकीकरण एक प्राचीन प्रक्रिया के लिये एक समकालीन शब्द है- सामाजिक परिवर्तन की यह प्रक्रिया जिसके अनुसार कम विकसित समाज अधिक विकसित समाजों की विशेषताओं को ग्रहण करते हैं । ' शैक्षणिक योजना तथा इसके संगठन से आधुनिकीकरण के अन्य क्षेत्रों में भी प्रगति हुई है । राजस्थान में भी स्कूली तथा महाविद्यालय जाने वाली लड़कियों का प्रतिशत बढ़ा है । लड़कियों को स्कूल शिक्षा निःशुल्क कर दी गयी है । राज्य के आर्थिक तथा सामाजिक विकास के लिये नये व्यवसायिक एवं बहुप्रौद्योगिकी संस्थान प्रारम्भ किये गये हैं । शिक्षा भारत में आधुनिकीकरण के सर्वाधिक प्रभावशाली उपकरणों में से एक रही है । इसके फलस्वरूप राष्ट्रवाद, उदारवाद एवं स्वतंत्रता हेतु लोग सक्रिय हुए हैं ।

10.3.2 सांस्कृतिक प्रक्रियाएं

(I) संस्कृतिकरण (Sanskritization)

एम.एन श्रीनिवास सोशियल चेन्ज इन मार्डन इण्डिया, में संस्कृतिकरण को परिभाषित किया है जो इस प्रकार है - " संस्कृतिकरण बह प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक निम्न हिन्दू जाति या जनजाति या अन्य समूह अपनी प्रथाओं, कर्मकाण्डों, विचारधारा और जीवन के तरीके को उच्च और अधिकतर, द्विज जाति की दिशा में बदलती है । सामान्यत: ऐसे परिवर्तनों के बाद निम्न जाति, जातीय संस्करण की प्रणाली में, स्थानीय समुदाय में उसे परम्परागत रूप से जो स्थिति प्राप्त है उससे उच्च स्थिति का दावा करने लगती है । सामान्यत: बहुत दिनों तक, बल्कि वास्तव में एक-दो पीढ़ियों तक दावा किये जाने के बाद ही उसे स्वीकृति मिलती है । " श्रीनिवास ने बताया कि संस्कृतिकरण करने बाली निम्न जाति ब्राहमणों एवं उन जातियों की जीवन शैली को अपना लेती है । श्रीनिवास कहते हैं कि शिक्षा में

वृद्धि और आर्थिक समृद्धि संस्कृतिकरण को बढ़ावा देती है । संस्कृतिकरण के अभिकर्ता सदैव ब्राह्मण ही नहीं रहे हैं, वरन् अन्य जातियाँ भी रही हैं । श्रीनिवास का मत है कि अनेक स्थानों पर स्थानीय प्रभु जातियाँ संस्कृतिकरण का आदर्श रहो हैं । प्रभु जाति से तात्पर्य है बह जाति जो उस गाँव या समुदाय में संख्या की दृष्टि से अधिक हो, जिसका स्थानीय कृषि योग्य भूमि के बड़े भाग पर स्वामित्व हो, जिसके पास आर्थिक, राजनीतिक शक्ति हो और जिसे जातीय संस्करण में उच्च स्थान प्राप्त हो । भारत के विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न जातियाँ प्रभु जातियों के रूप में महत्वपूर्ण हैं । ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य वर्ग की जाति ही प्रमुखतः प्रभु जातियाँ हैं ।

(II) पश्चिमीकरण (Westernization)

यह परिवर्तन की वह प्रक्रिया है जिसमें पश्चिमी संस्कृति, विशेष रूप से ब्रितानिया संस्कृति के सम्पर्क में आने से परिवर्तन होते हैं ।. श्रीनिवास ने अपनी पुस्तक सोशल चेंज इन मॉडर्न इंडिया में पश्चिमीकरण की व्याख्या इन शब्दों में की हैं, " इस शब्द में डेढ़ सौ वर्षो से अधिक के अंग्रेजी शासन के फलस्वरूप भारतीय समाज और संस्कृति में आये परिवर्तन तथा विभिन्न स्तरों पर प्रौद्योगिकी, संस्थाओं, विचारधारा तथा मूल्यों में आये परिवर्तन सम्मिलित हैं ।" पश्चिम में उन्नीसवीं शताब्दी में विज्ञान और तकनीक की उन्नति के साथ ही भारत में भी कारखानों में उत्पादन शुरू हो गया । उद्योगों के प्रसार के कारण यातायात और संचार के तीव्र साधनों की आवश्यकता सामने आयी । अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षो में कृषि-व्यवस्था में नई प्रणालियों को अपनाया गया । सुसंगठित न्यायालयों के साथ आधुनिक न्यायिक व्यवस्था के आरम्भ होने से देश की न्यायिक प्रणाली में महत्वपूर्ण परिवर्तन आया। उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में प्रारम्भ किये गये स्कूल और कॉलेजो ने भारत में आधुनिक शिक्षा प्रणाली की नींव रखी । अंग्रेज अपने साथ मुद्रण यंत्र भी लाये जिससे समाचार-पत्रों, पुस्तकों और पत्रिकाओं का प्रकाशन संभव हुआ । पश्चिमीकरण द्वारा नये विचार और सिद्धान्त सामने आये । श्रीनिवास के शब्दों में इन विचारों में सबसे महत्वपूर्ण हैं मानवतावाद' । मानवतावाद सभी मनुष्यों के कल्याण की बात करता है; चाहे वह किसी भी जाति, आर्थिक वर्ग, धर्म, आयु अथवा लिंग का हो । वास्तव में पश्चिमीकरण में मानवतावाद अन्तर्निहित है, जिसने उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्बार्द्ध में कई सुधारों को संभव बनाया । अमानवीय कृत्यों जैसे- सती प्रथा, स्त्री-शिशु हत्या, तथा दास प्रथा पर रोक इसी का परिणाम है । लोगों के रहन-सहन का ढंग, वेश-भूषा, खान-पान, तौर-तरीके या समग्ररूप में जीवन का ढंग ही बदल गया है । तार्किक-दृष्टिकोण का विकास हुआ है । पश्चिमीकरण ने राजनीतिक विचारों तथा सोच को भी प्रभावित किया । भारत में राष्ट्रीयता और लोकतंत्र दो महान विचारों के रूप में भारत में पश्चिम के माध्यम से आये । इन व्यवस्थाओं ने भारत में सांस्कृतिक आधुनिकता की आधारशिला रखी ।

(III)लौकिकीकरण/धर्मनिरपेक्षीकरण (Secularism)

लौकिकीकरण की अवधारणा का शब्दिक अर्थ हैं- धर्मनिरपेक्षीकरण अर्थात् जो पहले धार्मिक माना जाता था वह अब धर्मनिरपेक्ष माना जाता है और घटनाओं को अलौकिक शक्ति और परलोक से संबन्धित करने या जोड़ने के स्थान या तार्किक आधार एवं व्यवहारिक स्तर पर देखा जाता है । जो घटनाएँ धर्म से संबन्धित मानी जाती थी वे अब धर्म से संबन्धित न होकर वास्तविक कार्य-कारण संबंधो के आधार पर देखी जाती है । इस प्रकार से धार्मिक अंधविश्वासों विचारों रूढ़ियों आदि में परिवर्तन आया है तथा इससे अनेक सामाजिक परिवर्तन आए हैं । धर्म की पवित्रता और अपवित्रता का स्थान लौकिकीकरण के फलस्वरूप शुद्धता-अशुद्धता, साफ-सफाई, सत्यता और असत्यता ने ले लिया है । सभी

जाति के खान-पान के प्रतिबन्ध धीरे-धीरे शिथिल पड़ते जा रहे है । कार्यालयों होटलों चाय की दुकान, कल-कारखानों छात्रावासों में सभी जाति के व्यक्ति साथ-साथ छाना खाने एवं रहने लगे है । आज व्यवसायों में चयन जाति की पवित्रता उच्चता या धार्मिकता के आधार पर नहीं किया जाता है बल्कि अस्ति की शिक्षा कार्यकुशलता योग्यता आदि के आधार पर किया जाता है । लौकिकीकरण की प्रक्रिया से भारतीय समाज के अनेक क्षेत्रों में परिवर्तन आए है । समाज में व्यक्ति की सदस्यता' व्यवसाय, खान-पान सामाजिक संबंध, विवाह आदि लौकिकीकरण के प्रभाव के कारण जातिगत नहीं रहे हैं । प्रदत्त के स्थान पर अर्जित प्रस्थिति का महत्त्व बढा है । समाज पावन-पवित्र और धार्मिक से साधारण, शुद्ध और वैज्ञानिकता की ओर परिवर्तित होता जा रहा है । यह परिवर्तन ग्रामों की तुलना में नगरों और महानगरों में अशिक्षित से शिक्षितों में अति तीव्रता से हो रहा है ।

लौकिकीकरण की प्रक्रिया के प्रभाव धार्मिक कर्तव्यों, व्रतों त्यौहारों संस्कारों, पुनर्जन्म, पुरुषार्थ, वर्णाश्रम, कर्म आदि पर भी देखे जा सकते हैं । दशहरा, दीपावली, होली, राखी आदि त्यौहार धार्मिक उत्सव कम और परिपाटी, मनोरंजन, मेल मिलाप के अवसर अधिक हो गए हैं । तीर्थ-यात्रा का धार्मिक महत्व भी कम होता जा रहा है तथा देशाटन एवं नए स्थानों को देखने, छुट्टियाँ बिताने एवं मनोरंजन का उद्देश्य अधिक बनता जा रहा है । धार्मिक बंधनों को लौकिकीकरण ने प्रभावित किया है तथा व्यक्ति को तार्किक बना दिया है ।

(IV)सार्वभौमिकरण और स्थानीयकरण (Universalization and Parochialization)

मैंकिम मैरियट ने लघु-परम्परा और दीर्घ-परम्परा में परस्पर अन्त: क्रियाओं की प्रक्रियाओं की व्याख्या के लिए दो अवधारणाएँ- (1) सार्वभौमिकरण और (2) स्थानीयकरण दी हैं । आपका कहना है कि जब लघु परम्पराओं के तत्त्वों का प्रसार ऊपर की ओर होता है तब उसका प्रसार या फैलाव वृहद् स्तर तक हो जाता है । लघु परम्पराओं के तल दीर्घ परम्पराओं के साथ जुड़ जाते हैं तो इसे सार्वभौमिकरण कहते हैं । स्थानीयकरण वह प्रक्रिया है जिसमें दीर्घ परम्परा के तत्व नीचे की ओर जाते हैं तथा लघु परम्परा का अंग बन जाते हैं । नीचे की ओर जाने से तातर्य हे कि दीर्घ-परम्परा के तल अशिक्षित जन-साधारण तक पहुँच जाते हैं । जब लघुपरम्परा के तल ऊपर की ओर तथा दीर्घ परम्परा के तत्व नीचे की ओर जाते हैं तो उनके मूल-स्वरूप में परिवर्तन भी हो जाता है ।

10.4 सामाजिक परिवर्तन :नीतियाँ

योजनाएं समकालीन समाज में परिवर्तन की महत्वपूर्ण कारक हैं । यह कारक सामाजिक नीति में प्रत्यक्ष हस्तक्षेप करता है तथा व्यवस्था श्रृंखला की निरंतरता को बनाए रखता है । योजना ऐसी सामाजिक व्यवस्था की परिकल्पना करती है जो तार्किक एवं संतुलित चिन्तन पर आधारित हो । भारत में योजनाओं की शुरुआत आजादी के बाद हुई । भारत सरकार ने 1950 में प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में देश के संसाधनों तथा आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए बिकास के मानचित्र को तैयार करने के लिये योजना आयोग का गठन किया । योजना आयोग ने पंचवर्षीय योजनाओं को प्रारम्म किया जा अभी भी चल रही हैं।

10.4.1 पंचवर्षीय योजनाएँ (Five year Plans)-

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से भारत सरकार तथा राज्य सरकारों ने बिकास के लिए अनेक प्रयास किए हैं । उन प्रयासों में पंचवर्षीय योजनाओं का विशेष योगदान है । पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से जो प्रयास किए हैं उनमें सामुदायिक विकास योजनाएँ तथा इसके अन्तर्गत कृषि, सिंचाई, पशुपालन, कुटीर उद्योग, लघु उद्योग, यातायात, सहकारी समितियाँ आदि प्रमुखतः उल्लेखनीय हैं । पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा निर्धनता को दूर करने के लिए अनेक प्रकार से रोजगार उपलब्ध कराए गए जिससे लोगों को निर्धनता की रेखा से ऊपर उठाया जा सके । प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951 -56) ब्रितानिया सरकार से विरासत में प्राप्त शोषित अर्थव्यवस्था, द्वितीय विश्वयुद्ध और देश के विभाजन से हुई क्षतिग्रस्त अर्थव्यवस्था का पुनरुत्थान करने, स्फीतिकारी प्रवृतियों पर नियंत्रण, उत्पादन क्षमता में वृद्धि एवं आधारभूत संसाधनों का विकास, मुख्य प्राथमिकताएँ कृषि एवं सिंचाई परियोजनाएँ थीं ।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1956-61)- तीव्र गति से औद्योगीकरण करना, रोजगार में वृद्धि करके आय ब सम्पत्ति की असमानता में कमी करके समाजवाद को लाना, भारी उद्योगों का विकास करना, निजी क्षेत्र के स्थान पर सार्वजनिक क्षेत्र का विकास करना ।

तृतीय पंचवर्षीय योजना (1961-68)- पाँच प्रमुख लक्ष्य: (1) राष्ट्रीय आय में 5 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि, (2) कृषि में आत्मनिर्भरता, (3) आधारभूत उद्योगों का विकास, (4) मानव शक्ति के साधनों का अधिकतम उपयोग और (5) आर्थिक शक्ति का विकेन्द्रीकरण करना ।

तीन एकवर्षीय योजनाएँ (1968-69)- 1968 से 69 की अवधि को भारतीय नियोजन में योजनावकाश या योजना की छुट्टी का काल कहते है । इनका उद्देश्य तृतीय पंचवर्षीय योजना के बचे हुए कार्यो को पूर्ण करना था ।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना (1969-74)- स्थिरता के साथ विकास तथा आत्मनिर्भरता को प्राप्त करना रोजगार में वृद्धि, आर्थिक स्थिरता कायम करना सामाजिक समानता प्राप्त करना। योजना में सर्वाधिक प्राथमिकता कृषि तथा सिंचाई को दी गयी।

पंचम् पंचवर्षीय योजना (1974-79)- गरीबी उन्मूलन, आत्मनिर्भरता की प्राप्ति, आय का समान वितरण, रोजगार के अवसरों में वृद्धि, उद्योगों का विस्तार, क्षेत्रीय असंतुलन को हटाना, निर्यात को प्रोत्साहन देना । न्यूनतम मजदूरी नीति तय करना तथा निर्यात को प्रोत्साहन देना ।

अनवरत योजना (1 979-6०)- राजनैतिक कारणों से पाँचवीं योजना 1978 में समाप्त की गई तथा कांग्रेस सरकार ने इसे 1979 तक माना तथा षष्ठम् योजना से पूर्व एकवर्षीय अनवरत योजना चलाई जिसमें राष्ट्रीय आय तथा व्यक्तिगत आय में भी कमी आई थी ।

षष्ठम् पंचवर्षीय योजना (1980-85) निर्धनता को समाज करना' बेरोजगारी तथा अल्प बेरोजगारी का उन्मूलन करना' लोगों के जीवन-स्तर में सुधार लाना' आय एवं धन के वितरण की असमानता को दूर करना तथा गरीबों के कल्याण में वृद्धि करना तथा कृषि एवं उद्योग दोनों को मजबूत करना सर्वाधिक प्राथमिकता ऊर्जा के विकास एवं जनसंख्या पर नियंत्रण को दी गई।

सप्तम् पंचवर्षीय योजना (1985-90)- खाद्यान्न, रोजगार और उत्पादकता में वृद्धि करना, निर्धनता को कम करना, निर्धनों का जीवन-स्तर ऊँचा उठाना, ऊर्जा को पुनः प्राथमिकता दी गई ।

वार्षिक योजना काल (1990-92)- वी.पी. सिंह एवं चन्द्रशेखर सरकारें आठवी पंचवर्षीय योजना को कोई प्रारूप नहीं दे सकी। सातवीं एवं आठवी पंचवर्षीय योजना के बीच के दो वर्षो (1990-91) और (1991-92) की अवधि को वार्षिक योजनाकाल कहा जाता है ।

अष्टम् पंचवर्षीय योजना (1992-97)- रोजगार में वृद्धि, जनसंख्या-वृद्धि पर नियंत्रण, शिक्षा का सार्वभौमिकरण, आधारभूत संसाधनों का विकास करना, ऊर्जा, प्राथमिक शिक्षा, स्वस्थ्य और कृषि संबंधी विकास को प्राथमिकता प्रदान की गई ।

नबी पंचवर्षीय योजना (1977-2002)- मुख्य उद्देश्य पर्याप्त उत्पादक रोजगार सर्जन करना और निर्धनता उन्मूलन की दृष्टि से कृषि एवं ग्रामीण विकास को प्राथमिकता देना है । आत्मनिर्भरता लाने के लिये प्रयास करना सामाजिक न्याय और समता के साथ वृद्धि करना है ।

दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002-2007)- राष्ट्रीय योजना आयोग ने दसवीं पंचवर्षीय योजना के प्रारूप, खण्ड 1- आयामों रणनीतियों- के अन्तर्गत दसवीं योजना व उसके बाद के लिए निम्न ग्यारह मोनीटरेबल लक्ष्य निर्धारित किए हैं, जिनको ध्यान में रख कर राज्य सरकार ने अपनी दसवीं योजना के लिए लक्ष्य निर्धारित किये हैं व व्यूह-रचना तैयार की है ।

राष्ट्रीय योजना आयोग के अनुसार ग्यारह मोनीटरेबल लक्ष्य इस प्रकार हैं :

गरीबी वर्ष 2007 तक पाँच और 2012 तक 15 फीसदी कम करना ।

कम से कम दसवीं योजना में बढने वाली श्रम-शक्ति को उच्च गुणात्मक एवं लाभप्रद रोजगार उपलब्ध कराना ।

वर्ष 2003 के अन्त तक सभी बच्चों को स्कूल भेजकर वर्ष 2007 तक उनकी पाँच वर्ष तक की शिक्षा पूरी करना । साक्षरता एवं मजदूरी में वर्ष 2007 तक लिंग-भेद (Gender gap) 5० फीसदी कम करना।

वर्ष 2001-2011 के दशक में जनसंख्या वृद्धि दर 16.2 प्रतिशत कम करना ।

योजना अवधि में साक्षरता दर बढ़ाकर 75 फीसदी तक करना ।

वर्ष 2007तक शिशु मृत्युदर (IMR) कम कर प्रति हजार 45 करना तथा 2012 तक इसे 26 पर लाना।

वर्ष 2007 तक मातृ मृत्यु-दर (IMR) कम कर प्रति हजार 2 तथा 2012 तक 1 करना ।

वर्ष 2007 तक वन-क्षेत्र में 25 एवं 2012 तक 33 फीसदी की बढ़ोतरी करना ।

योजना-अवधि में सभी गाँवों को स्वच्छ व पर्याप्त पेयजल उपलब्ध कराना ।

वर्ष 2007 तक सभी मुख्य नदियों को प्रदूषण मुक्त करना तथा 2012 तक अन्य अधिसूचित (Notified) जल क्षेत्रों को प्रदूषण मुक्त करना ।

राष्ट्रीय उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए राज्य सरकार ने दसवीं पंचवर्षीय योजना के लिए निम्न दृष्टिकोण व्यूह-रचना पर बल दिया है ।

राज्य व राष्ट्र की प्रति व्यक्ति औसत आय के अन्तर को कम करना । इसके लिए विकास की दर ऊँची करनी होगी । संसाधन आवंटन को अधिक विवेकपूर्ण बनाना । प्रत्येक विभाग द्वारा स्वयं के साधनों का आन्तरिक सृजन करना । सेवा क्षेत्र में निजी क्षेत्र की भागीदारी बढ़ाना, विशेषतया शहरी क्षेत्रों में ।

क्षमता-निर्माण के विभिन्न स्तरों पर लगने बाले समय एवं लागत में कमी करना तथा उसके उपयोग को बढ़ाना । वर्तमान आधारभूत योजनाओं को पूर्ण करने पर जोर देना, विशेषत: सिंचाई के क्षेत्र में जहाँ स्कीमें काफी समय से लंबित पड़ी हैं।

कृषि आधारित क्षेत्र को बागवानी, पशुधन, मत्स्य तथा कृषि प्रसंस्करण (Agro-processing) जैसी विभिन्न योजनाओं हेतु उपयोग में लाना ।

पेयजल प्रबन्धन को अत्यधिक महत्व देना । जल जैसे सीमित साधन का सबसे ज्यादा कार्यकुशल उपयोग करना तथा भूमि की उत्पादकता बढ़ाना ।

राहत कार्यो को सामान्य योजना कार्यक्रमों से जोड़ना ताकि राज्य को सूखे के संकट से बचाया जा सके। वांछित स्तर के कम उपलब्धि वाले सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों को विनिवेश के अन्तर्गत लाने का प्रयास करना । स्थानीय लाभ के क्रियाकलापों जैसे- पर्यटन, हैन्डीक्राफ्ट तथा हैण्डलूम को प्राथमिकता दिया जाना ।

सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिए गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों का विशेष ध्यान देना, विशेषतः: ग्रामीण क्षेत्रों में । जनसंख्या वृद्धि रोकने को मुख्य उद्देश्य के रूप में लेकर उसे कम करने के गम्भीर प्रयास करना ।

सूचना प्रोद्योगिकी का गाँव स्तर तक विस्तार करना ।

आधारभूत सुविधा की कमी वाले क्षेत्रों पर विशेष ध्यान देना ताकि विकास में प्रादेशिक असंतुलन कम किये जा सके ।

73 एवं 74 वें संविधान संशोधन के अन्तर्गत पंचायती राज संस्थाओं एवं शहरी निकायों को न्यायिक मजबूती प्रदान करना ताकि विकास स्थानीय जरूरतों स्थानीय साधनों व स्थानीय प्राथमिकताओं के अनुरूप किया जा सके ।

इन उद्देश्यों के अलावा दसवीं योजना के प्रारूप में पर्यटन, दस्तकारी व हथकरघा के विकास, रोजगार के अवसरों में वृद्धि, पर्यावरण विनाश पर रोक तथा योजना व गैर-योजना क्रियाओं में कार्यकुशलता को बढ़ाने पर बल दिया गया है ।

10.4.2 ग्रामीण विकास के कार्यक्रम

ग्रामीण विकास-कार्यक्रम के उद्देश्य अधिक रोजगार उपलब्ध कराना, आय का अधिक समान वितरण करना, गरीबी उन्मूलन ब ग्रामीण क्षेत्रों में पूँजी का विनियोजन बढ़ाना है ।

(1) एकीकृत अथवा संबन्धित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (IRDP)- इस कार्यक्रम का मूल उद्देश्य बेरोजगार के अतिरिक्त अवसर उत्पन्न करके निर्धन व्यक्तियों की आमदनी को बढ़ाना है ताकि वे गरीबी की रेखा से ऊपर आ सकें। इससे लघु कृषकों, सीमान्त कृषकों, खेतिहर मजदूरों, गैर-कृषिगत मजदूरों, ग्रामीण कारीगरों व अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के लोगों को लाभ पहुँचेगा । इनमें से भी बंधुआ मजदूरों, महिलाओं, विकलांग व्यक्तियों ब साधनहीन कृषकों को अधिक वरीयता दी जाएगी ताकि वे विभिन्न किस्म की आर्थिक क्रियाओं में लग कर निर्धनता की रेखा को पार कर सकें ।

अप्रैल 1999 से यह कार्यक्रम ट्राईसम, द्वाकरा, सीट्रा, जी.के.वाई. तथा एम.डबलू.एस के साथ स्वर्ण जयंती- ग्राम स्वरोजगार-योजना (8887) में मिला दिया है ताकि गाँवों में गरीबी की रेखा से नीचे जीवन-यापन करने बालों को गरीबी की रेखा से ऊपर लाया जा सके । उन्हें रोजगार दिया जा सके और उनकी आमदनी बढ़ायी जा सके ।

(2) ट्राइसम कार्यक्रम (ग्रामीण युवाओं को स्वरोजगार कार्यक्रम में प्रशिक्षण)- यह ग्राम स्वरोजगार योजना का ही एक भाग है जिसे भारत सरकार द्वारा व 5 अगस्त, 1979 से प्रारम्म किया गया था। इसके अन्तर्गत 10 हजार व्यक्तियों को लाभान्वित करने के लिए 1995-96 में 14 करोड़ रु. के व्यय

का लक्ष्य रखा गया था, जिसमें केन्द्र व राज्य सरकार का आधा-आधा अंश रखा गया था । युवा वर्ग में मजदूरी-रोजगार व स्वरोजगार देने के लिये यह प्रशिक्षण कार्यक्रम बनाया गया था ।

(3) ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं व बच्चों का विकास (ड्वाकरा)- (Development of Women and Children in Rural Areas (DWCRA)) - यह एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम की उप-योजना (Sub Scheme) के रूप में वर्ष 1984 मे 'चलाई गई थी । इसके अन्तर्गत गरीबी की रेखा से नीचे के ग्रामीण परिवारों की महिलाओं को स्वरोजगार के अवसर प्रदान किया जाते हैं । द्वाकरा के अन्तर्गत 10 से 16 स्त्रियों के समूह को ट्राइसम में आय-सृजन के लायक दक्षताएँ प्रदान की जाती हैं, और स्थानीय स्तर पर दक्षता, कच्चा माल, तैयार माल की बिक्री की सुविधाएँ उपलब्ध की जाती हैं । इससे उनको अतिरिक्त आय प्राप्त होने से उनके जीवन की गुणवत्ता में सुधार होता है और उनकी सामाजिक-आर्थिक शक्ति व क्षमता में वृद्धि होती है ।

(4) जवाहर रोजगार योजना (JRY) - इसका प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगार व अर्द्ध-रोजगार प्राप्त पुरुषों ब स्त्रियों को लाभप्रद रोजगार के अतिरिक्त अवसर प्रदान करना है । लेकिन इससे उत्पादक सामुदायिक परिसम्पत्तियों का भी निर्माण होगा। 1 अप्रैल, 1999 से इसका व्यापक स्वरूप जवाहर-ग्राम-समृद्धि-योजना (JGSY) अपनाया गया है।

(III)जनजातियों के विकास हेतु कार्यक्रम (Programmes of the Development of Tribes) देश को स्वतन्त्र हुए पचास वर्ष से भी अधिक हो गये लेकिन जनजातियों की स्थिति में विशेष सुधार नहीं हुआ है । इसलिये उनके विकास की विशेष योजना बनाई जानी चाहिये ।

(1) जनजाति उपयोजना क्षेत्र : पांचवी योजना मे जनजाति उपयोजना का दृष्टिकोण स्वीकार किया गया । इसके अन्तर्गत बांसवाड़ा डूंगरपुर जिले उदयपुर व राजसमन्द जिले की सात पंचायत समितियां' चित्तौड़गढ़ जिले की दो पंचायत समितियां तथा सिरोही जिले की आबूरोड़ पंचायत समिति सम्मिलित है । इन जिलों की 23 पंचायत समितियों को मिला कर सरकार ने सन् 1974 में जनजाति उपयोजना क्षेत्र घोषित किया जिस के व 9770 वर्ग किमी. क्षेत्र में कुल 4409 गांव आबाद है।

जनजाति उपयोजना क्षेत्र के सर्वागीण विकास के लिए शिक्षा, चिकित्सा जलापूर्ति, नियोजन और प्रशिक्षण जैसी सुविधाएं उपलब्ध करवायी जा रही हैं । शिक्षा के प्रति जागरूकता व रुचि उत्पन्न करने हेतु आदिवासी छात्रों को मुफ्त पोशाकें, पुस्तकें, लेखन-सामग्री उप लब्ध करवायी गयी हैं । साथ ही आश्रम छात्रावास योजना के अन्तर्गत जनजाति के छात्रों को किराये के मकान में रहने पर किराया भी दिया जाता है ।

अनुसूचित जनजातियों के हितों की रक्षा करने तथा उन्हें उन्नति के अवसर प्रदान करने के उद्देश्य से राजस्थान सरकार ने भारतीय संविधान की अवस्था के अन्तर्गत कुछ अधिनियम पारित किए जैसे-

1. राजस्थान काश्तकारी अधिनियम, 1955
2. राजस्थान ऋणग्रस्तता से मुक्ति सबकी अधिनियम, (Rajasthan Relief of Indebted Act)
3. भू-राजस्व अधिनियम, 1970
4. राजकीय सेवाओं में आरक्षण संविधान के अनुच्छेद 15(4) के अन्तर्गत विभिन्न तकनीकी व व्यवसायिक शिक्षण संस्थाओं में 5: प्रदेश जनजाति के लोगों को मिलना चाहिए ।

(2) परिवर्तित क्षेत्र विकास उपागम (Modified Area Development Approach-MADA)) कार्यक्रम: इस कार्यक्रम के अन्तर्गत राज्य के 16 जिलों अर्थात् अलवर धौलपुर, भीलवाड़ा, बूंदी, चित्तौडगढ, जयपुर, दौसा, झालावाड़, कोटा, बारां, पाली, सवाई माधोपुर, करौली, सिरोही टोंक, उदयपुर में क्षेत्रों का गठन किया गया । जिनके लिये सरकार ने संशोधित क्षेत्रीय विकास (माडा) योजना बनाई। इन क्षेत्रों में मीणा बहुल कुल 3589 गांव सम्मिलित हैं जिनमें इस क्षेत्र की कुल जनसंख्या का 5623 प्रतिशत अनुसूचित जनजातीय का रहता है ।

इस योजना से जनजातियों के जीवन स्तर को उन्नत करने, गरीबी मिटाने, बेरोजगारी समाज करने तथा जनजाति विकास विभाग पृथक रूप से स्थापित किया गया । इससे पूर्व यह कार्य समाज कल्याण दिमाग के पास था । अत: वैयक्तिक एवं सामुदायिक कायों द्वारा जनजातीय परिवारों को आर्थिक दृष्टि से गैर जनजातीय परिवारों के समकक्ष लाने के प्रयासों में तेजी लाई जा सके । माडा के अन्तर्गत सम्मिलित भू-भागों में आश्रम स्कूल, ग्रामीण गृह निर्माण योजना, दुकानों हेतु अनुदान, सामुदायिक कूओं को गहरा करना दस्त एवं दरी बुनाई केन्द्र, पेयजल लघु सिंचाई एवं चिकित्सा जैसी व्यक्तिगत लाभ एवं सामुदायिक बिकास की योजनाओं को लागू किया जा रहा है ।

(3) सहरिया विकास कार्यक्रम. यह कार्यक्रम बारां जिले के किशनगंज एवं शाहाबाद तहसीलों विकास खण्डो) की एकमात्र आदिम जाति सहरिया के विकास के लिये अपनाया गया है । इस क्षेत्र में कुल 435 गांव है तथा इस जनजाति की जनसंख्या 3400 है जो परियोजना क्षेत्र की जनसंख्या का 23.52 प्रतिशत है । इस क्षेत्र में रहने वाले सहरिया लोगों के चहुंमुखी बिकास हेतु यह कार्यक्रम 1977-78 में चलाया गया जिसके लिये वित्तीय सहायता केन्द्र एवं राज्य सरकार से मिलती है । इस कार्यक्रम में कृषि, लघु-सिंचाई, पशुपालन, वानिकी. शिक्षा पेयजल, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य, पुनर्वास सहायता आदि पर व्यय किया जाता है । साथ ही प्राकृतिक आपदाओं में सहायता, मुक्त कानूनी सलाह और ग्रामीण गृह निर्माण जैसे कल्याणकारी कार्यक्रमों का भी संचालन किया जाता है ।

(4) माडा क्लस्टर योजना राज्य के 7 जिलों तथा 11 माडा क्लस्टर बूंदी (पीपलदा), बास (दीगोद अटरु, बांस), झालावाड़ (खानपुरा, अकलेरा पू, अकलेरा द.), अजमेर (केकड़ी), राजसमन्द (नाथद्वारा, राजसमन्द), भरतपुर (वैर द., वैर उ.), सवाई माधोपुर (खण्डार) जिनकी कुल जनसंख्या 5 हजार या इससे अधिक है तथा जिसमें 5० प्रतिशत से अधिक जनसंख्या जनजाति की है, में यह योजना लागू की गयी है । इन माडा क्लस्टर्स के सर्वांगीण विकास का कार्य सरकार द्वारा संचालित विभिन्न कार्यक्रमों के अन्तर्गत कराया जा रहा है ।

(5) एकलव्य योजना इस योजना की क्रियान्वित भारत विकास परिषद ने कर आदिवासी बाहुल्य क्षेत्रा में लगभग 40 लाख आदिवासी बालकों का विकास करने हेतु विद्यालय छात्रावास एवं स्वास्थ्य केन्द्र चलाए हैं ।

(6) रूख भायला कार्यक्रम रूख: भायला अर्थात वृक्ष मित्र कार्यक्रम को चलाए जाने का उद्देश्य जनजातीय बाहुल्य क्षेत्रों में सामाजिक वानिकी को प्रोत्साहन देने तथा पेड़ों की अवैध कटाई रोकना है । इस कार्यक्रम के अन्तर्गत 500 चयनित स्वयंसेवकों को 300 रूपये प्रतिमाह भत्ता दिया जाता है।

(7) रोजगार कार्यक्रम आदिवासियों को रोजगार के अतिरिक्त अवसर उपलब्ध करवाने तथा उनके आर्थिक साधनों में बढ़ोतरी करने हेतु फल बिकास, पशुपालन, वृक्षारोपण, रेशम उत्पादन, मत्स्य पालन जैसे रोजगार कार्यक्रम शुरू किये गये हैं । राज्य की अनुसूचित जातियों के आर्थिक-उत्थान को त्वरित गति प्रदान करने के लिये मार्च 1980 में अनुसूचित जाति-विकास सहकारी निगम की स्थापना की गई

। निगम अपनी विभिन्न योजनाओं जैसे पैकेज ऑफ प्रोग्राम योजना, स्काईट योजना, यार्न योजना, ऑटोरिक्शा योजना, दुकान योजना, बुनकर शेड योजना तथा प्रशिक्षण योजना आदि के अन्तर्गत इन लोगों को आर्थिक सहायता उपलब्ध कराये जाने तथा उन्हें स्वावलंम्बी बनाये जाने की दिशा में निरन्तर प्रयासरत है ।

10.4.4 एकीकृत बाल विकास योजना

एकीकृत बाल विकास योजना (आईसीडीएस.), वर्तमान में राज के सभी जिलों के 177 खण्डों एवं 14 शहरी क्षेत्रों में चलाये जा रहे हूँ जिनके अन्तर्गत 6 वर्ष से कम आयु के बच्चों गर्भवती एव दूध पिलाने वाली महिलाओं को पूरक पोषाहार टीकाकरण स्वस्थ परीक्षण' पोषाहार एवं स्वास्थय शिक्षा' सन्दर्भ सेवाएं और स्कूल पूर्व शिक्षा सेवाएं प्रदान की जाती हैं । इनमें से टीकाकरण स्वास्थ्य परीक्षण और सन्दर्भ स्वास्थय एवं चिकित्सा विभाग की मदद से उपलब्ध कराई जाती है ।

राज्य में एकीकृत बाल विकास कार्यक्रमों को बल प्रदान करने एवं विस्तार करने हेतु 1999-2000 वर्ष में विश्व बैंक सहायता प्राप्त आई.सी.डी.एस.- ।।। परियोजना प्रारम्म की गई । इस योजना के तहत विश्व बैंक से 5 वर्षों में 19067 करोड़ रुपये भारत सरकार के माध्यम से 66 नयी एवं 66 पुरानी परियोजनाओं को क्रमश: प्रारम्भ एवं सुद्दढ़ करने हेतु प्राप्त होंगे । चालू वित्तीय वर्ष के दौरान महिला एवं बाल विकास विभाग ने 32 नयी आई.सी.डी.एस. परियोजना को स्वीकृति प्रदान की हैं, जिसमें 3589 आगंनबाड़ी केन्द्र खोले जायेंगे । 1995-96 में स्कूली बच्चों के लिये दोपहर के भोजन की योजना (मिड-डे-मील योजना) प्रारम्भ की गयी जिसके द्वारा प्राथमिक शिक्षा को बढ़ाबा देने के लिये प्राथमिक विद्यालयों के बच्चों को दोपहर का भोजन देने की व्यवस्था का प्रावधान किया गया है।

(V) महिला विकास कार्यक्रम

महिला विकास कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य महिलाओं को अधिकार सम्पन्न बनाना है ताकि वे अपनी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति को समझने एवं उसमें सुधार करने हेतु योग्य बने । परियोजना प्रस्ताव की प्राथमिकताओं में से एक, महिलाओं की संप्रेषण, सीखने एवं संगठित क्रियाओं हेतु सुविधा प्रदान करने के लिए संगठन बनाने पर बल देना होगा।

महिला विकास कार्यक्रम वर्ष 1984 में राज्य सरकार द्वारा 6 जिलों में चालू किया गया था । वर्ष 1998-99 में राज्य के सभी जिलों में इस कार्यक्रम को लाग कर दिया गया । महिला बिकास कार्यक्रम के अन्तर्गत किशोर बालिका योजना- लाडली स्वयं-सहायता समूह, महिला रोजगार योजना, बालिका समृद्धि योजना आदि प्रमुख योजनाऐं हैं ।

10.4.6 राज्य में पर्यटन -बिकास के नये कार्यक्रम

(1) राज्य सरकार की नीति इसमें निजी विनियोग-कर्ताओं को बढ़ावा देने की है । राज्य में मार्च, 1989 में पर्यटन को उद्योग घोषित किया गया । बाद में इसके लिए स्वीकृत पूँजी-विनियोजन के 15 से 20 प्रतिशत तक सब्सिडी देने की घोषणा की गई ।

(2) राज्य में पेइंग गेस्ट योजना के अन्तर्गत नौ शहरो- जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, जैसलमेर, बीकानेर, अजमेर, चित्तौड़गढ, माउण्ट आबू एवं पुष्कर में 562 परिवारों के माध्यम से 4 हजार से अधिक व्यक्तियों के ठहराने की सुविधा जुटाई गई है।

(3) विश्व प्रसिद्ध जैसलमेर किले के संरक्षण हेतु गन्दे पानी व सीरिज-निकास की योजना प्रारंभ की गई हे ।

(4) 1994-95 में डेचू सालासर, देवली, पिण्डबाडा तथा बाबर में पर्यटकों के लिए मिडवे बनवाये ।

(5) राज्य सरकार दरगाह शरीफ, अजमेर तथा पुष्कर के सर्वांगीण बिकास की वृहद क्षेत्रीय योजना पर पहले से काम कर रही है । इसी क्रम में 1994-95 में कैलादेवी, गोगा-मेढ़ी, सालासरजी रामदेवरा, देशनोक, मेहन्दीपुर के बालाजी व नागौर की दरगाह के नियोजित बिकास के कार्यक्रम बनाये गये हैं ।

(6) पर्यटकों की सुविधा के लिए राज्य में विमान सेल का विस्तार किया जा रहा है ।

(7) उदयपुर की मोतीमगरी एवं आमेर के महलों में दृश्य एवं श्रवण (Light and Sound) शो प्रारम्भ किये जा रहे हैं।

(8) राजस्थान में हेरीटेज होटलों की संख्या 65 से 100 तक बढ़ायी जा रही है ।

(9) राज्य सरकार पर्यटन के बिकास में निजी क्षेत्र का सहयोग लेना चाहती है ।

10.4.7 स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना

यह कार्यक्रम 1.4.1999 से शुरू किया गया है । इस नयी योजना की शुरुआत से पूर्ववर्ती कार्यक्रम यथा आई.आर डी.पी, ट्राईसेम, द्वाकरा, सीटरा, जी.के. बाई तथा एम.डब्यूएस. अस्तित्व में नहीं है । इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य- (i) गरीबों को समुचित आजीविका उपलख करवाना है, (ii) ग्रामीण क्षेत्रों में विपुल संख्या में लघु उद्योगों की स्थापना करना है, iii) सहायता प्राप्त परिवारों को तीन वर्ष की अवधि में गरीबी रेखा से उपर लाना है, (iv) ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी रेखा से नीचे रहने बाले परिवारों को इस योजना में सम्मिलित किया जाता है (v)उपलब्ध राशि को ध्यान में रखते हुए प्रत्येक ब्लॉक में अगले 5 वर्ष के लिए 30 प्रतिशत ग्रामीण गरीबों को इसमें सम्मिलित किया जाना है ।

10.4.8 सूखा एवं अकाल की समस्या के निपटने हेतु सरकारी कार्यक्रम

1. सूखा सम्भावित क्षेत्र कार्यक्रम इस कार्यक्रम को सरकार ने 1974-75 में प्रारम्म किया था । इस कार्यक्रम का प्रमुख उद्देश्य सूखे के प्रणव को कम करके ऐसी परिसम्पत्तियों का निर्माण करना है जिससे रोजगार के साधन उपलब्ध हों तथा ग्रामीणों की आय के स्तर में वृद्धि हो सके ।
2. काम के बदले अनाज योजना अकाल से पीड़ित क्षेत्रों के लोगों को रोजगार उपलब्ध करवाने हेतु राज्य सरकार द्वारा बही सड़कों का निर्माण, बांधों का निर्माण कराया जाता है जिससे अकाल प्रभावित क्षेत्रों के लोग पलायन न करें तथा भूख से पीड़ित न हों । इसलिये राज्य सरकार काम के बदले अनाज योजना के अन्तर्गत मजदूरी का भुगतान अनाज के रूप में करवाती है।
3. इन्दिरा गांधी नहर परियोजना- पंजाब व हिमाचल प्रदेश की नदियों का जल राजस्थान में लाकर यहाँ के विस्तृत मरुस्थल को हरा-भरा करने का भागीरथी प्रयास किया जा रहा है और इस

प्रयास का ही नाम है राजस्थान नहर परियोजना । श्रीमति इन्दिरा गांधी की मृत्यु के पश्चात् उनकी याद में राज्य सरकार ने 2.11.1984 को एक अधिसूचना जारी कर राजस्थान नहर परियोजना का नाम बदल कर इन्दिरा गांधी नहर परियोजना रखा है । इन्दिरा गांधी नहर एक सामान्य सिंचाई परियोजना नहीं है । यह नहर जहाँ आकार, लम्बाई, क्षमता, सिंचित क्षेत्र, निर्माण सामग्री की मांग और जन शक्ति की दृष्टि से विश्व की वृहद परियोजनाओं की श्रेणी में आती है, वही कई तथ्यों में अनन्य एवं अतुलनीय है जैसे सिंचाईपरियोजना जिसके माध्यम से विषम मरुस्थल क्षेत्र को कृषि प्रधान बनाने के साथ-साथ निम्नलिखित लाभ भी हो सकते हैं:-

1. सिंचाई क्षेत्र में लाभ इस परियोजना के अन्तर्गत अभी तक 1038 लाख हेक्टेयर की सिंचाई क्षमता विकसित की जा चुकी है और उसके माध्यम से 888 लाख हेक्टेयर भूमि में सिंचाई की जा रही है ।
2. कृषि उपज में वृद्धि : इस योजना से खाद्यान्नों में लगभग 38 लाख टन जिसमें से प्रथम चरण के अन्तर्गत 145 लाख टन तथा द्वितीय चरण से 225 लाख टन और कपास में लगभग 1.5 लाख गांठों के उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है।
3. रेगिस्तान प्रसार में रुकावट: थार का रेगिस्तान जो रेंगता हुआ आगे की ओर अग्रसर है अब वह सिंचित क्षेत्र बढ़ जाने से आगे नहीं बढ़ सकेगा । मरुभूमि के विस्तार को रोकने के लिये काजरी, जोधपुर में वृक्षों की पंक्तियाँ लगाकर इस प्रभावी उपाय की उपयोगिता सिद्ध कर दी है ।
4. विपुल जल की सुलभता. इन्दिरा गांधी नहर की प्रवाह क्षमता 5300 लाख घन मीटर प्रति सैकैन्ड है । इसके अन्तर्गत लगभग 1200 क्यूबिक जल उपलब्ध होगा तथा उसका 11 .5 प्रतिशत पेयजल के लिये निर्धारित है, शेष औद्योगिक क्रियाओं के लिये है ।
5. अकाल पर रोक. यह भाग सदियों से शुष्क रहा है । अकाल जैसी स्थिति प्राय: यहाँ बनी रहती है । इससे यह नहर मुक्ति दिलवायेगी । अल्पावधि में सूखे एवं अकाल की समस्या का सामना करने की क्षमता इस परियोजना ने प्रदान कर दी है ।
6. विद्युत उत्पादन वर्तमान में अनूपगढ़ ब सूरतगढ़ शाखाओं पर 13 मेगावाट क्षमता के तीन लघु जल-विद्युत गृहों का निर्माण किया गया है । जल विद्युत उत्पादन में तीव्र गति लाने हेतु चारणवाली एवं शहीद बीरबल शाखा पर भी परीक्षण कार्य गति में है ।
7. खनिज शोषण. इस क्षेत्र में जिप्सम, नमक, इमारती पत्थर बहुतायत में मिलता है । पेट्रोलियम के मिलने की भी संभावाएं बढ़ी है । घोटारू क्षेत्र में शीघ्र ही व्यापारिक स्तर पर तेल एवं गैस प्राप्त करने का कार्य शुरू हो जायेगा, अत: खनिज व्यवसाय का भविष्य भी उज्जवल दृष्टिगत होता है ।
8. यातायात का विकास. इस क्षेत्र में अधिवासीय विस्तार हो जाने के कारण बीकानेर, जैसलमेर, हनुमानगढ़, गंगानगर, जोधपुर आदि केन्द्र रेल एवं सडक मार्ग के संगम बन चुके हैं । भविष्य में इस नहर को कांडला बन्दरगाह से जोडकर नौकायन करने की योजना है । ऐसा होने पर इन्दिरा नहर भारत की 'राईन नदी' बन जायेगी तथा इससे व्यापार, उद्योग तथा वाणिज्य का अत्यधिक विकास होगा ।

9. समग्र बिकास. इस परियोजना के पूर्ण होने पर सभी क्षेत्रों जैसे कृषि, उद्योग, परिवहन, आपार आदि में पर्याप्त बिकास होने की संभावनाऐं बनी हैं । इसके परिणामस्वरूप सरकारी, राष्ट्रीय तथा लोगों की आय में वृद्धि होगी। साथ ही लोगों की गरीबी दूर होगी, जीवन स्तर ऊँचा होगा ।

10.4.9 शिक्षा के विकास हेतु कार्यक्रम

साक्षरता के सन्दर्भ में राजस्थान देश के सबसे पिछड़े राज्य बिहार (38.48 प्रतिशत) से ऊपर है । राज्य में महिला साक्षरता केवल 20.44 है । जैसलमेर जिले के 39 प्रतिशत गाँव ऐसे है जहाँ एक भी महिला साक्षर नहीं है । इसी प्रकार राजस्थान के 14 प्रतिशत गाँव अर्थात 5458 गाँवों में एक भी महिला साक्षर नहीं है । राज्य में पुरुष एवं महिलाओं की साक्षरता में न प्रतिशत का अन्तर है । राज्य में 800 गाँव ऐसे हैं जहाँ एक भी पुरूष साक्षर नहीं है । इसलिये इस दिशा में प्रयास किये जा रहे हैं । निःशुल्क बालिका शिक्षा कार्यक्रम के अन्तर्गत स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहित करने हेतु राज्य सरकार द्वारा राज्य में विद्यालय, महाविद्यालय स्तर पर बालिकाओं को निःशुल्क शिक्षा दी जा रही है । शिक्षाकर्मी परियोजना, लोक जुम्बिश कार्यक्रम, विज्ञान सुधार योजना, सरस्वती योजना, दूरस्थ शिक्षा, अनुसूचित जाति, जनजाति के छात्रों - छात्राओं में योग्यता अभिवृद्धि राज्य में साक्षरता अभियान, आदि योजनाए। चलाई जा रही हैं । राजस्थान में सम्पूर्ण साक्षरता का लक्ष्य प्राप्त करना चुनौतीपूर्ण अवश्य है किन्तु कठिन नहीं है । राष्ट्रीय साक्षरता मिशन की दृष्टि से साक्षरता अभियान के क्रियान्वयन में राजस्थान देश के कुछ अन्य राज्यों की तुलना में बेहतर स्थिति में है ।

10.5 सारांश

विभिन्न तरीकों से राज्य के हस्तक्षेप ने लोगों के जीवन में दूरगामी परिवर्तन किये हैं । ये परिवर्तन सिर्फ उनकी आर्थिक स्थिति में ही दिखाई नहीं दे रहे हैं; बल्कि उनके सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन में भी नजर आ रहे हैं । लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था ने एक नई सामाजिक व्यवस्था का निर्माण किया है जो प्रस्थिति में असमानता एवं भेदभावपूर्ण व्यवहार को दूर करने के लिये प्रतिबद्ध है । इस प्रकार राज्य सामाजिक परिवर्तन के महत्त्वपूर्ण घटक के रूप में कार्य करता है । सरकार द्वारा उठाये गये विकास के विभिन्न कदमों के कारण आकांक्षाओं के स्तर में भी वृद्धि हुई है । भाग्य और दैवीय इच्छा के आगे समर्पण करने की प्रवृत्ति जो सामान्यतः निर्धन और पिछडे वर्गों में पाई जाती थी उसका स्थान जुझारूपन ने ले लिया है ।

10.6 बोध प्रश्न

लघुत्तरात्मक प्रश्न-

1. सामाजिक परिवर्तन कि प्रकृति स्पष्ट कीजिये।
2. सामाजिक परिवर्तन किस दिशा में हो रहा है बताइये।
3. राजस्थान में चलाई जा रही विभिन्न योजनाओं के नाम बताइये।

निबंधात्मक प्रश्न-

1. सामाजिक परिवर्तन कि संरचनात्मक प्रक्रिया पर प्रकाश डालिये।
2. सांस्कश्तिक प्रक्रियाओं का वर्णन करते हुए परिवर्तन कि दशा बताइये।
4. पंचवर्षीय योजनाओं पर एक लेख लिखिए।

5. पर्यटन विकास के लिये राजस्थान में चलाये जा रहे कार्यक्रम बताइये।
6. राजस्थान में बनी विभिन्न नीतियों पर एक लेख लिखिये।

10.7 सन्दर्भ ग्रंथ

1. योगेन्द्र सिंह : मार्डनाइजेशन ऑफ इण्डियन ट्रेडिशन
2. एमएन. श्री निवास :सोशियल चेन्ज इन मॉर्डन इण्डिया
3. महेन्द्र नारायण कर्ण : भारत में सामाजिक परिवर्तन (एन.सी.ई.आर.टी.)
4. लक्षीनारायण नाथूरामका : राजस्थान की अर्थ व्यवस्था
5. एलआर. भल्ला : सामयिक राजस्थान
6. के.एल. शर्मा : भारतीय सामाजिक संरचना एवं परिवर्तन
7. श्याम् लाल : फ्रॉम हायर कास्ट दू लोअर कास्ट

इकाई- 11

सामाजिक परिवर्तन और नौकरशाही

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 नौकरशाही का अर्थ

11.3 नौकरशाही का आदर्श स्वरूप आधार

11.3.1 नौकरशाही तथा नई सामाजिक संरचना

11.3.2 भारत में नौकरशाही का प्रारंभ

11.4 राजस्थान में नौकरशाही: ऐतिहासिक स्वरूप

11.5 भारतीय नौकरशाही का चरित्र

11.6 स्वतंत्र भारत में नौकरशाही की जिम्मेदारियां

11.7 विकास और नौकरशाही

11.8 नौकरशाही के कार्य के संबंध में उठे प्रश्न

11.9 नौकरशाही के प्रयासों का मूल्यांकन

11.10 सारांश

11.11 बोध प्रश्न

11.12 शब्दावली

11.13 सन्दर्भ ग्रंथ

11.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप -

1. नौकरशाही का अर्थ जान सकेंगे
2. नौकरशाही के बिकास तथा सामाजिक परिवर्तन के संबंधो की विवेचना कर सकेंगे
3. सामाजिक परिवर्तन तथा बिकास का अर्थ समझ सकेंगे
4. राजस्थान में नौकरशाही के विकास की भूमिका की विवेचना कर सकेंगे
5. सामाजिक परिवर्तन में नौकरशाही की भूमिका का मूल्यांकन करने में सक्षम होंगे

11.1 प्रस्तावना

नौकरशाही संगठन आधुनिक समाजों के संगठन हैं । जैसे-जैसे पारम्परिक समाजों की रचना में परिवर्तन होने लगा; प्रशासन, सत्ता और राज्य के स्वरूपों के परिवर्तन के संदर्भ में भी परिवर्तन होने लगा। आधुनिक समाजों की आवश्यकताएं अलग थीं, अत: नई संरचनाओं में नये प्रकार के संगठनों की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी । नौकरशाही संगठन इसी प्रकार की आवश्यकता के परिणाम थे । औद्योगिक संरचनाएं बनीं । पारंपरिक सत्ता संरचनाओं के विपरीत ये संरचनाएं लिखित संविधानीय व्यवस्थाएं थीं इन लिखित व्यवस्थाओं की अनुपालना के लिए जिस संगठन की रचना हुई वह नौकरशाही

संगठन रचना थी । सामाजिक परिवर्तन तथा नौकरशाही की व्याख्या करने से पहले आवश्यक है कि पहले नौकरशाही के अवधारणात्मक आधारों की चर्चा की जाये ।

11.2 नौकरशाही का अर्थ

यूरोपीय सभ्यता में परिवर्तन पर चर्चा करते समय मैकस वैबर ने नौकरशाही की कई प्रकार से विवेचना की थी । उन्होंने यह भी बताने की चेष्टा की थी कि नौकरशाही का तार्किक वैधानिक सत्ता के बिकास के साथ हुआ । नौकरशाही तार्किक वैधानिक सत्ता का प्रतिनिधित्व था । वैबर के कई समाज थे-नौकरशाही की ऐतिहासिकता कब थी, और यूरोपियन सभ्यता में नौकरशाही का विस्तार कैसे हुआ? नियम के प्रति प्रतिबद्धताओं ने नौकरशाही के कार्य कलापों को कैसे प्रभावित किया जो लोग नौकरशाही के प्रभाव में आए, उनके व्यक्तित्व की क्या विशेषताएं थी, सब से बड़ी बात, जो वैबर ने देखने की कोशिश की थी, वह थी नौकरशाही द्वारा प्रशासकीय तथा दिये गये कार्य को पूरा करने की क्षमता ।

11.3 नौकरशाही का आदर्श स्वरूप

वैबर यह मानते हैं कि नौकरशाही आधुनिक संगठनों की विशेषता थी । सरकार, राजनीतिक दल, उद्योग, व्यापार और सेना, सभी की संरचना नौकरशाही पर केन्द्रित है । जहाँ की भी विधि एवं कानून सम्मत व्यवस्था होती है- नौकरशाही व्यवस्था उसका परिणाम है । वैबर के अनुसार इस प्रकार नौकरशाही के निम्न आधार होते हैं ।

1. अधिकारिक कार्य निरन्तरता के आधार पर संचालित किये जाते हैं । सारी कार्यप्रणाली एक दूसरे के निर्णयों और कार्यक्रमों के साथ जुड़ी हुई होती है ।
2. सारा कार्य पूर्व निर्धारित नियमों के आधार पर तथा नियम के ऊपर आधारित प्रक्रियाओं के द्वारा निर्धारित होता है।. काम करने का जो भी तरीका निर्धारित है- उसके तीन सूत्र है । सारी संरचना में कार्यो के लिये निर्धारित पदों के कर्तव्य भी निर्धारित है । जो भी पदचारी कार्य कर रहे है उनके अधिकारी निर्धारित है और नियमों को मानने के आचरणों की पालना कराने के लिय साधन दिये गये है ।
3. नौकरशाही में अपेक्षा है कि जो लोग काम कर रहे हैं वे व्यक्तिगत रूप से स्वतंत्र होंगे, मात्र शासकीय उत्तरदायित्व के प्रति निबद्ध होंगे ।
4. नौकरशाही में पदों पर बिना किसी भेदभाव के योग्यता के आधार पर भर्ती होगी ।
5. काम के बदले में पदवृद्धि, वेतन, सेवा-निवृति के लाभों का प्रावधान
6. प्रशासन के साधनों पर कोई स्वामित्व नहीं बल्कि दुरुपयोग पर प्रतिबंध होगा ।
7. कठोर अनुशासन के अंतर्गत कार्य करने की परम्परा होगी ।
8. अधिकारियों की संस्तरणीय व्यवस्था । जितना बडा अधिकारी-उत्तरदायित्व तथा भूमिका भी उतनी ही बड़ी । निम्न पदों को कोई अधिकार नहीं होंगे ।

11.3.1 नौकरशाही तथा नई सामाजिक संरचना

वैबर द्वारा तार्किक वैधानिक व्यवस्था प्रजातांत्रिक व्यवस्था भी थी । प्रजातंत्र में जो कुछ भी व्यवस्थाएं हैं । उसमें सत्ता का आधार निरपेक्ष रहे- इसकी भी अपेक्षा है । नौकरशाही तंत्र निरपेक्ष भाव से प्रजातंत्र की आवश्यकताओं को पूरा कर सके- यह अपेक्षा भी आधुनिक समाजों में ही विकसित हुई है । यूरोपीय समाजों में राज्य तंत्र के संचालन में धर्म का हस्तक्षेप बहुत अधिक था । भारत जैसे देश

में नीति एवं धर्म दोनों का ही हस्तक्षेप स्पष्ट है । इस हस्तक्षेप से कैसे मुक्त हुआ जाय यह नौकरशाही से अपेक्षा थी ।

11.3.2 भारत में नौकरशाही का प्रारंभ

देसाई के अनुसार भारत में आधुनिक नौकरशाही का प्रारंभ ब्रिटिश उपनिवेशवाद से प्रारंभ हुआ । ब्रिटिश उपनिवेशवाद के आगमन से पहले भारत में किसी भी प्रकार की नियमित अथवा संतुलित संचालन व्यवस्था नहीं थी । ब्रिटिश उपनिवेशवाद को भारत के ऐकीकरण की आवश्यकता थी । एक एकीकरण के लिये आवश्यक था एक सा प्रशासन तंत्र । आधुनिक नौकरशाही की स्थापना इसी आधार पर प्रारंभ हुई । सारा देश छोटी-छोटी सामंतवादी रियासतों में बंटा हुआ था पर इन सामंती राज्यों में ऐसे तंत्र की अवस्थाएं बिल्कुल नगण्य थी जो तर्क तथा वैधानिक स्तर पर स्थापित की गई हो। ब्रिटिश शासन ने पहले व्यवस्था का एकीकरण किया और बाद में प्रशासन व्यवस्था का । एकीकरण की यह प्रक्रिया फिर भूमि प्रबंधन और खेती के नियमन पर भी हुई । कहना न होगा यह सारा तंत्र उपनिवेशवाद को स्थायित्व प्रदान करने से संबंधित था ।

11.4 राजस्थान मे नौकरशाही: एतिहासिक स्वरूप

नौकरशाही जैसे तंत्र की स्थापना राजस्थान में पिछली शताब्दी से ही प्रारम्म हुई । राजस्थान के इतिहास में नौकरशाही तंत्र जैसी व्यवस्था मौजूद नहीं थी । राजस्थान के शासकों का राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक कार्यकलापों पर एकाधिकार था । मध्य युग में सारी व्यवस्था शक्तिशाली सरदारों के हाथों में थी । सामंत शासक के लिये जान देने को भी तैयार थे । जागीरदार भी अपने भूमि क्षेत्र में निर्णय लेते और शासन करने में स्वतंत्र थे । सामंती राजा की स्वामी भक्ति तथा उनके स्वाभिमान की रक्षा उनके कार्य कलापों का एक मात्र नियम थी । राज्य की सुरक्षा के लिये भी सरदार और जागीरदार जिम्मेदार थे । जब शांति होती थी तो ये जागीरदार अपनी कचहरियों में बैठ कर प्रशासन और विवाद के मसले निपटाया करते थे । कई मामलों में सरकार और जागीरदार अपने निर्णयों के लिये स्वतंत्र थे । किन्ही नियमों की बाध्यता उन पर नहीं थी । राजाओं को कामकाज चलाने के लिये सहायता की आवश्यकता पडती थी, पर सहायता के लिये राजाओं की अपनी पसन्द थी । प्रधान, दीवान, बख्शी,कोतवाल,खजान्ची, कुछ ऐसे पद थे जो राज्य के विभिन्न कार्यो को शीर्ष स्तर पर देखा करते थे । राजस्व प्रशासन की व्यवस्था तथा न्याय व्यवस्था के स्वरूप भी सामंती विशेषाधिकार के साथ जुडे हुए थे ।

देश के अन्य भागों की अपेक्षा राजस्थान से ब्रिटिश साम्राज्य का परिचय कम था तथा राजस्थान के शासक ब्रिटिश संरचना चाहते भी रहे थे, नौकरशाही का वर्तमान स्वरूप जल्दी प्रारंभ नहीं हुआ । ब्रिटिश शासन इस बात में कार्यशील था कि देशी रियासतों का भी आधुनिकीकरण किया जाय । इस प्रयास में उन्होंने कई रियासतों में सीमित आकार के नौकरशाही तंत्र की स्थापना का प्रयास किया । स्वाधीनता के आते आते बहुत सी रियासतों में शासन व्यवस्था के लिये नौकरशाही तंत्र का प्रारूप स्थापित हो चुका था ।

11.4.1 नौकरशाही का भारतीयकरण

नौकरशाही तंत्र का भारतीयकरण भारतीय स्वतंत्रता के बाद प्रारंभ हुआ । यूरोप की तरह भारत में नौकरशाही जैसे संगठन के विकसित होने के लिये कोई सामाजिक- सांस्कृतिक स्रोत नहीं थे । कौटिल्य

ने बहुत पहले क्षमताओं और शक्ति धारित पदाधिकारियों के संस्तरण का उल्लेख अवश्य किया था पर नौकरशाही का वैबरीयस्वरूप इस देश के समाज में पहले स्थापित नहीं था । इस प्रकार के तंत्र की स्थापना का न कोई कानूनी आधार था और न ही व्यवस्थात्मक । सामन्ती सामाजिक संरचना के अनुसार प्रांरभिक नौकरशाही ही उच्च जाति वर्ग द्वारा निर्मित थी । उच्च मध्यवर्ग का प्रतिनिधित्व भी इस तंत्र में अधिक था । अंग्रेजों की सिविल सर्विस में भारतीय बहुत कम थे । जो भारतीय थे बे भारतीय संरचना के गुणी तथा ऊंचे तबकों के लोगों से संबंधित थे । इसी समय में राष्ट्रीय आंदोलन से प्रभावित लोगों ने ब्रिटिश नौकरशाही को छोड़ा । ब्रिटिश काल में नौकरशाह अंग्रेज परस्त जरूर थे पर उनके मन में राष्ट्रवाद का बीज कहीं न कहीं जरूर मौजूद था । भारतीय स्वाधीनता के बाद स्वतंत्र भारत के प्रारंभिक दिनों में उनका योगदान बड़ा महत्वपूर्ण था । उदाहरण के लिये देशी रियासतों के एकीकरण में वी.पी.मेनन का योगदान ।

बोध प्रश्न-1

1. नौकरशाही तंत्र कि स्थापना के प्रमुख उद्देश्य क्या थे?
2. नौकरशाही तंत्र कि संरचना कि मुख्य विशेषताएं क्या है?
3. राजस्थान में आधुनिक नौकरशाही का विकास कैसे हुआ?
4. भारत में नौकरशाही तंत्र कि स्थापना का श्रेय किसे दिया जाता है।

11.5 भारतीय नौकरशाही का चरित्र

प्रारंभ में भारतीय नौकरशाही पर यह आरोप लगा था कि वह उच्च जातियों तथा वर्गो का प्रतिनिधित्व करती है । इस चरित्र को बदलने के लिये संविधान की वह व्यवस्था महत्वपूर्ण है, जिसके अंतर्गत अनुसूचित जाति, जन जाति तथा अन्य पिछड़े वर्गो के प्रतिनिधित्व के लिये प्रशासनिक सेवाओं में आरक्षण की व्यवस्था की गई । बाद में मण्डल आयोग की रिपोर्ट में भी आर्थिक तथा सामाजिक रूप में पिछड़े वर्ग का यह प्रवेश सामाजिक न्याय कहा गया । नौकरशाही के चरित्र में यह बदलाव इस देश में सामाजिक परिवर्तन का प्रतीक था । इस देश में गैर बराबरी पर प्रहार सामाजिक परिवर्तन की इच्छाओं का प्रतीक है । यह सोचा गया था कि यदि नौकरशाही में पिछड़ा का प्रतिनिधित्व हुआ तो यह सामाजिक परिवर्तन से समानता लाने का प्रयास साकार करेगा ।

नौकरशाही के इस चरित्र-परिवर्तन का विरोध भी हुआ है । जातिद्वेष इस परिवर्तन के प्रति पूर्ण आश्वस्त नहीं है । इससे तंत्र का अवमूल्यन हुआ है तथा दक्षता और कुशलता में कमी आई हैं । जाति द्वेष इस देश की सामाजिक समस्याओं में से एक है । नौकरशाही के चरित्र पर यह प्रहार, विद्वान इसी समस्या से प्रेरित हुआ मानते है । पिछडे और अगड़े के झगडे ने भारतीय संविधान तथा राजनीतिक दलों द्वारा प्रसारित समानता की वैचारिक को पीछे धकेल दिया है ।

वर्तमान में देश के अन्य भागों की तरह राजस्थान में भी प्रशासन और लोक कल्याण कार्यो की कार्य-प्रणाली नौकरशाही तंत्र के साथ जुड़ी हुई है । विभिन्न कार्यो के लिये विभिन्न विभाग हैं । यहाँ तक कि ग्राम स्तर पर भी पंचायती राज, नौकरशाही तंत्र का एक हिस्सा हैं । यह तंत्र राजभवन से प्रारम्म होता है तथा सचिवालय संभाग, जिला स्तर होता हुआ ग्राम स्तर पर पहुँच जाता है । विभिन्न दिमागों में प्रतिनिधियों का जाल प्रशासन तंत्र को चलाता है तथा राज्य द्वारा निर्धारित कार्यक्रमों की देखभाल करता है । कर संसाधन पुलिस, न्यायपालिका वित्तीय प्रबंधन आदि सभी प्रबंधनों का स्वरूप नौकरशाही तंत्र का हिस्सा है ।

11.6 स्वतंत्र भारत में नौकरशाही की जिम्मेदारियां

स्वाधीन भारत के नौकरशाही दो प्रकार के कार्यों के साथ जुड़ी है।

सामाजिक परिवर्तन से अभिप्राय

सामाजिक परिवर्तन से अभिप्राय समाज में परिवर्तन से है । कोई भी समाज स्थायी नहीं है। समय-समय पर समाज की संरचना तथा उसके प्रकार्यों में परिवर्तन आते रहते है । समाज में आज संबंध संस्थागत स्वरूप, विचार, वैचारिक तथा व्यवहारों के नियमों सभी में क्रमश: या प्राकृतिक स्वरूप मे परिवर्तन होते रहते हैं । समाज से संबंधित इन्हीं प्रकार के परिवर्तनों को सामाजिक परिवर्तन कहते हैं । समाज की संरचना के निर्माण में प्रस्थिति तथा भूमिकाएं बहु त महत्वपूर्ण हैं । सामाजिक परिवर्तन व्यापक रूप से प्रस्थिति तथा भूमिकाओं को प्रभावित करता है । प्रस्थिति तथा भूमिका के ये परिवर्तन समाज को व्यापक रूप से प्रभावित करते हैं । ऐसे सम्पन्न परिवर्तनों को सामाजिक परिवर्तन कहा जाता है।

समाज में अनेक ऐसी प्रक्रियाएं हैं जो सामाजिक परिवर्तनों को प्रोत्साहित करती हैं । प्रत्येक कारक इन प्रक्रियाओं को पैदा करते हैं और समाज में परिवर्तन लाते हैं । कुछ कारक ऐसे होते हैं, जिन पर मनुष्य का नियन्त्रण नही होता है जैसे प्राकृतिक पर्यावरण अथवा जैविक गतिविधियां । कुछ प्रक्रियाएं मनुष्य की गतिविधियों के साथ जुडी हु ई हैं और मानव की ये ही गतिविधियाँ समाज में व्यापक परिवर्तन ले आती हैं जैसे औद्योगिक तथा आर्थिक गतिविधियाँ, जनसंख्यात्मक गतिविधियां, तकनीकी तथा वैज्ञानिक ज्ञान में विकास, परिवर्तन के उद्देश्य से आयोजित सामाजिक आन्दोलन, सांस्कृतिक आदान-प्रदान अथवा संस्कृति-ग्रहण राजनीतिक संरचनाओं में आने वाला परिवर्तन भी सामाजिक परिवर्तन कहलाता है।

सामाजिक समाजशास्त्री सामाजिक परिवर्तनों को स्वत: या स्वाभाविक प्रक्रिया से प्रेरित तथा नियोजित सामाजिक चरणों में विकसित होना मानते है । सूक्ष्म से वृहत् अवस्था को जाते-जाते परिवर्तन के ये स्वरूप एक पारस्परिक संबंधित कडी बना लेते हैं, और समाज के विभिन्न स्वरूप स्थापित करते हैं। डार्विन, स्पेन्सर, मॉर्गन, मार्क्स आदि ने ऐतिहासिक क्रम में सामाजिक संस्था के उद्विकास का वर्णन किया है । किसी सुनिश्चित विचार के आधार पर निर्धारित दिशा की ओर किया जाने बाला परिवर्तन प्रगति भी है और विकास भी । ऐसी प्रक्रिया निर्देशित सामाजिक परिवर्तन (Direct social change) भी है । इस सामाजिक परिवर्तन के अपने मापदण्ड हैं और प्राप्त उपलब्धियों को इन्हीं माप दण्ड पर तोला जाता है । ऐसे नियोजित सामाजिक परिवर्तनों को संचालित करने के अलग-अलग वाहक होते हैं और ये वाहक अपनी अपनी भूमिका तय करते हैं ।

भारत में स्वतंत्रता के बाद नियोजित सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया अत्यन्त महत्वपूर्ण रही है । आर्थिक तथा सामाजिक प्रगति एवं विकास के लिए योजनाएं बनाई गई हैं, नीतियां बनाई गई तथा नये उद्योगों तथा आर्थिक संस्थानों की स्थापनाएं की गई हैं, राजनीतिक विकास के लिय संविधान का निर्माण किया गया है, तथा प्रजातांत्रिक मूल्यों की स्थापना का प्रयास किया गया है । नियोजित सांस्कृतिक विकास तथा अन्य संस्कृतियों से आदान-प्रदान को जब स्थित किया गया है । भारत में विकेन्द्रीकृत शासन पंचायती राज के माध्यम से विकसित करने का प्रयास किया गया है । सामाजिक, बुराइयों को दूर करने के लिये नये कानून बनाए गये हैं । इन कानूनों का उद्देश्य नियोजित आधार पर

सामाजिक परिवर्तन लाना है । इन कानूनों से अस्पृश्यता का अंत हुआ है, वैवाहिक आधार बदले हैं और पहले से प्रचलित उत्तराधिकारी के नियम बदले हैं ।

सामाजिक परिवर्तनों को नियोजित करने तथा नियोजन को प्रभावी करने में नौकरशाही की महती भूमिका है। नौकरशाही तंत्र कहीं न कहीं परिवर्तन के इन नियोजित परिवर्तन के प्रयासों में भागीदार है । इसीलिये सामाजिक परिवर्तन तथा नौकरशाही की भूमिका का विशेष महत्व है ।

पहला कार्य इस देश के कानून-प्रशासन और सामान्य कार्यो की देखभाल करना । सामान्य जन को सस्ता, पारदर्शी तथा सुलभ प्रशासन दिलाना उसकी पहली जिम्मेदारी है । दूसरे प्रकार के कार्यो का संबंध कल्याणकारी कार्यो तथा सामाजिक परिवर्तन के प्रयासों से है । राजस्थान जैसे प्रदेश में जहाँ रूढ़ियां, परंपराएँ तथा कुप्रथाओं का बोलबाला है तथा जहाँ सामंती समाज व्यवस्था में स्थायित्व दिखाई देता है, समाज में अन्य के साथ साथ नौकरशाही के योगदान की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है । समाज-कल्याण की बहुत सी योजनाएं नौकरशाही के माध्यम से ही संचालित होती हैं । यदि कर्तव्य निष्ठा तथा समाज से सहानुभूति रखने वाले नौकरशाह अधिकारी मनोयोग से कार्य करें तो परिवर्तन की एक था एक दिशा तैयार हो सकती है । सामाजिक परिवर्तन के वाहक के रूप में नौकरशाही का कार्य उसके लिये नया कार्य है । निश्चित ही यह कार्य नियमित प्रशासकीय कार्यो से भिन्न है ।

11.7 विकास एवं नौकरशाही

सामाजिक परिवर्तन और विशेषरूप से नौकरशाही द्वारा विकास कार्यक्रमों के प्रभावीकरण ने नये दृष्टिकोण प्रस्तुत किये हैं । कम से कम तीन लोगों ने विकास-कार्यक्रमों के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन लाने के संबंध में नौकरशाही की भूमिका की चर्चा की है । ये हैं-पाल एपलवी, जवाहर लाल नेहरू तथा गुन्नार मिरडल । एपलबी ने कहा कि नौकरशाही की जो परम्पराएं मिली उन परम्पराओं में विकास तथा सामाजिक परिवर्तन से संबंधित परंपराएं नहीं थी । विकसित नौकरशाही के पास प्रजातांत्रिक परंपराएं भी नहीं थी । देश की वर्तमान रचना में तीन समूह आमने सामने खडे हैं । नौकरशाह, राजनीतिक, अभिजात वर्ग तथा आम जनता । सामाजिक परिवर्तन के लिए इन तीनों का समन्वय आवश्यक है जो फिलहाल नहीं है ।

जवाहर लाल नेहरू का कथन था कि नौकरशाही वर्ग, जाति तथा पद-चेतना से ग्रसित है । स्वतंत्र भारत में नौकरशाही को अपनी जडों तथा सामाजिक परिवर्तन का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है । प्रशासकीय कार्य एक जंगल है जिसमें बहुत से व्यक्तियों तथा पदों की भीड़ है । इन पदों पर बैठे व्यक्तियों में सामाजिक परिवर्तन लाने की इच्छा है भी और नहीं भी । सामाजिक परिवर्तन के लिये नये नवाचारो को कानून, नियमों और तंत्रों की प्रणालियों से नहीं चलाया जा सकता। किसी भी विकास कार्य के लिये जो प्रस्ताव आते हैं उनमें पदों, और पदों के लिये वेतन पहले निर्धारित किये जाते हैं।

कहीं पर नौकरशाही में मानवीयता का समादेश भी होना चाहिए । गुन्नार मिर्डल भारतीय राज्य को एक नर्म राज्य मानते हैं । उनका विचार है कि ऐसे राज्य में लोगों को कानून के प्रतिभय नहीं है और समान्यत: नौकरशाह तथा सामान्य जन उन वैधानिक नियमों के आचरण से दूर हैं जिनसे सामाजिक परिवर्तन लाया जा सकता है ।

उपयुक्र्त तीनों विद्वानों के विचारों में कई नये आयाम जुडे हैं । ये वे कथन हैं जो सामाजिक परिवर्तन के लिये नौकरशाही के योगदान की संभावना पर तो विश्वास करते हैं, पर उन संभावनाओं के प्रति उनके संशय हैं । ये संशय नौकरशाही की कार्यक्षमता नौकरशाही तथा राजनीति के संबंधों (विशेष

रूप से जमीनी स्तर पर जहां परिवर्तन की सबसे बडी आवश्यकता है) भ्रष्टाचार, भाई-भतीजा वाद तथा परिवर्तन के कार्यक्रमों में गरीबों की उपेक्षा, प्रशासकीय असुलभताओं और सामूहिक जिम्मेदारी आदि जैसे प्रश्नों के साथ जुडे हुए हैं ।

यह भी कहा जाता है कि नौकरशाही में निरपेक्षता का अभाव है । विशेष रूप से संवैधानिक निरपेक्षता का । आधुनिक, एक मूल्य भी है और परिवर्तन के लिये एक साधन भी । राजस्थान जैसे प्रदेश में सामंतवाद के इतिहास की पृष्ठभूमि ने सामाजिक परिवर्तनों को और अधिक जटिल कर दिया है । राजस्थान में सामाजिक परिवर्तन के प्रयासों ने सामान्य जन में आन्दोलनात्मक चेतना जागृत की है जो नौकरशाही से परिवर्तन के लिये विकास कार्यक्रमों के लिये टकराती है। भ्रष्टाचार उनमें से एक मुद्दा है । यह विचित्र संयोग नहीं है कि सारे देश के लिये पारित सूचना के अधिकार का कानून सामाजिक परिवर्तन के लिये बिकास कार्यक्रमों में घपलेबाजी के लिये ही बनाया गया था । नौकरशाही की पारदर्शिता जांचने के लिये साधन की रचना राजस्थान में ही हुई थी । घनश्याम भाई शाह का कहना है कि नौकरशाही राज्य का प्रतीक है और सामाजिक परिवर्तन के लिये कोई भी आन्दोलन राज्य को पलटने का प्रयास समझा जाता है । ऐसे आन्दोलन राज्य की सहानुभूति नही पाते हैं बल्कि राज्य की कानून-व्यवस्था के विचार के शिकार हो जाते हैं । अध्ययन यह भी मानते हैं कि राजस्थान में समाजवादी के औपचारिक समर्थन के बाद भी नौकरशाही सामंत वादी मानसिकता तथा सामंत वादी वर्ग से अधिक संबद्ध है । सामाजिक परिवर्तन का कोई भी सोच इन स्थापित मान्यताओं से टकराता है । वैसे भी राजस्थान में सामाजिक शक्तियाँ अत्यन्त प्रबल हैं । सामाजिक परिवर्तन के नौकरशाही प्रबंधन पर उनके दवाब हैं । सामाजिक परिवर्तन के लिये सापेक्ष भूमिका में ये शक्तियां अपना असर डालती हैं।

11.8 नौकरशाही के कार्य के संबंध मे उठे प्रश्न

एक बड़ा प्रश्न जो प्राय: नौकरशाही के अध्ययनों में उठाया गया है वह है, क्या ये कानून जो प्रभावी करती है, सामाजिक परिवर्तन के अनुकूल हैं । ऐसे कानून कम हैं जो देश में सामाजिक परिवर्तन के साथ जुडे हुए हों । राजस्थान में कई कुरीतियों तथा सामाजिक व्यवहारों के लिये प्रभावी कानूनों का बनना शेष है । नौकरशाही की प्रतिबद्ध मानसिकता औपचारिक निवेशिक है । बहुत से मानवअधिकारों के प्रश्न इस व्यवहार के शिकार हो गये हैं । ग्रामीण, नगरीय तथा आदिवासी क्षेत्र में कार्य कर रही नौकरशाही प्राय: सामाजिक परिवर्तन के लिये बने कानूनों में उन दोषों की और इशारा करती है जो परिवर्तन के कार्यो को प्रभावी नहीं होने देते । केवल नियमों के लिये प्रतिबद्धता और उसमें किसी भी प्रकार की मानवीयता का प्रभाव समर्पन चिन्हित (Deriaut) व्यवहार के रूप में मानते हैं । समाज की आवश्यकताओं के अनुसार नियमों का प्रयोग एक सामान्य अवस्था है, जिसके लिये नौकर को प्रयास करना चाहिए ।

जिन क्षेत्रों में सामाजिक परिवर्तन की आवश्यकता है, ऐसा माना जाता है कि वही तंत्र के विस्तार की नहीं अपितु परिवर्तन के कार्यक्रमों के गंभीर प्रभावी करण की आवश्यकता है । सामाजिक परिवर्तन के लिये योजना निर्माण स्वयं में एक गंभीर प्रक्रिया है । यह आरोप लगाया जाता रहा है कि बिना जमीनी अनुभव के नौकरशाही तंत्र इन योजनाओं का निर्माण करता है । परिणामस्वरूप ये योजनाएं असूल हो जाती है । अब ग्राम योजनाएं तकनीकी व्यक्तियों के सहयोग से ग्राम सभाएं बनाने लगी है केरल में पंचायती राज में यह प्रयोग बड़ा सफल रहा है । राजस्थान में भी ग्राम सभाओं का बिकास कार्यक्रम स्वयं तैयार करने की प्रक्रिया प्रारंभ हुई है ।

11.9 नौकरशाही के प्रयासों का मूल्यांकन:

ऐसा नही है कि सामाजिक परिवर्तन के प्रयासों को सफलता नहीं मिली है । विशेष रूप से कल्याण कार्यक्रमों में प्रभावी करण से कुछ समूहों ने लाभ उठाया है । उदाहरण के लिये गरीबी हटाने का सर्वेक्षण यह बताता है कि इन कल्याण कार्यक्रमों में से गरीबी के स्तर पर प्रभाव पड़ा है पर साथ ही इन कार्यक्रमों के कम प्रभावी रहने का एक कारण नौकरशाही की निष्क्रियता भी है । बहु त से क्षेत्रों में गरीबी निवारण के लिये दिये गये धन का पूरा उपयोग नहीं किया गया है बल्कि उसे वापस लौटा दिया गया । सुप्रीम कोर्ट के सामने आई एक जनहित याचिका से यह बात उजागर हु ई कि महाराष्ट्र में शिक्षा प्राप्ति के लिये आए बच्चों के भोजन के लिये दिये गये 78 प्रतिशत धन का उपयोग नहीं किया जा सका । ऐसे कल्याण कार्यो के प्रभावीकरण की जिम्मेदारी नौकरशाही की है जो परिवर्तन के इन कार्यक्रमों का निर्वाह नहीं कर सकी।

11.10 सारांश

सामाजिक परिवर्तन की संभावनाओं को केवल एक कारक के आधार पर नहीं आका जा सकता। यह कहना कठिन है कि सामाजिक परिवर्तन के लिये सबसे अधिक प्रभावी कारक नौकरशाही है पर क्योंकि निर्देशित सामाजिक परिवर्तन (Directed Social Chang) के अधिकांश प्रयास नौकरशाही के साथ संबंधित हैं इसलिये उन तथ्यों तथा कारणों की चर्चा आवश्यक थी जो सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रियाओं को प्रभावित करते हैं । फिर भी सामाजिक परिवर्तन के लिये. नौकरशाही की अपनी भूमिका है । नौकरशाही तंत्र, कम से कम कुशल प्रबंधन के लिये तकनीकी प्रशिक्षित व्यक्तियों का तंत्र है । जमीनी अनुभवों के साथ इस तंत्र की कुशलता का भरपूर उपयोग किया जा सकता है । सामाजिक परिवर्तन के लिये बनाए गए कल्याण- कार्यक्रमों के प्रति नौकरशाही की प्रतिबद्धता के साथ नवाचार तथा नवीन प्रयोगों का खुलापन सामाजिक परिवर्तन की संभावनाओं को बढ़ा देगा । प्रजातांत्रिक समाज नौकरशाही की भूमिका जन सेवक के रूप में आंकी गई है । पर सही प्रजातांत्रिक समाज में राजनीतिक दबाव परिवर्तन के कार्यक्रमों को प्रभावित करते हैं । इसीलिए अध्ययनों ने सुझाव दिया है कि नौकरशाही को राजनीति से मुक्त किया जाये तो विकास द्वारा परिवर्तन के कार्यक्रमों को प्रभावी किया जा सके । सामाजिक परिवर्तन के लिये नौकरशाही की भूमिका को रेखांकित करने की आवश्यकता है । यह रेखांकन नौकरशाही की भूमिका को और अधिक महत्वपूर्ण बना सकता है । राजस्थान में सामाजिक परिवर्तन लाने में नौकरशाही की भूमिका इसलिये महल पूर्ण है क्योंकि नौकरशाही स्थापित सामाजिक संरचना में नये आधार स्थापित कर सकती है।

11.11 बोध प्रश्न

1. भारत मे नौकरशाही के चरित्र की क्या विशेषताए है ?
2. सामाजिक परिवर्तन का अर्थ समझाईए ।
3. विकास और निर्देशित सामाजिक परिवर्तन का क्या अभिप्राय है ?
4. विकास के कार्यो मे नौकरशाही की भूमिका को स्पष्ट कीजिए ।
5. क्या नौकरशाही एमडबल्यू विकास संभव है ?

6. भारतीय समाज के विकास के लिए नौकरशाही से क्या अपेक्षाएं है ?

11.12 शब्दावली

नौकरशाही	–	वैधानिक आधार पर निर्मित प्रशासन व्यवस्था
सामाजिक परिवर्तन	–	एक समय से दूसरे समय के बीच समाज में होने वाले बदलाव
विकास	–	सामान्य इच्छा के आधार पर होने बाले परिवर्तन
नियोजित	–	सामाजिक परिवर्तन योजना बना कर किये जाने बाले परिवर्तन
तंत्र	–	व्यवस्था का ताना बाना

11.13 सन्दर्भ ग्रंथ

1. विमल जालान – फ्यूचर आफ इंडिया, पेंगुइन, 2005
2. नरेश भार्गव: नौकरशाही का समाज शास्त्र – मूल प्रश्न नवंबर,1996
3. राजस्थान स्टेट गजेटियर्स – भाग 4 एडमिनिस्ट्रेशन एंड पब्लिक वेलफेयर-राजस्थान सरकार 1970
4. के.के. मिश्र – भारत में सामाजिक परिवर्तन: मीनाक्षी प्रकाशन 1968
5. श्यामाचरण दुबे:ट्रेडिशन एंड डिवलपमेंट – विकास 1990

इकाई 12

सामाजिक समस्याओं के उपचार में मीडिया का योगदान

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 सामाजिक समस्याएँ एवं मीडिया का समाज

12.2.1 सामाजिक समस्या परिभाषा एवं अर्थ

12.2.2 भारत में प्रमुख सामाजिक समस्याएँ

12.2.3 जनसंचार माध्यमों की सामाजिक भूमिका

12.3 राजस्थान में कतिपय सामाजिक समस्याओं के सबक में मीडिया के योगदान का सिंहावलोकन

12.4 सामाजिक समस्याएँ एवं चौथे खम्भे की चुनौतियाँ

12.4.1 व्यावसायिक बनाम सरोकारी मीडिया

12.4.2 सामाजिक समस्याओं के कारण की पड़ताल की उपेक्षा

12.4.3 व्यवस्थित प्रशिक्षण का अभाब

12.4.4 मीडिया एव अपसंस्कृति

12.4.5 मीडिया एवं वैज्ञानिक चेतना

12.4.6 मीडिया की भाषा

12.4.7 मीडिया में विज्ञापन

12.5 सामाजिक समस्याओं के उपचार में मीडिया की सक्रिय भूमिका: कुछ अपेक्षित सुझाव

12.5.1 प्राथमिकताओं का पुनर्निर्धारण

12.5.2 प्रशिक्षण से संवेदनशीलता

12.5.3 नीतियों में बुनियादी तब्दीली

12.5.4 आंचलिक समस्याओं का कवरेज

12.5.5 नागरिक पत्रकारिता एवं सामाजिक जागरूकता

12.5.6 सामाजिक अंकेक्षण

12.6 सारांश

12.7 सन्दर्भ ग्रंथ

12.8 बोध प्रश्न,

12.0 उद्देश्य

सामाजिक समस्याओं के उपचार में मीडिया का योगदान' अध्याय का अध्ययन करने के उपरान्त आप:-

सामाजिक समस्याओं एवं मीडिया के अन्तर्सम्बन्धों को जान पाएंगे । इसके तहत् सामाजिक समस्या की परिभाषा एवं अर्थ, भारत में प्रमुख सामाजिक समस्याएँ जनसंचार माध्यमों की सामाजिक भूमिका को जान पाएंगे ।

राजस्थान में कतिपय सामाजिक समस्याओं के सम्बन्ध में मीडिया के योगदान का सिंहावलोकन कर पाते ।

सामाजिक समस्याओं एवं मीडिया की चुनौतियों को जान पाएंगे ।

सामाजिक समस्याओं के उपचार में मीडिया की सक्रिय भूमिका हेतु कुछ अपेक्षित सुझावों को जान पाएंगे।

12.2 प्रस्तावना

मीडिया केवल समाज का दर्पण ही नहीं वरन समाज को नेतृत्व, मार्गदर्शन, उचित-अनुचित, अधिकारों एवं कर्तव्यों का ज्ञान कराने बाला प्रमुख माध्यम है । इस दृष्टि से सामाजिक समस्याओं के उपचार में मीडिया की महत्वपूर्ण एवं परिवर्तनकारी भूमिका है । समाज के समाजीकरण, सामाजिक परिवर्तन एवं सामाजिक नियन्त्रण के माध्यम से मीडिया अथवा जनसंचार के माध्यम अपनी सामाजिक भूमिका का निर्वाह करते हैं । सूचना मनोरंजन एवं शिक्षा के बुनियादी उद्देश्यों के लिए संचालित होने बाला प्रिन्ट एवं इलैक्ट्रोनिक मीडिया एक ओर समाज के दोषों को उजागर कर दैनिक जीवन की सामाजिक समस्याओं के प्रति जन-जन को सचेत कर सकता है बहीं दूसरी ओर सामाजिक समस्याओं का समाधान भी निर्देशित कर सकता है ।

भारतीय समाज में प्रचलित विविध सामाजिक समस्याओं के प्रति जागरूकता एवं सामाजिक विसंगतियों के निराकरण के लिए जनसंचार माध्यमों ने अपने उत्पत्ति काल से ही सकारात्मक भूमिका का निर्वाह किया है ।

भूमण्डलीकरण एवं तीव्र वैज्ञानिक तकनीकी प्रगति के आज के दौर में देश एवं राजस्थान को मीडिया में प्रसार संख्या, स्वरूप, तकनीक एवं शैली की दृष्टि से बदलाव आया है । सूचना क्रान्ति की दौड़ में मीडिया का असाधारण विस्तार हुआ है । हर दिन एक नया अखबार, हर महीने एक नया टीवी., चैनल, एक न्यूज वैबसाईट, सबसे तेज, सबसे पहले, एक्सक्यूजिटब खबरों के आज के दौर में सार्वजनिक हितों के स्थान पर व्यवसायिक हित प्रधान हो गये हैं । पीत पत्रकारिता, स्टिंग ऑपरेशन एवं नागरिक पत्रकारिता की प्रवृत्तियों के आज के दौर में यह जानना आवश्यक है कि सामाजिक समस्याओं के उपचार में मीडिया का योगदान क्या है? सामाजिक समस्याओं के निवारण में देश एवं राजस्थान के मीडिया के सक्रिय योगदान में कौनसी चुनौतियाँ तथा उनके कौनसे अपेक्षित समाधान हो सकते है? उक्त मुद्दों के विश्लेषण से सामाजिक समस्याओं के उपचार में जनसंचार माध्यमों की सुदृढ़, परिवर्तनकारी एवं प्रभावी भूमिका को सुनिश्चित किया जा सकता है ।

12.2 सामाजिक समस्याएँ एवं मीडिया का संबंध

सामाजिक समस्याओं के उपचार में मीडिया का योगदान जानने के लिए यह आवश्यक है कि सामाजिक समस्या का निहितार्थ जाना जाए । इसके साथ भारत में प्रमुख सामाजिक समस्याओं की जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है । इसके साथ ही मीडिया के सामाजिक दायित्व को जनसंचार माध्यमों की सामाजिक भूमिका से भी स्पष्ट करना आवश्यक है।

12.2.1 सामाजिक समस्या. परिभाषा एवं अर्थ

सामाजिक समस्या को विविध विद्वानों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से परिभाषित किया है । डब्ल्यू वेलेस वीवर के अनुसार, सामाजिक समस्या एक ऐसी दशा है - जो चिन्ता, तनाव, संघर्ष या नैराश्य उन्नत करती है और आवश्यकता की भूमि में बाधा डालती है ।

पाल लैण्डिस के अनुसार, सामाजिक समस्याएँ बस्तियों की कल्याण संबंधी अपूर्ण आकांक्षाएँ है । वाल्स एवं पर्फे के अनुसार, सामाजिक समस्या सामाजिक आदर्शो का विचलन है जिसका निराकरण सामूहिक प्रयास से ही संभव है।

उक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि सामाजिक समस्याएँ बे सामाजिक दशाएं या परिस्थितियाँ हैं जो समाज में सामंजस्य, सुदृढ़ता एवं सामाजिक मूल्य व्यवस्था के लिए खतरा मानी जाती है । सामाजिक समस्याओं की विविध परिभाषाओं के विश्लेषण से सामाजिक समस्या का अर्थ समझा जा सकता है । सामाजिक समस्या के अर्थ में निम्नलिखित सामान्य तल पाये जाते है -

1. व्यष्टि एवं समष्टि दोनों की दृष्टि से बाधक सामाजिक समस्या एक कष्टप्रद अवस्था है ।
2. सामाजिक समस्या का मनोवैज्ञानिक एवं भौतिक विस्तार व्यापक होता है ।
3. किसी सामाजिक दशा के सामाजिक समस्या के रूप में मान्यता प्राप्त करने के लिए समुदाय या जनता में उसके प्रति जागरूकता प्राप्त करना आवश्यक है ।
4. असामंजस्यपूर्ण शक्तियों तथा उसके परिणामों को रोकने के लिए सामाजिक क्रिया एवं नियन्त्रण की आवश्यकता पडती है ।

अत: सामाजिक समस्याओं को हम उन सामाजिक दशाओं के रूप में परिभाषित कर सकते है जो सामाजिक कल्याण के लिए संकट उत्पन्न करें, जिनके प्रति एक समाज के अनेक लोग जागरूक होते हैं और निराकरण के लिए सामूहिक रूप से कोई रचनात्मक कार्य या प्रयास करने की आवश्यकता अनुभव करते है ।

सामाजिक समस्याओं के संदर्भ में उल्लेखनीय यह है कि व्यक्तिगत एवं सामाजिक समस्या में अन्तर है । सामाजिक समस्या व्यक्तिगत समस्या से भिन्न है । लेमर्ट नामक विद्वान के अनुसार, व्यक्तिगत समस्या वह स्थिति अथवा प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति अपने मुख्य व्यवहार के चारों ओर अपने व्यवहार को स्थिर नहीं रख पाता है । उसकी भूमिकाओं के चुनाव की प्रक्रिया में संघर्ष और भ्रम बना रहता है । व्यक्तिगत एवं सामाजिक समस्या में मूल अन्तर निम्नांकित है।

1. व्यक्तिगत समस्या का सम्बन्ध व्यक्ति विशेष से होता है । यह व्यक्ति के विकास एवं प्रगति में बाधक होती है, जबकि- सामाजिक समस्या का सम्बन्ध समुदाय से होता है । सामाजिक समस्या समाज के बिकास एवं प्रगति में बाधक होती है ।
2. व्यक्तिगत समस्या के जन्म के लिए व्यक्ति स्वयं उत्तरदायी एवं उसके परिणाम भी उसे भुगतने होते हैं, जबकि सामाजिक समस्या को जन्म देने में समाज या समुदाय का हाथ होता है और उसके परिणाम अनेक लोगों को भुगतने होते हैं ।
3. व्यक्तिगत समस्या का दुष्परिणाम यह होता है कि व्यक्ति के व्यक्तित्व में असन्तुलन एवं विघटन उत्पन्न होता है जबकि सामाजिक समस्या का दुष्परिणाम सामाजिक संरचना एवं संगठन का अस्त-व्यस्त होना है ।

4. व्यक्तिगत समस्या व्यक्ति विशेष से समकित होने के कारण इसका निराकरण व्यक्तिगत रूप से किया जाना चाहिए जबकि सामाजिक समस्या के निवारण हेतु सामूहिक प्रयास किये जाते हैं ।

   संक्षेप में, व्यक्तिगत समस्याओं की स्थिति में व्यक्ति के व्यक्तित्व में असन्तुलन पैदा हो जाता है, जबकि सामाजिक समस्याएँ समाज में अनेक विकृतिया को जन्म देती हैं । उक्त अन्तरों के बावजूद व्यक्तिगत समस्याएँ एवं सामाजिक समस्याएँ परस्पर संबन्धित हैं । ये एक-दूसरे को प्रभावित करती है ।

12.2.2 भारत में सामाजिक समस्याएँ

भारतीय समाज का गौरवपूर्ण इतिहास, बहुरंगी संस्कृति, स्वतन्त्र लोकतान्त्रिक गणराज्य, सामाजिक, राजनीतिक आर्थिक न्याय के मूल्यों की स्थापना कटिबद्ध रहा है इसके के बावजूद भारतीय समाज में स्वतन्त्रता प्राप्ति के अनेक दशकों के उपरान्त भी अनेक सामाजिक समस्याएँ विकराल रूप में मौजूद हैं ।

समकालीन भारत की अनेक समस्याएँ तो अनेक शताब्दियों से चली आ रही हैं जैसे - अस्पृश्यता, पर्दा प्रथा, विधवा पुनर्विवाह, दहेज, बाल-विवाह जातिगत वैमनस्य, अंध विश्वास धार्मिक कट्टरता क्षेत्रवाद, साम्प्रदायिकता, क्षेत्रीय एवं धार्मिक असामंजस्य आदि समस्याएँ प्रमुख है । समकालीन भारतीय समाज की समस्याएँ मुख्यत: सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक हैं । ये परस्पर गुम्फित है तथा एक-दूसरे को प्रभावित करती हैं ।

12.3.3 जनसंचार माध्यमों की सामाजिक भूमिका

मीडिया के सामाजिक दायित्व को समझने के लिए जनसंचार माध्यमों की सामाजिक भूमिका को समझना आवश्यक है। यदि सैद्धान्तिक दृष्टि से देखा जाए तो जनसंचार माध्यमों के तीन उद्देश्य सूचना सम्प्रेषण, मनोरंजन

एवं शिक्षा महत्वपूर्ण माने जाते हैं । इनमें शिक्षा का सबक समाज के निर्माण, समाज को चेतना प्रदान करने एवं समाज की समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने से ही है ।

जनसंचार माध्यमों की सामाजिक भूमिका को समझने का प्रयास करें तो मुख्य रूप से तीन सामाजिक भूमिकाएँ हमारे सामने आती हैं -

1. समाजीकरण
2. सामाजिक परिवर्तन
3. सामाजिक नियन्त्रण

समाजीकरण की प्रक्रिया ऐसी प्रक्रिया है जिनमें मनुष्य सामाजिक सांस्कृतिक विधियों को सीखकर एक सामाजिक प्राणी बनता है तथा इस प्रक्रिया के मूल में संचार होता है जिसके माध्यम से परम्पराओं का हस्तान्तरण एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में होता है । मूल्यों, संस्कारों और अन्य रीति-रिवाजों का यह निरन्तर हस्तान्तरण मनुष्य को एक जैविकी प्राणी से सामाजिक प्राणी बनाने में मदद करता है । इस प्रकार व्यक्ति के समाजीकरण में जनसंचार के माध्यमों की भूमिका का विशेष महत्व है ।

सामाजिक परिवर्तन में भी जनसंचार की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है । यद्यपि सामाजिक परिवर्तन में जनसंचार माध्यमों की भूमिका का परोक्ष प्रभाव परिलक्षित नहीं होता है तथा समाज की

परम्पराओं एवं मान्यताओं के परिवर्तन में इस भूमिका के महत्व एवं निरन्तर वृद्धि को देखा जा सकता है। जनसंचार विशेषज्ञ एबर्ट रोजर्स के अनुसार 'माध्यम ही समाज में नये विचारों को प्रतिपादित करते हैं।

समाज विज्ञानी आगबर्न के अनुसार 'प्रौद्योगिकी, पर्यावरण के माध्यम से ही समाज में परिवर्तन लाती है तथा इस परिवर्तन के प्रति हमें अनुकूलित होना पड़ता है।

आगबर्न ने प्रौद्योगिकी को सामाजिक परिवर्तन का महत्वपूर्ण कारक माना है तथा आज जनसंचार माध्यमों में प्रौद्योगिकी का महल जिस तरह से बढ़ा है, बह किसी से भी छिपा नहीं है। प्रौद्योगिकी ही बह है जिसने ग्लोबल बिलेज' की कल्पना को साकार किया है। मीडिया ने प्रौद्योगिकी के प्रयोग से पूरी दुनिया के देशों की भौगोलिक, राजनीतिक एवं सांकृतिक सीमाओं को समाज कर दिया है।

जनसंचार माध्यमों की तीसरी भूमिका सामाजिक नियन्त्रण एक ऐसी प्रक्रिया है जो मनुष्य को समाज के प्रति जवाबदेह बनाती है तथा सामाजिक संरचना को सुरक्षित और संरक्षित करने का कार्य करती है। सामाजिक नियन्त्रण में यह अपेक्षा की जाती है कि समाज के विभिन्न सदस्यों का व्यवहार समाज की आवश्यकतानुसार नियन्त्रित किया जा सकें। इसमें विचारधाराएँ, लोक प्रथा रीति रिवाज, नैतिक मूल, धर्म, कानून और शिक्षा आदि तल महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जन माध्यम इन तत्वों को समीक्षा का अगर प्रदान करते है और जनमत बनाने में मदद करते हैं।

यदि जनसंचार माध्यमों के प्रचलित सिद्धान्तों पर एक नजर डाले तो पाँच प्रमुख सिद्धान्त माध्यमों के सन्दर्भ में माने जाते है -

1. प्रभुत्ववादी सिद्धान्त
2. मुक्ति सिद्धान्त
3. सामाजिक उत्तरदायित्व सिद्धान्त
4. मार्क्सवादी सिद्धान्त
5. विकास संबंधी सिद्धान्त

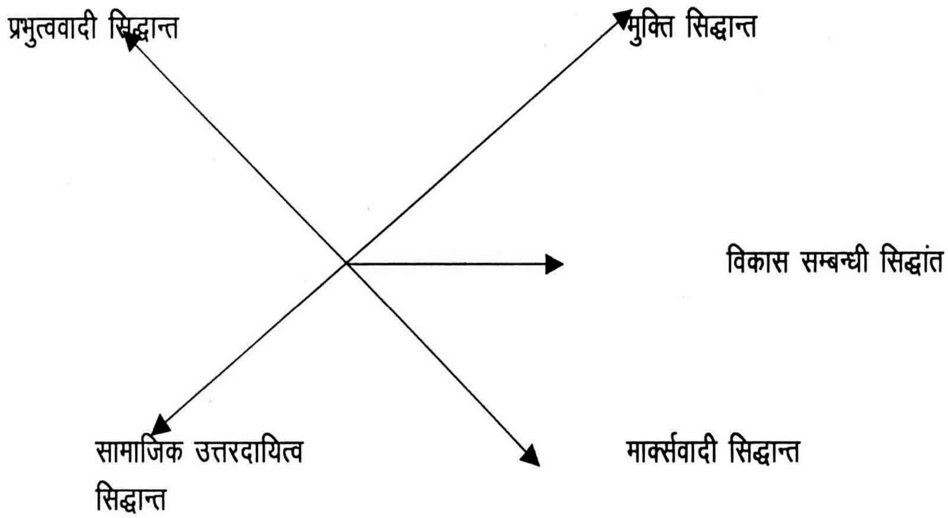

जनसंचार माध्यमों के प्रचलित सिद्धान्त

यदि उक्त सिद्धान्तों का संक्षिप्त विवेचन देखा जाए तो स्पष्ट हो जाता है कि प्रभुत्व वादी सिद्धान्त माध्यमों की भूमिका को सत्ता के हितों के पोषण के लिए आवश्यक मानत हैं । सीबर्ट जैसे विद्वानों की मान्यता है कि जनसंचार के साधन प्रभुत्व की स्थापना में महत्त्वपूर्ण उपादान होते हैं । मुक्ति सिद्धान्त माध्यमों की मुक्ति की बात करता है और संचार कर्मियों की स्वायत्तता की वकालत करता है ।

सामाजिक उत्तरदायित्व सिद्धान्त के संदर्भ में उल्लेखनीय है कि इसे 1949 में संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रेस स्वायत्तता आयोग ने प्रतिपादित किया था । 1949 में जब अमेरिका में रेडियो एवं टेलीविजन का विकास हो चुका था तब आयोग ने यह माना कि समाज के प्रति जिम्मेदारी को समझते हुए जनसंचार माध्यमों को अपने सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करना होगा । अपने लिए नियम एवं कानून बनाने होगें तथा उनके अन्तर्गत समाज में अपराध, अशान्ति, हिंसा एवं अन्य दुर्भावनाओं को रोकने के लिए कार्य करना होगा । जनसंचार माध्यमों का यह भी दायित्व है कि वे सभी वर्गो के बीच सन्तुलन कायम करने का कार्य करें ।

मार्क्सवादी सिद्धान्त 1917 की रूसी क्रान्ति के उपरान्त अस्तित्व में आया । मार्क्सवादी सिद्धान्त मुख्यत: कार्ल मार्क्स एंजिल्स और लेनिन के विचारों पर आधारित है । यह सिद्धान्त माध्यमों को वैचारिक उत्पाद का साधन मानते हुए साम्यवादी-सामाजिक अर्थव्यवस्था के निर्माण में जनसंचार माध्यमों के उपयोग पर जोर देता है । यह सिद्धान्त निजी क्षेत्रों को जन संचार के साधनों के संचालन की अनुमति नहीं देता है तथा इनके पूर्णत: श्रमिक वर्ग के नियन्त्रण में रहते हुए सकारात्मक कार्य करने की बात करता है । यह सिद्धान्त भी सामाजिक जनसंचार माध्यमों के सामाजिक दायित्वों को शिखर पर ही रखने पर बल देता है ।

उक्त सिद्धान्तों के अतिरिक्त जनसंचार माध्यमों का विकास सम्बन्धी सिद्धान्त द्‌वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के पश्चात् दुनिया में आये राजनीतिक परिवर्तनों तथा सामाजिक आर्थिक आवश्यकताओं के परिप्रेक्ष्य में सामने आया । यह सिद्धान्त मुख्यत: जनसंचार माध्यमों की सामाजिक-आर्थिक भूमिका पर बल देता है । इस सिद्धान्त के अनुसार माध्यमों की विषयवस्तु राष्ट्र के विकास को ध्यान में रखते हुए देश एवं भाषा की संस्कृति के अनुरूप होनी चाहिए । यह सिद्धान्त लोकतान्त्रिक सहभागिता में आस्था रखता है तथा जनसंचार माध्यमों में सभी वर्गो के विचारों के आदान-प्रदान पर बल देता है ।

जगदीश्वर चतुर्वेदी ने अपनी पुस्तक 'जन माध्यम एवं मास कल्वर में लिखा है कि जनसंचार माध्यमों का दो अलग-अलग दृष्टियों से अध्ययन किया जा सकता है (1) सामाजिक दृष्टि (2) व्यावसायिक दृष्टि ।

उनके अनुसार सामाजिक दृष्टि से देखें तो विभिन्नताओं के बावजूद इन माध्यमों की सामग्री एक ही दिशा में जाती प्रतीत होती है । व्यावसायिक दृष्टि से देखें तो विभिन्नताओं के बावजूद इन माध्यमों की सामग्री उद्‌योगीकृत संदेश देती है।

उक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि माध्यमों की एक सामाजिक भूमिका है तथा इस भूमिका को अत्यन्त जिम्मेदार, महत्वपूर्ण एवं सकारात्मक भूमिका के रूप में देखा गया है । सम्पूर्ण विश्व में विविध विद्‌वानों ने समाज के विकास एवं मीडिया की भूमिका के अन्तर्सम्बन्धो को स्वीकार किया है । मीडिया की सकारात्मक एवं सशक्त भूमिका द्‌वारा समाज का विकास एक ऐसा विकास है जो समाज

की प्राचीन परम्पराओं, मूल्यों एवं संस्कृति के आदर्श रूप को यथावत रखने का सपना देखता है तथा पुरातन रूढ़ियों एवं कुरीतियों में बदलाव कर सामाजिक परिवर्तन की बात करता है ।

12.3 राजस्थान में कतिपय सामाजिक समस्याओं के संबंध में मीडिया के योगदान का सिंहावलोकन

राजस्थान में एकीकरण एवं भारत की स्वतन्त्रता से पूर्व ही रियासती काल में भी अंग्रेजों राजा-महाराजाओं सामन्तों, जागीरदारों की दुहरी-तिहरी गुलामी के बावजूद सामन्तवादी एवं सामाजिक वि:संगतियों के माध्यम से चोट करना जारी रहा है । राजस्थान का सर्वप्रथम पत्र मजहरूल सरूर माना जाता है, जो हिन्दी तथा उर्दू में प्रकाशित हुआ था, किन्तु इस पत्र की कोई प्रति उपलब्ध नहीं है । इसके बाद जयपुर से रोज तुल तालीम अथवा राजपूताना अखबार नामक द्विभाषी पत्र का प्रकाशन 1858 में शुरू हुआ । यही राजस्थान का प्राचीनतम उपलब्ध-पत्र माना जाता है । मई 1826 को कलकत्ता से प्रकाशित उदन्त मार्तण्ड से हिन्दी का प्रथम पत्र है । इसके राजपूताना अखबार का 30 वर्ष बाद राजस्थान जैसे प्रदेश से प्रकाशित होना निश्चय ही उल्लेखनीय घटना थी । राजस्थान में पत्रकारिता का बीजारोपर्ण करने बाले इस पत्र के बाद अगले कुछ वर्षो में प्रकाशित होने वाले पत्रों में केवल राजाओं एवं सामन्तों की प्रशस्ति गान करने वाले पत्र नहीं थे वरन् ऐसे पत्र भी थे जिन्होंने समाज सुधार एवं राजनीतिक जागृति का मार्ग प्रशस्त किया ।

राज्य के अनेक पत्रों एवं पत्रकारों ने जनाश्रित पत्रकारिता के बीज बोकर पत्रकारिता के क्षेत्र में व्यक्तित्व, साहस और संघर्ष के माध्यम से कई नये मानदण्ड स्थापित किये । राजस्थान केसरी, नवीन राजस्थान, तरूण राजस्थान, अखण्ड भारत, आगीवाण, त्यागभूमि, प्रजा सेवक, मारवाड़ समाचार, राजस्थान समाचार, भारत हीर, मीरा ललकार, सेनानी आदि अनेक पत्रों के माध्यम से राजपूताना की देशी रियासतों में शोषण दमन का सामना करने के तथा पराधीनता के प्रति द्रोह की भावना जगाने के लिए इन पत्रों ने जनता में जागरण का शंख फूंका । नारी शिक्षा, समाज सुधार, नारी जागरण अंध विश्वासों का विरोध, राजनीतिक, सामाजिक चेतना पर अनेक लेख प्रकाशित हुए । विजय सिंह पथिक, शोभालाल गुप्ता, हरिभाऊ उपाध्याय, मामा अचरलेश्वर प्रसाद शर्मा, दुर्गा प्रसाद चौधरी, जय नारायण आस, कनक मधुकर, सुमनेश जोशी, रघुवीर दयाल गोयल आदि इस युग की ऐसी विभूतियाँ थीं जिन्होंने अपनी कलम से राष्ट्रीय संग्राम के जयघोष के साथ, रियासती कुशासन का विरोध एवं सामाजिक वि:संगतियों पर प्रहार किया ।

जब राजस्थान का एकीकरण हुआ तब प्रदेश में लगभग एक सौ लघु मध्यम दर्जे के समाचार-पत्र प्रकाशित होते थे । आज प्रदेश में 600 से अधिक समाचार पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही है जिनमें 153 दैनिक, 199 साप्ताहिक, 245 पाक्षिक तथा 13 मासिक एवं द्विमासिक पत्रिकाएँ हैं जो राज्य सरकार की ओर से विज्ञापनों के लिए मान्यता प्राप्त है । लगभग दो-तीन सौ के आसपास ऐसे समाचार-पत्र भी है जो अनियमित रूप से समयपरक प्रकाशित हो रहे है । आकाशवाणी जयपुर दूरदर्शन केन्द्र के साथ-साथ इलैक्ट्रोनिक मीडिया में ई. टी. वी. जैसे निजी चैनल भी संचालित हो रहे हैं । इस प्रकार समाचार-पत्रों के प्रकाशन में एवं इलैक्ट्रोनिक मीडिया के परिचालन में विगत पांच दशकों में वृद्धि हुई है । विगत 15-20 वर्षो में राज्य के मीडिया परिदृश्य में तीव्र परिवर्तन एवं तकनीकी परिवर्तन इंगित

होता है । राज्य के गांओ एवं कस्बों में मीडिया विशेषतः: प्रिन्ट मीडिया अखबार के रूप में अपनी पहुंच एवं पहचान बना पाया है ।

राज्य की राजधानी और शहरों में ही नहीं वरन् गाव के पंच-सरपंच, पार्षद, नेता, दुकानदार के साथ नई साक्षर पीढ़ी ने समाचार-पत्र को अपनी जरूरतों में शुमार कर लिया है । लेकिन जहाँ तक इन माध्यमों से सामाजिक चेतना जागृति करने एवं सामाजिक समस्याओं के निवारण में इन पत्रों की भूमिका के प्रश्न है वे शोध का विषय है । राजस्थान में सामाजिक समस्याओं के निवारण में जनसंचार माध्यमों अथवा मीडिया की भूमिका के योगदान का विश्लेषण प्रमुख सामाजिक समस्याओं पर मीडिया के कवरेज से किया जा सकता है । राज्य की प्रमुख समस्याओं जैसे महिला विरोधी रूढ़ियाँ अन्य विश्वास एवं सामाजिक ढाँचे में व्याप्त रूढ़ियों, पेयजल समस्या दलित अत्याचार, जातिगत वैमनस्य एवं अन्य सामाजिक समस्याओं के उन्मूलन हेतु राज्य के प्रमुख समाचार-पत्रों एवं इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की भूमिका से यह स्पष्ट होता है कि इन मुद्दों से सम्बन्धित घटनाओं को मीडिया में कवरेज दिया जाता है । ऐसे ही कुछ मुद्दों पर अग्रांकित स्थिति प्रकट होती है :-

राजस्थान में महिलाओं के उत्पीड़न, महिला विरोधी रूढ़ियों एवं महिला विकास विरोधी मुद्दों पर मीडिया के कवरेज का आकलन किया जाए तो स्पष्ट हो जाता है कि इससे सम्बन्धित खबरों को स्थान दिया जाता है । दरअसल राज्य के सामाजिक ढाँचे में पितृसत्तात्मक मूल्यों की वर्चस्वता, सामन्तवादी प्रवृत्तियों की प्रधानता तथा महिला विरोधी कुरीतियों के कारण महिलाओं की स्थिति पिछड़ेपन की रही हैं । शिक्षा एवं स्वास्थ्य के सूचकों को देखा जाए तो महिलाओं की स्थिति निम्न रही है ।

राज्य के प्रमुख दैनिकों एवं पाक्षिकों ने अपनी दैनिक खबरों, सम्पादकीय, अग्र पेजों पर समाज में महिलाओं के पिछडेपन, महिला विरोध कुरीतियों पर खबरों, विश्लेषणों को छापा है । राज्य में बालिका शिक्षा की निम्न स्थिति, बालिका स्वस्थ्य, कुपोषण, कन्यावध, पर्दा प्रथा, दहेज प्रथा, विधवा विवाह निषेध, सती प्रथा, डाकन प्रथा जैसी सामाजिक कुरीतियों एवं अन्य समस्याओं को मीडिया ने कवरेज दिया है ।

किन्तु इस महिला विरोधी सामाजिक विकृतियों को उजागर करने में अनेक बार विवरणात्मक दृष्टि से विवेचन किया जाता है । यदि कुछ समय में राज्य के प्रमुख दैनिकों में महिला सम्बन्धी खबरों की बानगी को देखा जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है । राज्य के प्रमुख दैनिकों में महिला सम्बन्धी खबरों की बानगी को देखें तो राज्य के प्रमुख दैनिक पत्र राजस्थान पत्रिका, दैनिक भास्कर, दैनिक नवज्योति, महका भारत, में महिला अत्याचार विरोधी खबरों को स्थान दिया गया है । जैसे राज्य के प्रमुख दैनिक समाचार-पत्र राजस्थान पत्रिका के पृष्ठ पर 24 नवम्बर 2006 को छपी खबर 'सताने में सातवाँ' में वर्ष 2005 में राज्य की राजधानी जयपुर में देश में महिलाओं के विरूद्ध अपराध में जयपुर शहर की स्थिति को प्रकट किया गया था ।

महिलाओं के सरोकारों से सम्बन्धित इन खबरों का प्रभाव भी होता है । राजस्थान पत्रिका के खबर के असर कॉलम के तहत् प्रकाशित महिला अत्याचार सम्बन्धी खबरों एवं पीडित महिलाओं की व्यथा से अनेक बार मदद के लिए हाथ आगे आये हैं । राज्य के दैनिक राजस्थान पत्रिका के खबर का असर कॉलम में प्रकाशित कलेजे के लाल को अपनाए कौन?' समाचार में एक ऐसी गरीब विधवा महिला की कहानी थी जिसे देह शोषण में सन्तान गोद में मिली थी । विधवा ने उसे साहसपूर्वक जन्म दिया लेकिन बह उसके पालन-पोषण में असमर्थ थी । खबर छपी तो न सिर्फ महिला की मदद के लिए

हाथ खडे हुए वरन् शहर के एक दम्पत्ति ने बच्चे को गोद लिया । प्रदेश के अन्य प्रमुख सैनिकों में महिला मुद्दों को उठाया जाता है । इस मुद्दे पर कवरेज के कुछ शीर्षकों को देखा जाए तो कन्या भ्रूण हत्या महिला निरक्षरता, कामकाजी महिलाओं की समस्याओं सती महिमा मंडल, महिला अत्याचारों को ही नहीं महिलाओं की उपलब्धियों से संबन्धित समाचारों को उठाया गया है । पिछले कुछ समय की ऐसी खबरों के उदाहरण को देखें तो कुछ ऐसे समाचार जैसे - कन्या भ्रूण हत्या पर (कब तक ढोये कलंक, दैनिक भास्कर 6 अगस्त 20०6) महिलाओं की स्थिति पर (महिला अभी भी न्याय से दूर है - दैनिक नवज्योति 13 मार्च 2003) महिला उपलब्धियों पर (हम करेंगे नाम रोशन, दैनिक भास्कर 5 अगस्त 2006, सफलता के शिखर पर बेटियाँ, 28 मई 2008) आदि प्रकाशित हुए ।

लघु अखबार एवं फीचर्स भी इस विषय पर महत्वपूर्ण सामग्री जुटा रहे हैं । जयपुर स्थित विविधा फीचर्स महिला आलेखन एवं सन्दर्भ केन्द्र राजस्थान के नारीवादी आन्दोलन एवं सामाजिक सुधार के मुद्दों से सम्बन्धित महत्वपूर्ण खबरों को राज्य के विविध जिलों में विविध लघु एवं बडे अखबारों को पाक्षिक रूप से पहुंचाता हैं । विविधा फीचर्स के अंकों में राज्य की महिलाओं विशेषत: ग्रामीण महिलाओं की स्थिति से सम्बन्धित महत्वपूर्ण सामग्री लेख प्रकाशित किये जाते है । महिला अत्याचार, स्त्री धन, पंचायती राज में महिलाओं की भूमिका, कामकाजी, दलित, एकल महिलाओं की समस्याओं, महिलाओ के पुनर्वास से सम्बन्धित लेखों का संकलन एवं नियमित प्रकाशन किया जाता है ।

किन्तु मीडिया के इस कवरेज में यदि समाचार अथवा कार्यक्रम के उद्देश्य, विषय वस्तु एवं शैली को देखें तो महिला विरोधी सामाजिक कुरीतियों के कारणों की पड़ताल का अभाव महिला विरोधी अपराध की घटनाओं को केवल समाचार के रूप में प्रकाशित करना, खबर के फालोअप का अभाव, ग्रामीण महिलाओं की समस्याओं की उपेक्षा, स्त्रियों का वस्तुकरण, फैशन, सौन्दर्य उत्पादों सच्ची खबरों की अधिकता, सामाजिक कुप्रथाओं के समाधान सुझाने की दिशा में कार्य न कर पाने की सीमाएँ सामने आती हैं । पिछले कुछ अरसे से मीडिया के केन्द्र में ग्रामीण, अनपढ़, पिछड़ी महिला की तुलना में शहरी, पढ़ी-लिखी, आधुनिक महिला का स्थान अधिक रहा है । सबसे बढ़कर महिला विरोधी सामाजिक कुरीतियों के सन्दर्भ में मार्गदर्शक उपाय सुझाने अथवा निवारणीय रणनीति सुझा पाने में मीडिया की भूमिका उदासीन है ।

समाज में नशे एवं मादक द्रव्यों के सेवन की कुरीति के विरूद्ध भी मीडिया कवरेज किया गया है । राज्य के प्रमुख दैनिक भास्कर में राज्य की राजधानी जयपुर के हसनपुरा एवं मालवीय नगर में स्कूल, मन्दिर, महाविद्यालय अस्पताल के निकट स्थित शराब की दुकानों की स्थिति को लेकर खबर छपी (हर कदम पर मयखाने फिर क्यों न बहके कदम 5 जुलाई 2006 दैनिक भास्कर) तो स्थानीय लोगों ने मिलकर शराब की दुकानों का विरोध किया बल्कि बही के स्थानीय नागरिकों ने एक तीव्र अभियान चलाकर इन शराब की दुकानों का विरोध कर प्रशासन को कार्यवाही के लिए प्रेरित किया । इसी प्रकार अन्य दैनिक राजस्थान पत्रिका में फुटपाथी अनाथ बच्चों के नशे में आने की गिरफ्त (नस-नस में धुला जहर 19 अगस्त, 2006, राजस्थान पत्रिका) के समाचार के पश्चात स्थानीय संस्थाओं एवं चिकित्सालयों ने इन बच्चों की नशा मुक्ति के लिए आगे हाथ बढ़ाए ।

अन्ध विश्वासों के उन्मूलन एवं पाखण्डों के विरोध पर मीडिया द्वारा कवरेज किया गया है। पाखण्ड के चक्कर में गयी जान, मदनपुरा में रहस्यमयी आग का राज, खण्ड-खण्ड पाखण्ड जैसे शीर्षाकित समाचारों में दूरदराज के इलाकों में रूढ़ियाँ अंधविश्वास के दुष्परिणामों को उठाने का प्रयास कया गया है । दलित शोषण एवं निम्न जातियों के विरुद्ध अत्याचारों को सिर पर मैला नहीं ढायेंगा दलित, बहुत

परेशान है बगरिया (विविधा फीचर्स सितम्बर 2003) जातिवयन से मुक्त शादियाँ (16 सितंबर 2006, राजस्थान पत्रिका) आदि शीर्षकों से कबरेज दिया गया है ।

सम्पूर्ण देश का 10 प्रतिशत क्षेत्रफल रखने बाला राज्य राजस्थान भौगोलिक दृष्टि से देश का सबसे बडा राज्य है किन्तु जल से साधनों की दृष्टि से मात्र एक प्रतिशत रखने के कारण निर्धन है। प्रिन्ट एवं इलैक्ट्रोनिक मीडिया ने राज्य की जल समस्या, पानी की बचत जल प्रवचन में समुदाय के योगदान के पक्षों को उठाया है ।

राज्य में पेयजल की समस्या एवं समुदाय पर पडने बाले इस के प्रभाव का आकंलन करने बाली हाल ही में प्रकाशित खबरों का आकलन किया जाए तो दूषित पेयजल पर जहर उगलता पानी (दैनिक नवज्योति 8 मई, 2006) राज्य की राजधानी जयपुर के प्रमुख पेयजल स्रोत रामगढ़ बजे के रीते होने के कारणों की पड़ताल रामगढ़ खाली क्यों? राजस्थान पत्रिका 3 सितम्बर 20अ) परम्परागत जल स्रोतों के संग्रहण की विधियों पर बेजोड हैं पानी सहेजने के पुराने तरीके (दैनिक भास्कर 7 जून 2006) राज्य की सबसे बड़ी नदी की नदी के संकर को रेखांकित करता लेख बेमौत मारी गयी नदी (दैनिक भास्कर 23 जनवरी, 2005) आदि लेख है । विविधा फीचर्स में भी पानी के चिन्ताजनक पहलुओं, जल संचयन की परम्परागत पद्धतियों तथा इसके समाज पर प्रभाव को रेखांकित किया गया है।

इसके साथ ही (प्रिन्ट मीडिया में अन्य सामाजिक समस्याओं के समाचारों जैसे - बाल श्रम, दहेज प्रथा, विधवा विवाह निषेध डायन प्रथा, नशे के दुष्प्रभाव, जातिवादी वैमनस्य को भी उठाया जाता रहा है ।

राज्य के इलैक्ट्रोनिक मीडिया ने भी सामाजिक सरोकारों को उठाया है । राज्य में जनता तक सर्वाधिक पहुंच वाले प्रसारण माध्यम आकाशवाणी में जिसका मूलमन्त्र बहुजनहिताय बहुजन सुखाय है, ने सामाजिक मुद्दों से संबन्धित शिक्षाप्रद कार्यक्रमों का निर्माण किया है । राजस्थान में दूरदर्शन जयपुर केन्द्र से प्रायोजित एवं स्वनिर्मित कार्यक्रमों की कडी में महिलाओं के लिए प्रस्तुत होने वाले कार्यक्रम जैसे सुन्दरी सहेली, कल्याणी तथा सामाजिक मुद्दों से समन्धित कार्यक्रम जैसे :- माटी री महक, आसपास (साप्ताहिक खोज खबर), संस्कुति संचय, मरूधर, कत्याणी आदि प्रमुख है ।

भारत: राजस्थान में सामाजिक सरोकारों में मीडिया की सकारात्मक भूमिका के मार्ग में अग्रांकित अवरोध हैं :-

1. बाजार का दबाव
2. परस्पर कड़ी प्रतिस्पर्धा
3. प्रशिक्षण का अभाव
4. बुनियादी नीतियों का संकट
5. ग्रामीण साक्षरता का अभाव
6. सूचनाओं के विश्लेषण का अभाव
7. विकासात्मक पत्रकारिता
8. पत्रकारिता के मिशन एवं की उपेक्षा मूल्यों की जानकारी का अभाव

12.4 सामाजिक समस्याएँ एवं चौथे खंबे की चुनौतियाँ

21वीं सदी की चौखट पार कर चुके भारत में संख्यात्मक दृष्टि से मीडिया का असाधारण विस्तार हुआ है । मीडिया को कार्यपालिका, व्यवस्थापिका एवं न्यायपालिका के साथ लोकतन्त्र में नागरिक अधिकारों की रक्षा के लिए चौथा खम्भा माना जाता है ।

आर.एन.आई. रिपोर्ट के प्रतिवेदन अनुसार वर्ष 2001 में भारत में कुल पत्र-पत्रिकाओं की संख्या 51,960 है जबकि 2000 में इनकी संख्या 49,145 थी जो कि लगभग 106 भाषाओं में प्रकाशित हो रहे है । सैटेलाइट और केवल चैनलों की संख्या यहाँ 200 से अधिक है अर्थात अमेरिका के बाद सबसे अधिक चैनल भारत में हैं । सरकारी टी.वी. की पहुंच 89 प्रतिशत है तो केवल टीवी. की पहुंच भी निरन्तर बढ़ रही है । आज टी.वी. चैनलों के बीच प्रतियोगिता में टेलीविजन पत्रकारिता की तस्वीर बदल दी है । 15 सितम्बर 1959 से प्रारम्म हुआ दूरदर्शन 1997 में प्रसार भारती बोर्ड के रूप में स्वायत्त निगम बन चुका है । 1999 के आकडों के मुताबिक शहरों में 42 लाख घरों तक टी.वी. पहुंच रहे है तो गांवों में इनकी संख्या 27 लाख है । किन्तु संख्यात्मक विस्तार के साथ ही मीडिया की सामाजिक प्रतिबद्धता में आश्चर्यजनक नकारात्मक प्रवृत्ति ने अनेक दक्ष प्रश्नों को जन्म दिया है । सबसे तेज, एक्सक्लूसिब खबरें, हर दिन एक नया अखबार, हर महीने एक नया टीवी. चैनल, एक न्यूज वेबसाइट सूचना क्रान्ति के नये दौर में आज आगे निकलने की होड मची हुई है । टीआरपी और प्रसार संख्या बढ़ाने के लिए सनसनी फैलाने के किसी मौके को छोड़ा नहीं जाता । खोजी पत्रकारिता के रूप में स्टिंग ऑपरेशन की गिनती पत्रकारिता के आधुनिक अचूक अस्त्रों में होने लगी है । पाठकों की छीना झपटी के लिए प्रत्द्विन्दी अखबारों में उपहार में जूते, डिनर सैट, चमचमाती कार और पांच किलो सोने की नयी परम्पराएँ सामने आने लगी है । मीडिया के क्षेत्र में मानवीय और सामाजिक मूल्यों की बात करने वाला पुरातनपंथी माना जाता है । मीडिया में आम आदमी हाशिये पर उपेक्षित खडा है केन्द्र में खास आदमी खास वर्ग । मीडिया में हुए सत्ता परिवर्तन के साथ पत्रकारिता के मूल्य भी बदल चुके है । सम्पादकों की सत्ता पर मालिकों और प्रबन्धकों के काबिज होने के साथ मीडिया की प्राथमिकताएँ भी बदल गयी है । मौजूदा समय में मीडिया का मंत्र है रेटिंग का ऊंचा ग्राफ, अधिक विज्ञापन अधिक मुनाफा । ऐसे में सामाजिक समस्याओं के निवारण में मीडिया अपनी भूमिका का शत प्रतिशत निर्शह नहीं कर पाया है ।

वर्तमान समय में मीडिया के मार्ग में अग्राकित चुनौतियाँ मौजूद है जो सामाजिक समस्याओं के निवारण में मीडिया के सक्रिय योगदान में अवरोधक बनती है ।

12.4.1 सरोकारी बनाम व्यवसायिक बौद्धिकता

बदलते दौर में तकनीक, स्वरूप, प्रसार एवं पहुंच की दृष्टि से देश एवं प्रदेश का मीडिया बहुत बडी ताकत बन चुका है। आज की चिन्ता का प्रमुख विषय व्यावसायिकता की दौड़ में आगे निकलना हो गया है, सामाजिक सरोकार नहीं। आज मीडिया का समाज बाजार है इस तथ्य से राजस्थान का मीडिया भी प्रभावित है ।

साभार - विधुर

अब मीडिया की प्रमुख प्राथमिकता दर्शक संख्या या पाठक संख्या की वृद्धि हो गया है और इसके लिए मानवीय, सामाजिक समस्याओं को उजागर करना, उनके निराकरण के लिए दिशा देना प्रमुख प्राथमिकता नहीं रही है । खबरों एवं कार्यक्रमों में गरीब, कमजोर, आदिवासी, दलित - हाशिये पर रखे गये हैं । मीडिया की भाषा से लेकर उसमें प्रयुक्त कागज, छपाई विषयों आदि सभी प्रक्रियाएँ व्यावसायिक बौद्धिकता से जुड़ी हैं । फैशन, ग्लैमर, सनसनीखेज खबरें, अपराध की खबरें और कार्यक्रमों की प्रमुखता ने आम आदमी से जुडे सरोकारों, को पीछे छोड़ दिया है।

12.4.2 सामाजिक समस्याओं के कारणों की पडताल की उपेक्षा

किसी भी सामाजिक समस्या के निवारण के लिए यह आवश्यक है कि सामाजिक समस्या के उल्लेख के साथ-साथ कारणों की पड़ताल की जाए तथा समाधान के सुझाव भी सुझाये जाए । आमतौर पर मीडिया सामाजिक समस्याओं के केवल सूचनात्मक पक्ष को ही उजागर करता है । सामाजिक समस्याओं के सन्दर्भ में मीडिया जगत से क्यों और कैसे का तत्व गायब रहता है । कार्यक्रमों एवं खबरों में सामाजिक समस्या से संबन्धित आकडों को तो भरपूर स्थान मिल जाता है लेकिन उस खबर के कारणों की पडताल नहीं की जाती । प्रदेश में बाल श्रम, बाल विवाह, महिला अशिक्षा, कन्या हत्या, दहेज प्रथा, दलितों की पिछड़ी स्थिति एवं अन्य मानवीय विकास विरोधी सामाजिक समस्याओं एवं रूढ़ियों के मूलभूत कारणों की पड़ताल के स्थान पर इन मुद्दों से संबन्धित समाचारों का उल्लेख मात्र कर देना अपर्याप्त है ।

मीडिया में दलित पर अत्याचार, हरिजन दूल्हे को घोडी चढ़ने से रोका आखातीज पर बाल विवाह की धूम, पानी की भयंकर किल्लत, राज्य बालिका शिक्षा में पिछड़ा टोंक में बीडी बनाने में जुटे नन्हें हाथ - जैसे शीर्षकों से सामाजिक मुद्दों को उठाया है । लेकिन उसको घटना प्रधान पहलू तक ही सीमित रखा गया है । इलैक्ट्रोनिक मीडिया में भी सामाजिक समस्याओं से सम्बन्धित प्रसारित होने वाले इनेगिने कार्यक्रमों में कार्यक्रम प्रस्तोता अथवा एंकरों की हावभाव की नाटकीयता तथा स्वाभाविकता में कमी खटकती है । यह संलिप्तता खतरनाक है । यह आवश्यक है कि सामाजिक समस्याओं से सबन्धित कार्यक्रमों के निर्माण एवं खबरों की करवे में क्यों एवं 'कैसे का विमर्श पुनर्जीवित किया जाए ।

12.4.3 व्यवस्थित प्रशिक्षण का अभाव

आज से सवा सदी पूर्व ही महान अमेरिकी पत्रकार जोसेफ पुलित्जर ने पत्रकारिता के शिक्षण प्रशिक्षण के लिए पाठ्यक्रम संचालित करने की परिकल्पना की थी । प्रिन्ट हो अथवा इलैक्ट्रोनिक मीडिया दोनों ही क्षेत्रों में प्रशिक्षण एक महत्वपूर्ण आयाम हैं । आज देश एवं प्रदेश में मीडिया की विश्वसनीयता एवं उत्कृष्ट मानकों को बनाये रखने बाले मूल्यों का प्रशिक्षण देने वाले प्रशिक्षण संस्थानों की कमी एक महत्वपूर्ण समस्या है । राजस्थान भी इस चुनौती से अछूता नहीं है । एक ओर जहाँ मीडिया का विस्तार हो रहा है, नित नवीन चैनल, नित नवीन अखबार आ रहे हैं, दूसरी ओर पत्रकारिता के बुनियादी उसूलों की पहचान कराने वाले वैज्ञानिक एवं विवेचनात्मक चेतन तथा सबल स्वस्थ समाज की संरचना के प्रति आस्था रखने वाले युवा पत्रकारों की जुझारू पीढ़ी तैयार करने वाले प्रशिक्षण संस्थानों एवं जनसंचार के प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों का अभाव है । आज का नवागुन्तक पत्रकार प्रशिक्षण के अभाव में अपनी खबर की सनसनी से, सरल कम मेहनत बाले तरीके अपनाकर लोकप्रिय तो होना चाहता है लेकिन

किसी सामाजिक समस्या, किसी सामाजिक अन्याय पर व्यापक शोध से कोई श्रेष्ठ कार्यक्रम या खबर की खोज में उसकी रूचि नहीं है । तेजी के दवाब में रिपोर्टर की भूमिका पोर्टर (कुली) की हो गयी है । अब बह वह समाचारों को ढोने का काम करता है । गांवों में जाकर समाज की बुराईयों को उजागर करने एवं सबल समाज के भविष्य निर्माण के लिए मीडिया कर्मियों की परिवर्तनकारी भूमिका के लिए नियोजित एवं निरन्तर प्रशिक्षण कार्यक्रमों का अभाव एक बडी चुनौती है ।

12.4.4 मीडिया एवं अपसंस्कृति

महात्मा गाँधी ने 1921 में 'यंग इण्डिया में भारत की सांस्कृतिक नीति के सन्दर्भ में लिखा था कि मै चाहता हूँ कि सभी देशों की सांस्कृतिक हवाएँ बेरोकटोक मेरे घर में बहे लेकिन मैं उनमें से किसी भी हवा के झाँके से अपने पैर उखडने नहीं दूंगा । मैं नहीं चाहता कि मैं पराए घर में दखल अंदाज के रूप में रहूं अथवा भिखारी या दास समझा जाऊं।

किन्तु इस कथन के ठीक उलट आज बाजार वादी और व्यवसायिक लाभ की होड़ में जुटे मीडिया ने भारतीय संस्कृति को अपसंस्कृति में बदल दिया है। मीडिया की भूमिका अपसंस्कृति को लाने प्रसारित करने में सर्वाधिक है ।

मीडिया हमें ऐसी दुनिया में ले जाता है जहाँ हम अपनी वस्तुस्थिति मूल जाते हैं । प्रख्यात विद्‌वान समाज वैज्ञानिक आनन्द केतिश कुमारस्वामी के अनुसार प्रत्येक प्रजाति अपनी निजी अमिव्यक्ति की प्रक्रिया में विश्व सभ्यता में कोई न कोई योगदान करती है । भारत का तात्विक योगदान तो उसकी भारतीयता ही है । यदि हम अपनी संस्कृति की अवमानना करेंगे तो हमारे हाथ खाली रह जाएगें । अपसंस्कृति का दुष्प्रभाव धीमे जहर की तरह समाज में फैल रहा है । अखबार के पहले पन्ने पर अश्लील चित्रों का प्रसार और चैनलों पर 24 घण्टे प्रसारित निरर्थक कार्यक्रम प्रसार संख्या या टी.आर.पी. रेटिंग बढ़ाये या न बढ़ाये लेकिन सामाजिक समस्याओं को अवश्य जन्म दे रही है।

12.4.5 मीडिया एवं वैज्ञानिक चेतना

मीडिया एवं वैज्ञानिक चेतना के संदर्भ में यह समझ आवश्यक है कि वैज्ञानिक चेतना कोई जड़ नहीं है जिसे परम्परागत खूटों से बांधकर रखा जाए । यह स्वस्थ व लोकतान्त्रिक समाज होने का प्रतीक भी है । आज भारत में मीडिया की भूमिका के सन्दर्भ में यह प्रश्न सामने आता है कि क्या मीडिया की भूमिका व्यक्ति, समाज और राज्य को केवल सूचना एवं मनोरंजन से संबद्ध करने तक सीमित है? अथवा इन तीनों की अन्त: क्रियाओं को वैकल्पिक चेतना से लैस करना भी है । प्रिन्ट एवं इलैक्ट्रोनिक मीडिया के विद्‌यार्थियों को समाचार की संरचना को समझाने के लिए कुछ कंकारो जैसे - क्या? क्यो? कहीं? कौन? और कब? की आधारभूत सूत्रों की शिक्षा दी जाती है । ये सूत्र समाचार के वैज्ञानिक एवं तार्किक तत्वों की पडताल करते हैं । मीडिया की तार्किक एवं वैज्ञानिक भूमिका से यह अपेक्षा की जाती है कि इससे भारतीय समाज की चेतना पहले की अपेक्षा अधिक पैनी होगी । जनमानस मध्ययुगीन आचार-दिवार और व्यवहार के स्थान पर व्यापक सोच अपनाएगा। विवेक से युक्त समाज का तार्किक रूप सामने आएगा ।

किन्तु दुर्भाग्य से मीडिया कबरेज में वैज्ञानिक चेतना की उपेक्षा ही नहीं की जाती बल्कि पुरातन रूढ़ियों को भी स्थापित करने का प्रयास किया जाता है । विगत कुछ समय से मीडिया के कवरेज में अन्धविश्वास एवं बेबुनियाद घटनाएँ दिखाना, पाठक एवं दर्शकों को आकृष्ट करने के लिए घटनाओं

का एक तरफा प्रसारण, मुद्दों का अतार्किक रूपान्तरण को घटनाओं का नकारात्मक प्रभाव सामने आया है। समाचार-पत्रों में किसी दूर दराज की उपेक्षित विधवा परित्यक्ता, विकलांग औरत को आर्थिक साधनों को हड़पने के षड्यन्त्र के तहत् चुडैल घोषित करने पर खबर छापकर अपने दायित्व को पूर्ण मान लेना किसी देवी देवता के दूध पीने की तथाकथित घटनाओं का विविध चैनलों द्वारा राष्ट्रव्यापी प्रसारण मनोरंजन के नाम पर अवैज्ञानिकता फैलाना, मैल ड्रामा से भरपूर सीरियल जिनमें तार्किक एवं असंभव बातों का ग्लैमरीकरण कर प्रस्तुत किया जाता है। उक्त सभी घटनाओं के समाज पर गहरे एवं नकारात्मक प्रभाव पडते हैं। काल्पनिक विषय वस्तु के सीरियलों के माध्यम से विवेचनात्मक चेतना को कुन्द किया जा रहा है। इनके द्वारा जनित इल्युजन को यथार्थ रूप में मीकार करने बाले समुदाय का समाज क्या सही दिशा में प्रगति कर पाएगा?

वैज्ञानिक समाचार के नाम पर मीडिया केवल सूचनात्मक शैली में कार्यक्रमों घटनाओं, अविष्टारों की सामान्य जानकारी दे देता है। सामाजिक समस्याओं एवं अन्धविश्वासों के निवारण में मीडिया की सार्थक भूमिका की आवश्यकता है। उचिष्ठ वैज्ञानिक परिवर्तन के बावजूद आज के दौर में विविध समाचार माध्यमों, चाहे प्रिन्ट हो या इलैक्ट्रोनिक अपनी सामाजिक भूमिकाओं को ताक पर रखकर विभिन्न कार्यक्रमों का प्रसारण कर रहे है। बाजार वाद के प्रभाव और प्रसार संख्या व टी.आरपी. बढ़ाने के लिए जिस प्रकार अन्ध विश्वासों, भविष्यवाणियों को बढ़ावा दिया जा रहा है बह इसकी सामाजिक भूमिका के लिए चिन्ताजनक विषय है। मनोरंजक चैनलों पर भूत प्रेतों पर आधारित धारावाहिकों का प्रसारण जैसे 'आपबीती,' 'आहरण' सह,' शरारत' डरना मना है" काल-कपाल-महाकाल जैसे धारावाहिक मूल्यहीन अंध विश्वासी सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करेंगे।

12.4.6 मीडिया की भाषा

गत सदी के प्रारम्भ में जब हिन्दी पत्रकारिता की शुरुआत हुई थी तो भाषा अपने पांवो पर खड़ा होना सीख रही थी। 90 के दशक के उत्तरार्द्ध में हिन्दी दैनिकों की लोकप्रियता और प्रसार में वृद्धि हुयी। वर्ष 2001 में प्रकाशित होने वाले हिन्दी दैनिकों की संख्या अंग्रेजी और उर्दू के मुकाबले अधिक थी इससे एक ओर हिन्दी दैनिकों ने अपने बहुसंख्यक पाठकों की हैसियत और आवश्यकता के अनुसार आम भाषा से भाषा का जनतंत्रीकरण हुआ हैं वही क्षेत्रीय हिन्दी दैनिकों की भाषा अतिरंजनापूर्ण हुयी है। समाचार को रोचक बनाये रखने के लिए अतिरंजनापूर्ण बढ़ा चढ़ाकर लिखना। भाषिक रूढ़ियों का प्रयोग किया जाने लगा है। गमगीन माहौल, अवस्था की चरमराहट पर्दाफाश विकराल संकट अतिरजनापूर्ण शब्दों के उदाहरण है।

टेलिविजन चैनल के मध्य प्रतिस्पर्धा के वर्तमान दौर ने भी चैनलों की भाषा को बदला है। देश में टेलिविजन चैनल तेजी से 'पॉपुलर हिन्दी का बिकास कर रहे हैं। पॉपुलर अर्थात् लोगों की लोकप्रिय जुबान। किन्तु सर्वाधिक चिन्ताजनक पहलू मीडिया की भाषा में सामन्ती झलक मिलना है। चुनावों के दौरान जनप्रतिनिधियों को महारथी, बाहुबली कहकर सम्बोधित करना महिलाओं के प्रति अश्लील वक्तव्य रूढ़िवादी मूल्यों की स्थापना किया जाना चिन्ताजनक है। भाषा के चरित्र एंव व्यापक स्वरूप में बदलाव आने से समाज पर प्रभाव पडा है।

12.4.7 मीडिया में विज्ञापन

मीडिया में विज्ञापन का विस्फोटक प्रयोग एवं उसकी भारतीय समाज पर प्रभावशीलता चौंकाने बाली चुनौती के रूप में सामने आयी है । विज्ञापन का प्रभाव असंदिग्ध है । मीडिया जनता को दर्शक अथवा पाठक के रूप में बदलता है बही विज्ञापन दर्शक या पाठक को उपभोक्ता के रूप में बदलता है । एक ओर प्रिन्ट मीडिया में विज्ञापन प्राप्ति की गलाकट होड ने सामाजिक एव शैक्षणिक सरोकारों को हाशिये पर धकेल दिया है वही टीवी. चैनल विज्ञापन लेने और उससे कमाने वाला माध्यम बन गया है ।

साभार : विधुर

1976 में दूरदर्शन पर पहला विज्ञापन दिखाया गया । शनैः-शनैः विज्ञापन और प्रायोजक बढ़ते गये । आज मीडिया जिस परिवर्तन का माध्यम होना चाहिए बह उसका माध्यम नहीं बन सका बल्कि विज्ञापनों के माध्यम से उपभोग की कामना को निर्बाध स्वतन्त्र बनाकर बदल रहा है । लालच, हिंसा नकल की प्रवृत्ति दिखाते विज्ञापनों ने 6० के दशक में मैगी नूडल्स, वीको टरमरिक बोरोलीन, पॉण्डस जैस उत्पादों से लोगों तक पहुंच बनायी । लेकिन 60 से 90 के दशक के अन्त तक आते-आते एक ऐसा उपभोक्ता समाज बनाया है जो वस्तुओं को ब्राण्ड के रूप से देखता है, जो उपभोक्तवादी क्रान्ति के इस्तेमाल करो फेंक दों तात्कालिक प्रयोग दृष्टिकोण में विश्वास करता है । मीडिया में बाज़ विज्ञानवाद ने बच्चों के रूप में जिद्दी ग्राहक, मौज मस्ती में मशगूल युवा और चिर युवा रहने की चाह रखने बाली स्त्री का नया समाज खडा किया है जिससे भारत के सामाजिक नसों में बदलाव आया है । सकारात्मक रूप से इसने देश की जानता के सामने विकल्पों का चयन प्रस्तुत किया है किन्तु नकारात्मक रूप से अन्धानुकरण की प्रवृति, युवाओं में बढ़ती हिंसा, श्रम से विमुखता, मूल्यहीन मध्यम वर्ग, अपराधी होते बच्चों की समस्याओं का जन्म दिया है ।

12.5 सामाजिक समस्याओं के उपचार में मीडिया की सक्रिय भूमिका निर्वाह के सुझाव

सामाजिक समस्याओं के उपचार में मीडिया की सक्रिय भूमिका निर्वाह के सुझाव सामाजिक समस्याओं के उपचार में मीडिया की सक्रिय भूमिका के लिए कुछ अपेक्षित सुझावों की पालना से मीडिया सामाजिक सरोकारों को मुतैदी से उठा सकती है । ये सुझाव अंग्राकित है :-

12.5.1 प्राथमिकताओं का पुनर्निर्धारण

यह आवश्यक है कि देश ब प्रदेश का मीडिया अपनी प्राथमिकताओं का पुनर्निर्धारण करें । केवल व्यावसायिकता मुनाफा कमाना, इलैक्ट्रोनिक चैनलों की होड एवं अखबारों को उस्ताद मानने की प्रवृत्ति पर नियन्त्रण के साथ ही मीडिया को सबल, स्वस्थ समाज के निर्माण की अपनी भूमिका की पुन: पहचान आवश्यक है । मीडिया को आज अपना आत्मावलोकन करते हुए अपनी प्राथमिकताओं का पुनर्निर्धारण करने की आवश्यकता है । केवल ज्यादा से ज्यादा लोगों द्वारा देखी जा सकने वाली या पढ़ी जा सकने वाली खबर, सुविधा सम्पन्न अभिजातीय वर्ग की खबर, फैशन, अपराध, ग्लैमर, निरर्थक मनोरंजन के मुद्दों के स्थान पर समाज के दूषण, दुर्गुणों को उजागर करने बाले कार्यक्रम एवं समाचार, सामाजिक चेतना जाग्रत करने वाले कार्यक्रम एवं गवेषणात्मक लेख मीडिया की प्राथमिकता हो सकते है । इसके लिए प्रदेश के मासिक, साप्ताहिक, दैनिक-पत्रों एवं इलैक्ट्रोनिक चैनलों को सामाजिक परिवर्तन का दिग्दर्शन करने वाले कुछ प्रकाश स्तम्भ निर्मित करने होगें ।

12.5.2 प्रशिक्षण से संवेदनशीलता :

यह आवश्यक है कि इलैक्ट्रोनिक एवं प्रिन्ट मीडिया के नवागुन्तकों को देश एवं प्रदेश की सामाजिक समस्याओं से परिचित कराया जाए । सामाजिक समस्याओं की कवरेज एवं उसका समाधान सुझाने के प्रति उन्हें उत्साहित एवं प्रेरित किया जा सकता है । इसके लिए उन्हें उचित-अनुचित, न्यायपूर्ण, अन्यायपूर्ण समाज विरोधी समाज हितकारी पक्षों का अभिज्ञान कराया जाए । राजस्थान के दूरदराज के इलाकों में बाल विवाह, महिला अशिक्षा, अंधविश्वास, जातिवाद एवं अन्य सामाजिक विघटनों के उन्मूलन की चुनौती के लिए मीडिया कर्मियों में जज़्बा होना आवश्यक है ।

12.5.3 नीतियों में बुनियादी तब्दीली

यह आवश्यक है कि मीडिया केवल घटनाओं, मुद्दों की सतही सूचना, सनसनीपूर्ण विवेचन की नीति के स्थान पर कारणों की पड़ताल, समाधान के मार्ग भी सुझाये । मीडिया को घटनाओं की पत्रकारिता से ऊपर उठकर, विश्लेषण, मार्गदर्शन, सुझावों से जुड़ी पत्रकारिता की ओर मुडना होगा तभी सामाजिक आवश्यकताओं के निवारण में समाज को दिशा निर्देश मिल पाएगा । अभिजातीय पढ़े-लिखे शहरी अल्प वर्ग के स्थान पर ग्रामीण इलाकों में रहने वाला बहुसंख्यक समाज, दकियानूसी खबरों के स्थान पर तार्किक एवं विवेकपूर्ण खबर तथा केवल निरर्थक मनोरंजन के स्थान पर व्यवहारिक शिक्षण की नीति मीडिया की विश्वसनीयता उपयोगिता एवं सामाजिक सुधार में निर्णायक भूमिका को स्थापित करेगी।

12.5.4 आंचलिक समस्याओं का कवरेज

अब, दृश्य एवं प्रिन्ट मीडिया द्वारा जिन कार्यक्रमों का निर्माण किया जाता है उनमें दूरदराज ग्रामीण इलाकों में मौजूदा सामाजिक मुद्दों एवं समस्याओं को शामिल किया जाना आवश्यक है। प्रादेशिक लोककथाओं कहावतों सामाजिक समरसता की लघु कथाओं पर आधारित सार्थक कार्यक्रमों लेखों के निर्माण से समाज के दिशा-निर्देश का कार्य किया जा सकता है। यह आवश्यक है मीडिया कि स्थानीय स्तर पर लोगों को समाजीकरण, सामाजिक परिवर्तन एवं सामाजिक नियन्त्रण के माध्यम से सचेत करे। सामाजिक ढांचे में प्रचलित समस्याओं जैसे अस्पृश्यता पर्दा प्रथा, दहेज प्रथा, बाल विवाह, जातिगत वैमनस्य, अन्य विश्वास, नशाखोरी के विरूद्ध स्थानीय, ग्रामीण एवं दूरदराज के स्तर पर की गयी पहलकदमियों के मुद्दों को मीडिया द्वारा स्थान देना आवश्यक है।

12.5.5 नागरिक पत्रकारिता एवं सामाजिक जागरूकता

तकनीकी क्रान्ति एवं भूमंडलीकरण के आज के दौर में जहाँ एक ओर मीडिया के औद्योगिकरण की प्रवृत्ति रही है वहीं मीडिया में नागरिक पत्रकारिता अथवा जन पत्रकारिता की नवीन प्रवशइत्त का उदय हो रहा है। प्रिन्ट मीडिया में आपका पन्ना, पाठक मंच, आपकी बात जैसे कॉलम प्रचलित रहे हैं। इलैक्ट्रोनिक मीडिया में कुछ टी. वी. चैनलों (जैसे सी.एन.एन. आई.बी.एन.) ने आम लोगों को यह अवसर दिया है कि यदि दर्शकों के पास कोई महत्वपूर्ण खबर या वीडियो क्लिप है तो बह चैनल को भेज सकते हैं। इलैक्ट्रोनिक पत्रकारिता में इस नवीन अवधारणा से नयी उत्सुकता एवं तत्परता का जन्म हुआ है। इस अवधारणा के सकारात्मक प्रयोग से सामाजिक समस्याओं के प्रति चेतना प्रसारित करने का कार्य किया जा सकता है। राजस्थान में हिन्दी के दो प्रमुख दैनिक पत्रों राजस्थान पत्रिका एवं दैनिक भास्कर में खबर का असर एवं 'भास्कर इम्पैक्ट' कालमों में सामाजिक सरोकारों को और अधिक जगह दी जा सकती है। प्रादेशिक स्तर पर निकाले जाने बाले लघु पाक्षिक, साप्ताहिक, दैनिक पत्र सामाजिक समस्याओं के निवारण में सकारात्मक भूमिका का निर्वाह कर सकते है।

12.5.6 सामाजिक अंकेक्षण

यह आवश्यक है कि मीडिया की विश्वसनीयता कायम करने के लिए तथा मीडिया को गम्भीर, जवाबदेह एवं पारदर्शी बनाने के लिए सामाजिक अंकेक्षण (Social Audit) को अपनाया जाए। यदि मीडिया एक उत्पाद बनता जा रहा है तो यह सच है कि देश एवं प्रदेश में पाठक पूरी तरह सचेत ग्राहक नहीं बन पाये है। इसलिए बह मीडिया के प्रासंगिक अप्रासंगिक कार्यक्रमों को बर्दाश्त करता है। जिस दिन पाठक एक सचेत ग्राहक की तरह मीडिया की गुणवत्ता पर सवाल उठाएगा उस दिन मीडिया को आत्म सुधार के लिए निर्णय लेने होंगे। सामाजिक अंकेक्षण के माध्यम से यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि मीडिया महज तेल, साबुन बेचने बाला, खबरों की सनसनी पैदा करने वाला साधन मात्र नहीं है बल्कि सामाजिक चेतना के विकास का जिम्मेदार माध्यम है।

दुनिया के अनेक देशों ने मीडिया के क्षेत्र में सामाजिक अंकेक्षण के माध्यम से मीडिया की सामाजिक सरोकारों के प्रति भूमिका को सुनिश्चित किया है। यहाँ सामाजिक अंकेक्षण से अभिप्राय मीडिया की समाज के प्रति जवाबदेही सुनिश्चित करने के लिए निष्पक्ष संस्थाओं द्वारा मीडिया के कामकाज का निरीक्षण किया जाना है। संयुक्त राज्य अमेरिका के समाचार-पत्रों ने स्वयं अपना निरीक्षण करने के लिए और अपने विरूद्ध शिकायतें सुनने के लिए न्यायिक अधिकारी नियुक्त किए हैं। भारत

में भी प्रेस आयोग एवं ऑल इण्डिया न्यूज पेपर्स सोसायटी जैसी संस्थाओं को प्रभावी बनाने के साथ सामाजिक अंकेक्षण की प्रक्रिया को सुनिश्चित करने की आवश्यकता है ।

सारतः सामाजिक समस्याओं के उपचार में मीडिया की सक्रिय भूमिका के उक्त सुझावो की सूची में अन्य सुझाव भी शामिल किये जा सकते है । यह सत्य है कि मीडिया अथवा जनसंचार के माध्यम समाज के निर्माण में, समाज को जगाने में और समाज पर नियन्त्रण रखने में सदियों से महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते आये है लेकिन आज जबकि मीडिया सबसे तेजी से बढ़ता उद्योग बनता जा रहा है तब सूचनाओं समाचारों के सम्प्रेषण के बढ़ते दायरे, अखबारों की बढ़ती पृष्ठ संख्या, एवं दृश्य माध्यमों की बढ़ती प्रसारण अवधि इलैक्ट्रोनिक एवं प्रिन्ट मीडिया की अबाध गीत के साथ सामाजिक सरोकारों की चिन्ताएँ, सामाजिक अवदोषों का समाधान प्रस्तुत करने का जज़्बा घटता जा रहा है । यह आवश्यक है कि मीडिया आत्म मंथन एवं आत्म परिष्कार करने की दिशा में समय रहते आवश्यक कदम उठाये एवं समाज में गम्भीर जवाबदेह पूर्ण एवं जिम्मेदारी पूर्ण भूमिका का निर्वाह कर सामाजिक समस्याओं के उपचार में प्रभावी भूमिका का निर्वाह करें ।

12.6 सारांश

सारतः सामाजिक समस्याओं के उपचार में मीडिया के योगदान के अध्याय के सारांश को अग्राकित बिन्दुओं में समेकित किया जा सकता है :-

समस्त सुधारों की जड़ सामाजिक सुधार है । मीडिया केवल समाज का दर्पण ही नहीं वरन् समाज को नेतश्त्व, मार्गदर्शन, उचित अनुचित अधिकारों एवं कर्तव्यों का ज्ञान कराने वाला प्रमुख माध्यम है । इस दृष्टि से सामाजिक समस्याओं के उपचार में मीडिया की महत्वपूर्ण एवं परिवर्तनकारी भूमिका है। समाज के समाजीकरण, सामाजिक परिवर्तन एवं सामाजिक नियन्त्रण के माध्यम से मीडिया अथवा जनसंचार के माध्यम अपनी सामाजिक भूमिका का निर्वाह करते हैं । प्रिन्ट एवं इलैक्ट्रोनिक मीडिया एक ओर समाज के अवदोषों को उजागर कर दैनिक जीवन की सामाजिक समस्याओं के प्रति जन-जन को सचेत कर सकता है । दूसरी ओर सामाजिक विचलन के कारणों की पडताल कर सामाजिक समस्याओं का समाधान भी सुझा सकता है ।

सामाजिक समस्या को विविध विद्वानों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से परिभाषित किया है । सामाजिक समस्याओं को हम उन सामाजिक दशाओं के रूप में परिभाषित कर सकते हैं जो सामाजिक कल्याण के लिए संकट उत्पन्न करें तथा जिसके निराकरण की आवश्यकता अनुभूत की जाती हो । सामाजिक समस्या व्यक्तिगत समस्या से भिन्न है । व्यक्तिगत समस्या से व्यक्ति के व्यक्तित्व में असन्तुलन पैदा हो जाता है जबकि सामाजिक समस्याएँ समाज में अनेक विकृतियों को जन्म देती हैं तथापि व्यक्तिगत एवं सामाजिक समस्याएँ परस्पर समचित हैं । भारत के सामाजिक ढाँचे में प्रमुख सामाजिक समस्याएँ - अस्पृश्यता पर्दा प्रथा, निरक्षरता, अन्धविश्वास एवं पाखण्ड, धार्मिक कट्टरता, बाल विवाह, दहेज प्रथा, जातिगत वैमनस्य, क्षेत्रवाद, साम्प्रदायिकता, दलित उत्पीड़न, नशीले पदार्थो का सेवन आदि प्रमुख हैं

मीडिया के सामाजिक दायित्व को जनसंचार माध्यमों की भूमिका के संदर्भ में ही समझा जा सकता है । जनसंचार माध्यमों अथवा मीडिया की तीन प्रमुख सामाजिक भूमिकाएँ समाजीकरण, सामाजिक परिवर्तन एवं सामाजिक नियन्त्रण की है । सैद्धान्तिक दृष्टि से मीडिया के समाज के साथ अन्तर्सम्बंन्ध जनसंचार के प्रचलित सिद्धान्त - प्रभुत्ववादी सिद्धान्त, मुक्ति सिद्धान्त, मार्क्सवादी सिद्धान्त, विकास

सम्बन्धी सिद्धान्त प्रचलित हैं । अत: समाज में मीडिया की सकारात्मक एवं सशक्त भूमिका को महत्वपूर्ण माना गया है । भारतीय समाज में प्रचलित विविध सामाजिक समस्याओं के प्रति जागरूकता एवं सामाजिक विसंगतियों के निराकरण के लिए जनसंचार माध्यमों ने अपने उत्पत्ति काल से ही सकारात्मक भूमिका का निर्वाह किया है । देश एवं प्रदेश में भारत की स्वतन्त्रता एवं राजस्थान के एकीकरण के पूर्व ही जनश्रुत पत्रकारिता का बीज बोकर समाज खार का मार्ग प्रशस्त किया गया था। आज भारत एवं राजस्थान में प्रिन्ट एवं इलैक्ट्रोनिक मीडिया का विस्तशत संजाल है । राजस्थान की प्रमुख सामाजिक समस्याएँ जैसे - महिला विकास विरोधी रूढ़ियाँ, अन्धविश्वास एवं पाखण्ड, दलित अत्याचार, जातिगत वैमनस्य एवं, नशीले पदार्थो का सेवन एवं अन्य सामाजिक विसंगतियों के उन्मूलन हेतु मीडिया ने इन मुद्दों को समय-समय पर उठाया है । किन्तु अनेक बार इन सामाजिक समस्याओं का केवल घटना प्रदान विवेचन, विषयवस्तु एवं शैली की दृष्टि से संकीर्ण दायरा खबर के फॉलोअप का अभाव आंचलिक एवं दूरदराज के गांव की समस्याओं की उपेक्षा सामाजिक समस्याओं के समाधान सुझाने में असमर्थता मीडिया की सीमाएँ रही हैं ।

सामाजिक समस्याओं के निवारण में मीडिया की गतिशील एवं प्रभारी भूमिका के मार्ग में अनेक अवरोध मौजूद हैं । चौथे खम्भे के समक्ष ऐसी कुछ चुनौतियाँ - सामाजिक सरोकार की प्राथमिकता के स्थान पर व्यवसायिक बौद्धिक सामाजिक समस्याओं के कारणों के पड़ताल की उपेक्षा व्यवस्थित प्रशिक्षण का अभाव असंस्कृत का प्रसार, अवैज्ञानिक एवं अन्धविश्वासों को बढावा आदि प्रमुख समस्याएँ है ।

सामाजिक समस्याओं के उपचार में मीडिया की सक्रिय भूमिका निर्वाह के कुछ सुझाव मौजूद है । इनमें प्राथमिकताओं का पुनर्निर्धारण, प्रशिक्षण में सवदेनशीलता, नीतियों में बुनियादी तबदीली, आचलिक समस्याओं का कवरेज, नागरिक पत्रकारिता एवं सामाजिक अंकेक्षण जैसे उपायों से स्वस्थ समाज के निर्माण, समाज को सामाजिक विकृतियों के प्रति सचेत करने एवं सामाजिक समस्याओं के समाधान के उपाय सुझाने में मीडिया प्रभावी भूमिका का निर्वाह कर सकता है ।

12.7 सन्दर्भ ग्रंथ

1. भारतीय समाज मुद्दे और समस्याएँ, वीरेन्द्र प्रकाश शर्मा, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 2005.
2. भारतीय सामाजिक समस्याएँ, एम.एल. गुफा, डी.डी.शर्मा, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा,
3. राजस्थान में हिन्दी पत्रकारिता, मनोहर प्रभाकर, पंचशील प्रकाशन, जयपुर 1981
4. मीडिया समग्र आयाम, विजया पाठक (स), जगत पाठक पत्रकारिता संस्थान, भोपाल मध्यप्रदेश, 1999.
5. भारत में पत्रकारिता, आलोक मेहता, नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया, नई दिल्ली, 2008.
6. उत्तर आधुनिक मीडिया विमर्श, सुधीश पचौरी, बाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006.
7. ब्रेक के बाद, सुधीश पचौरी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998.
8. पत्रकारिता के प्रश्न, राजेन्द्र शंकर भट्ट, पंचशील प्रकाशन, जयपुर 2000.
9. संचार श्री, शोध पत्रिका, पत्रकारिता एवं जनसंचार दिमाग लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
10. विदुर त्रैमासिक पत्रकारिता, प्रेस इस्टीट्यूट ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली
11. कमुनिकेशन टुडे, जनंसचार केन्द्र, राजस्थान विश्व विद्यालय, जयपुर

12.8 बोध प्रश्न

1. सामाजिक समस्या से आप क्या समझते है? जनंसचार माध्यमों की सामाजिक भूमिका को समझाइए?
2. सामाजिक समस्या एवं मीडिया के संबंधो पर प्रकाश डालिए?
3. राजस्थान में सामाजिक समस्याओं के उपचार में मीडिया के योगदान के उदाहरणों सहित परीक्षण कीजिए?
4. सामाजिक समस्याओं के उपचार में चौथे खम्भे की प्रमुख चुनौतियाँ कौनसी हैं विश्लेषण करे?
5. क्या सामाजिक समस्याओं के उपचार में मीडिया का सक्रिय योगदान संभव है? कुछ अपेक्षित सुझाव दीजिए ।